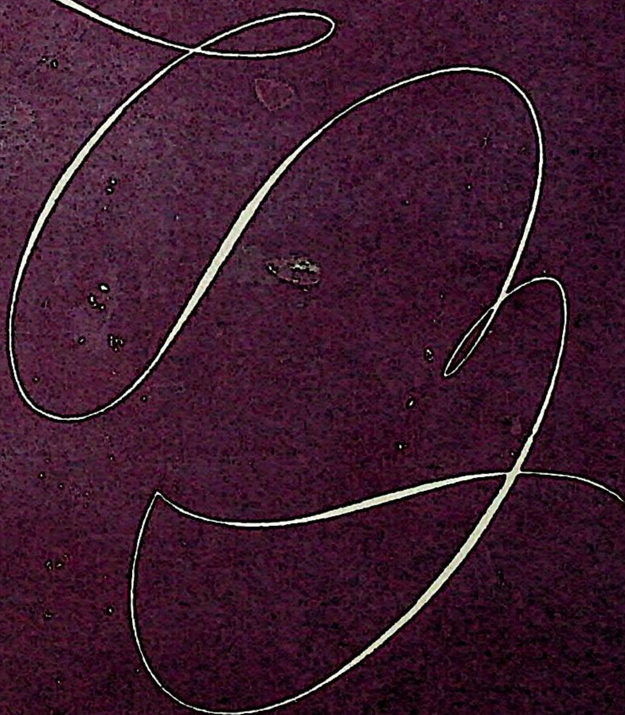
सागर-सार



डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा



सूरसागर सार

[सूरसागर के लगभग ८३१ अत्यन्त उत्कृष्ट पदों का संकलन]

सम्पादक

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा



साहित्य भवन [प्रा.] लिमिटेड

के.पी.कक्कड़ रोड, इलाहाबाद-२११००३

सप्तम संस्करण : १९८९ © लेखक मूल्य : १६-००

साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, ९३, के० पी० कक्कड़ रोड, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित
तथा स्टार प्रिण्टर्स, २८७, दरियाबाद, इलाहाबाद द्वारा मुद्रित।



वक्तव्य

सूरदास हिन्दी साहित्य गगन के सूर्य माने जाते हैं, किन्तु इस महाकवि की प्रसिद्ध कृति 'सूरसागर' का पठन-पाठन रसास्वादन उतना नहीं हो पा रहा है जितना होना चाहिए। इसके अनेक कारण हैं। एक तो यह ग्रन्थ बहुत बड़ा है। दूसरे इसमें अनेक स्तरों की सामग्री मिश्रित रूप में पाई जाती है। तीसरे इसका कोई अच्छा संस्करण कुछ वर्ष पूर्व तक उपलब्ध नहीं था। अब सभा का सुन्दर संस्करण दो खंडों में प्राप्य है, किन्तु उसका मूल्य १२५) है, जो साधारण पाठक अथवा विद्यार्थी की पहुँच के बाहर है।

उपर्युक्त कठिनाइयों के कारण 'सूरसागर' के अनेक संकलन प्रकाशित हुए थे, किन्तु ये प्रायः वेङ्कटेश्वर प्रेस के संस्करण के आधार पर तैयार किए गए थे, अतः वे बहुत संतोषजनक नहीं थे। इसके अतिरिक्त इन संकलनों में पदचयन पर जितना ध्यान दिया जाना चाहिए था उतना नहीं दिया गया था। 'सूरसुषमा' में ये दोष नहीं हैं, किन्तु यह केवल सवा-सौ पदों का संग्रह है जो 'सूरसागर' का ठीक परिचय कराने के लिए अपर्याप्त है। अत: 'सूरसागर' के एक अच्छे प्रतिनिधि संग्रह की आवश्यकता बनी ही रही। 'सूरसागर सार' के द्वारा इस आवश्यकता की पूर्ति का यत्न किया गया है।

प्रस्तुत संग्रह में 'सूरसागर' के लगभग ५००० पदों में से ८३१ अत्यन्त उत्कृष्ट पदों का चयन है। संग्रह का आधार सभा का संस्करण है। विनय तथा भक्ति के पदों के उपरान्त कृष्णचरित सम्बन्धी पदों को निम्नलिखित छह शीर्षकों में विभक्त किया गया है :—१. गोकुल लीला, २. वृन्दावन लीला, ३. राधा-कृष्ण, ४. मथुरा गमन, ५. उद्धव-संदेश और ६. द्वारिका चरित। एक प्रकार से कृष्ण-जन्म से लेकर राधा-कृष्ण के अन्तिम मिलन तक का सम्पूर्ण कृष्णचरित क्रमबद्ध रूप में इस चयन में मिल सकेगा। प्रत्येक शीर्षक के अन्तर्गत अनेक उप-शीर्षकों में पद-समूह विभाजित किया गया है। ये उप-शीर्षक भी कथाक्रम के अनुसार हैं। परिशिष्ट (क) में रामचरित सम्बन्धी कुछ पद भी दे दिए गए हैं।

इस संकलन के सम्बन्ध में यह दावा तो नहीं किया जा सकता कि इसमें सूरसागर के समस्त उत्कृष्ट पद आ गए हैं, किन्तु इतना निश्चित है कि जो पद इसमें हैं वे अत्यन्त सुन्दर पदों में से हैं। केवल कुछ साधारण पद कहीं-कहीं कथा की शृंखला

जोड़ने के लिए रखने पड़े हैं। जो हो, प्रस्तुत चयन में संग्रहकर्त्ता के ३५ वर्षों के 'सूरसागर' के पठन-पाठन और मनन का अनुभव सन्निहित है, तो भी रुचि-विभिन्नता के लिए बराबर स्थान रहेगा। 'सूरसागर' के लोकप्रिय न हो सकने का कारण यह भी रहा कि इसे भागवत का रूपान्तर माना जाता रहा और इस रूप में यह ग्रन्थ अत्यन्त शिथिल और असम्बद्ध दिखाई पड़ता है। 'सूरसागर' का कृष्ण-लीला सम्बन्धी रूप, जो वास्तविक 'सूरसागर' है, द्वादशस्कंधी रूपरेखा में छिप जाता है। यही कारण है कि प्रस्तुत संग्रह में कृष्ण-चरित को ही प्रमुख स्थान दिया गया है। 'सूरसागर' की यह परम्परा अत्यन्त प्राचीन है इतना निश्चित है।

महाकवि सूरदास की जीवनी तथा कृति की आलोचना से सम्बद्ध प्रचुर साहित्य उपलब्ध है, किन्तु सूर की काव्यकला का सच्चा मूल्यांकन अभी नहीं हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे सहज कलात्मक रूप में इतनी रसानुभूति कहीं भी अन्यत्र नहीं मिलती। सहृदय पाठकगण स्वयं रसास्वादन करके इस मत के तथ्य की परीक्षा कर सकते हैं। 'सूरसागर' वास्तव में 'रससागर' है। आशा है कि प्रस्तुत चयन के द्वारा सूरदास की कृति का अधिक परिचय हिन्दी के पाठक तथा विद्यार्थी दोनों ही को सुलभ हो सकेगा। इसके फलस्वरूप वे जो आनन्द प्राप्त करेंगे उसी में मैं अपने परिश्रम की सफलता समझूंगा।

द्वितीय संस्करण के प्रारम्भ में 'महाकवि' सूरदास तथा उनकी रचनाएँ' शीर्षक संक्षिप्त कवि-परिचय बढ़ाया गया है तथा अन्त में दो उपयोगी परिशिष्ट दिए जा रहे हैं। परिशिष्ट (ख) में आई हुई प्रमुख अंतर्कथाएँ संक्षेप में दी गई हैं, तथा परिशिष्ट (ग) में कठिन शब्दों के अर्थ दिये गये हैं। अन्त में संकलित पदों की एक पदानुक्रमणी दी गई है। आशा है विद्यार्थी वर्ग को इस परिवर्द्धित सामग्री से सहायता मिलेगी।

इन दोनों परिशिष्टों के तैयार करने का सम्पूर्ण श्रेय मेरे प्रिय सहयोगी डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा को है। श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने पदानुक्रमणी तैयार करने का कष्ट उठाया था, इसके लिए मैं उनका आभारी हूं।

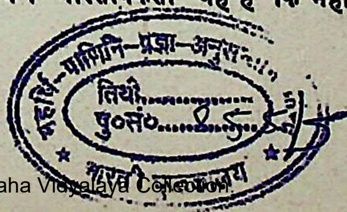
धीरेन्द्र वर्मा

महाकवि सूरदास और उनकी रचनाएँ

महाकवि सूरदास (लगभग १४७८-१५८२ ई०) के पूर्वार्ध जीवन के विस्तार श्री हरिराय जी ने 'चौरासी वार्ता' की 'भाव प्रकाश' नाम की अपनी टीका में दिए हैं। इन्हें हम कवि की मृत्यु के लगभग सौ वर्ष बाद की अनुश्रुति कह सकते हैं। 'भाव प्रकाश' के अनुसार सूरदास का जन्म दिल्ली के निकट सोही नाम के गाँव में एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वे जन्म से ही सूर थे किन्तु सगुन बताने की अद्भुत शक्ति रखते थे। पद-रचना तथा संगीत की प्रतिभा भी इनमें लड़कपन से ही थी। परिवार के लोगों से कुछ मतभेद हो जाने के कारण ये घर छोड़कर एक निकट के गाँव में रहने चले गए थे। अट्ठारह वर्ष की वय में इन्हें पूर्ण विरक्ति हो गई और ये मथुरा-आगरा के बीच गऊघाट पर आकर रहने लगे। 'भाव प्रकाश' में सूरदास जी के सम्बन्ध में अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाओं का भी उल्लेख है।

सूरदास की उत्तरार्ध जीवनी के विस्तार गोकुलनाथ के नाम से प्रसिद्ध 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में दिए हुए हैं। इसका संकलन भी कदाचित् श्री हरिराय जी ने किया था। सूरदास विरक्त स्वामी के रूप में गऊघाट पर रहते थे और उनके अनेक सेवक बन गए थे। पद-रचना और संगीत सम्बन्धी उनकी ख्याति अब दूर-दूर तक फैल चुकी थी। किन्तु उनकी भगवत-भक्ति का दृष्टिकोण दास्य भाव का था। गऊघाट पर ही इनकी महाप्रभु वल्लभाचार्य से भेंट हुई और उनकी वात्सल्य तथा सख्य भाव की भक्ति-भावना से वे इतने प्रभावित हुए कि पुष्टिमार्ग में दीक्षित हो गये। इसके उपरांत सूरदास गऊघाट छोड़कर गोवर्द्धन आकर रहने लगे और गोवर्द्धन में प्रायः नाथ जी के मन्दिर में और कभी-कभी गोकुल में श्री नवनीत प्रियाजू के समक्ष पद बना कर कीर्तन करते थे। उनका शेष समस्त जीवन इसी प्रकार भगवान् की सेवा में कटा। सूरदास जी की मृत्यु बड़ी आयु में श्रीकृष्ण की रासभूमि परासोली में महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुत्र तथा उत्तराधिकारी श्री विट्ठलनाथ जी के समक्ष हुई थी। इसका आँखों देखा सा वर्णन 'चौरासी वार्ता' में सुरक्षित है।

'साहित्यलहरी' के प्रसिद्ध पद के आधार पर कुछ आलोचक सूरदास को ब्रह्म भट्ट और महाकवि चन्द्र का वंशज मानते थे। ये सात भाई थे, नेत्रहीन थे और भगवान् ने इनकी एक बार रक्षा की थी, तब से ये भगवद्भजन में ही अपना सारा समय लगाने लगे थे। गुसाईं विट्ठलनाथ ने इनको वल्लभ-सम्प्रदाय के आठ सर्वश्रेष्ठ कवियों में स्थान दिया था। सूरसागर के पदों में कवि ने अपने अथवा अपने वंश के सम्बन्ध में कोई भी महत्वपूर्ण बात नहीं कही है। इस प्रकार के साधारण उल्लेख अवश्य अनेक स्थलों पर आए हैं कि वे नेत्रहीन थे, अत्यन्त दीन-हीन थे, और भगवान् को ही अपना एक मात्र सहारा मानते थे। वास्तविकता यह है कि महाकवि की



प्रारम्भिक जीवनी के प्रामाणिक विस्तार उपलब्ध नहीं हैं। उत्तरार्ध जीवनी से सम्बद्ध चोरासी वार्त्ता के उल्लेखों को प्रामाणिक माना जा सकता है। किन्तु ये जीवनी सम्बन्धी कोई विस्तार नहीं देते थे।

महाकवि सूरदास की रचनाओं में सबसे प्रमुख और प्रसिद्ध रचना 'सूरसागर' है। अन्य समस्त रचनाएँ अत्यन्त गौण हैं। 'सूरसारावली' ११०७ पदों का खंडकाव्य सा है, जिसमें भागवत् की कथा को ही संक्षिप्त वर्णनात्मक रूप में दिया गया है। इसमें कोई काव्य सम्बन्धी सौन्दर्य भी नहीं है। 'साहित्य लहरी' ११८ कूट पदों का संग्रह है, जिसमें किसी अलंकार, नायिका या भाव का उल्लेख करके कूट शैली में उनके उदाहरण दिये गये हैं। अधिकांश आलोचक इन दोनों ग्रंथों को सूरकृत मानते हैं, यद्यपि कुछ विद्वान् इस सम्बन्ध में संदिग्ध भी हैं। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में सूरदास के नाम से लगभग १०, १२ अन्य ग्रन्थों के नाम मिलते हैं, जैसे ब्याहलो, पदसंग्रह, दशमस्कंध, टीका, नागलीला, भागवत, सूर-पचीसी, गोवर्द्धनलीला, सूरसागर सार, रामजन्म, एकादशी माहात्म्य आदि; जिनमें कुछ प्रकाशित भी हो चुके हैं। इन ग्रंथों में कुछ तो कदाचित् महाकवि सूरदास की रचनाएँ नहीं हैं और सूरसागर में ही विशेष कथाओं अथवा लीलाओं से सम्बद्ध पदों के संग्रह मात्र हैं। इस प्रकार महाकवि की एकमात्र प्रामाणिक और महत्वपूर्ण रचना सूरसागर ही रह जाती है।

सूरदास की हस्तलिखित पोथियों की दो परम्पराएँ मिलती हैं। एक में श्रीकृष्ण के केवल व्रजचरित सम्बन्धी पदों का लीला-क्रम के अनुसार संकलन है। सूरसागर की यह परम्परा कदाचित् अधिक प्राचीन है। नवल किशोर प्रेस का सूरसागर इसी परम्परा की पोथियों के आधार पर प्रकाशित किया गया था। सूरसागर की दूसरी परम्परा में पदों तथा खंडकाव्यों के रूप प्राप्त महाकवि की लगभग समस्त रचनाओं को एकत्रित तथा श्रीमद्भागवत के द्वादशस्कंधी क्रम के अनुसार क्रमबद्ध किया गया था। यह परम्परा वेंकटेश्वर प्रेस तथा नागरी प्रचारिणी सभा के संस्करणों से मिलती है। सूरसागर की इस परम्परा में भी श्रीकृष्ण के व्रजलीला सम्बन्धी पद ही प्रधान हैं। भागवत् के अन्य स्कंधों से सम्बन्धित सामग्री अत्यन्त संक्षिप्त है तथा काव्य-स्तर की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है द्वादशस्कंधी सूरसागर की निम्नलिखित विषय-सूची से यह स्थिति स्पष्ट हो जायेगी :—

स्कंध	विषय	पद संख्या
१. व्यास अवतार (१),	विनयपद (२२३)	३४३
२. चौबीस अवतारों की सूची		३८
३. सनकादि, (२) बाराह, (३) तथा कपिलदेव, (४) अवतार		१३

ऊपर चौबीस अवतारों की सूची में दस मुख्य अवतार मोटे टाइप में दिये गए हैं। इस प्रकार सूरसागर की इस परम्परा के लगभग ५००० पदों में ४००० से अधिक पद श्रीकृष्ण की व्रजलीलाओं से सम्बद्ध हैं, तथा शेष १००० पदों में श्रीकृष्ण का द्वारिका चरित, विनय पद, राम अवतार सम्बन्धी पद तथा २२ अवतारों का अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन है। यहाँ इस बात का उल्लेख कर देना भी अनुचित न होगा कि सूरदास ने लगभग सवा लाख पद लिखे थे, इस किंवदंती का कोई भी प्रामाणिक आधार नहीं है। कवि की पद-रचना पांच छह हजार पदों के बीच ही रही होगी, जो लगभग प्राप्त है। वास्तव में यह संख्या भी कम नहीं है।

जैसा ऊपर की सूची से स्पष्ट है, द्वादशस्कंधी परम्परा के सूरसागर में दशम स्कंध के पदसमूह के बाद अधिक संख्या में प्रथम स्कंध के विनयपद तथा नवम-स्कंध के राम-अवतार सम्बन्धी पद पाए जाते हैं। विनयपदों में दास्य भक्ति तथा दैन्य भावना प्रधान है। बहुत संभव है कि इस पद समूह में कवि की कुछ प्रारम्भिक रचनाएं हों, जब वे गऊघाट पर रहते थे और महाप्रभु वल्लभाचार्य के सम्पर्क में नहीं आए थे, तथा कुछ की प्रौढ़ शैली को देखकर ऐसा मालूम होता है कि वे कवि की वृद्धावस्था की रचनाएँ होनी चाहिए। रामावतार का विस्तृत वर्णन होना स्वाभाविक है क्योंकि कृष्णावतार के अतिरिक्त भगवान् के अवतारों में यह मुख्य है। सूरदास ने द्वारिकावासी श्रीकृष्ण का चरित भी बहुत संक्षेप में ही दिया है। आकार तथा स्तर दोनों ही दृष्टि-कोणों से यह स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण की व्रजलीलाओं के गान में ही कवि की वास्तविक अभिरुचि थी।

इसमें संदेह नहीं कि सूरसागर में वर्णित श्रीकृष्ण की लीलाओं का मूलाधार श्रीमद्भागवत दशम स्कंध पूर्वार्ध है, किन्तु इस आधार के कारण सूरसागर को श्रीमद्-भागवत का उल्था अथवा स्वतन्त्र अनुवाद मानना भारी भूल होगी। महाकवि ने अपनी असाधारण प्रतिभा के द्वारा परिचित लीलाओं के वर्णनों में अनेक मौलिक कल्पनाओं का समावेश किया है, इसके अतिरिक्त अनेक नई लीलाओं तथा चरित्रों को भी बढ़ाया है जो भागवत में नहीं मिलते। उदाहरण के लिए श्रीमद्भागवत में राधा के नाम तक का उल्लेख नहीं है, जब कि सूरसागर में राधा-कृष्ण प्रेम का प्रारम्भ, विकास तथा परिणति का बहुत ही सजीव, आकर्षक और महत्त्वपूर्ण चित्रण है। इसी प्रकार 'भ्रमर गीत' अथवा 'उद्धव गोपी' संवाद वाले अंश में श्रीमद्भागवत में उद्धव श्रीकृष्ण का संदेश गोपियों को सुनाते हैं और वे उसे शिरोधार्य कर लेती हैं। सूरसागर का भ्रमर-गीत सगुण-निर्गुण वादों और कर्म, ज्ञान तथा भक्ति मार्गों के सिद्धांतों के शास्त्रार्थ के साथ-साथ प्रौढ़ ध्वनि काव्य का एक अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण है।

रस की दृष्टि से सूरसागर में प्रधान रूप में केवल शृङ्गार रस के संयोग और वियोग पक्षों का चित्रण है, किन्तु इस रस की जिस बारीकी और गहराई में कवि की पैठ है वह उसकी असाधारण प्रतिभा का परिचायक है। मुख्य रस के चित्रण के साथ-साथ अनुभावों तथा व्यभिचारी अथवा संचारी भावों के भी सैकड़ों सजीव उदाहरण सूरसागर में बिखरे पड़े हैं। सब मिलाकर कवि की रचना का क्षेत्र प्रत्येक दृष्टि से सीमित कहा जा सकता है – श्रीकृष्ण की व्रज-लीला, शृङ्गार रस तथा पदशैली, किन्तु इस सीमित क्षेत्र में महाकवि के समकक्ष क्या निकट भी तो कोई अन्य कवि नहीं पहुँच सका है।

सूरसागर की भाषा व्रजभाषा है, यद्यपि एक संग्रह ग्रंथ होने के कारण उसमें इस भाषा के अनेक स्तर मिलते हैं। किन्तु सूरसागर के मुख्य भाग की भाषा-शैली अत्यन्त प्रौढ़ तथा साहित्यिक है। सूरदास जी के लगभग एक शताब्दी पहले से व्रज-भाषा में साहित्य रचना होने लगी थी, किन्तु व्रजभाषा को साहित्यिक भाषा के उच्च सिंहासन पर आसीन करने का श्रेय इस महाकवि को ही प्राप्त है।

वल्लभ-सम्प्रदाय में सूरसागर एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक ग्रंथ माना जाता है। किन्तु कवि की रचना में संकुचित साम्प्रदायिकता का पूर्ण अभाव है। वल्लभ-सम्प्रदाय के शुद्धाद्वैतवाद दर्शन के विस्तार भी 'सूरसागर' में नहीं मिलते। धर्म अथवा दर्शन के कुछ मूल सिद्धान्तों को कवि ने अवश्य माना है, जैसे श्रीकृष्ण को साक्षात् परब्रह्म अथवा उनका अवतार मानना, राधा को परब्रह्म की शक्ति के रूप में समझना, गोपियों को आत्मा का प्रतीक मानना, श्रीकृष्ण अथवा परब्रह्म की प्राप्ति के उपायों में प्रेमभक्ति के मार्ग को सर्वश्रेष्ठ समझना इत्यादि। किन्तु इन मूल सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति कवि ने उत्कृष्टतम काव्य के रूप में की है। यही कारण है कि भावुक कृष्णभक्तों तथा सहृदय काव्य-रसिकों, दोनों ही की पूर्ण तुष्टि करने में महाकवि की यह असाधारण कृति समान रूप से पूर्णतया सफल हुई है।

विषय-सूची

सूरसागर सार

विनय तथा भक्ति

मंगलाचरण

चरन-कमल बंदौं हरि-राइ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अँधे कों सब कछु दरसाइ।
बहिरौ सुनै, गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार-बार बंदौं तिहिं पाइ ॥१॥

सगुणोपासना

अबिगत-गति कछु कहत न आवै।
ज्यौं गूँगै मीठे फल कौ रस अंतरगत हीं भावै।
परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै।
मन-बानी कौं अगम-अगोचर, सो जाने जो पावै।
रूप-रेख-गुन-जाति जुगति-बिनु निरालंब कित धावै।
सब विधि अगम बिचारहिं तातैं सूर सगुन-पद गावै ॥२॥

भक्त-वत्सलता

बासुदेव की बड़ी बड़ाई।
जगत पिता, जगदीस, जगत-गुरु, निज भक्तनि की सहत ढिठाई।
भृगु कौ चरन राखि उर ऊपर, बोले बचन सकल-सुखदाई।
सिव-बिरंचि मारन कौं धाए, यह गति काहू देव न पाई।
बिनु-बदलें उपकार करत हैं, स्वारथ बिना करत मित्राई।
रावन अरि कौ अनुज बिभीषन, ताकौं मिले भरत की नाईं।
बकी कपट करि मारन आई, सो हरि जू बैकुंठ पठाई।
बिनु दीन्हैं ही देत सूर प्रभु, ऐसे हैं जदुनाथ गुसाईं ॥३॥

प्रभु कौ देखौ एक सुभाइ।
अति-गंभीर-उदार-उदधि हरि, जान-सिरोमनि राइ।
तिनका सौं अपने जनकौ गुन मानत मेरु-समान।
सकुचि गनत अपराध-समुद्रहिं बूँद-तुल्य भगवान।
बदन-प्रसन्न कमल सनमुख ह्वै देखत हौं हरि जैसें।
बिमुख भए अकृपा न निमिषहूँ, फिरि चितयौं तो तैसें।

भक्त-विरह-कातर करुनामय, डोलत पाछैं लागे ।
सूरदास ऐसे स्वामी कौं देहिं पीठि सो अभागे ।।४।।

राम भक्तवत्सल निज बानौं ।
जाति, गोत, कुल नाम, गनत नहिं, रंक होइ कै रानौं ।
सिब-ब्रह्मादिक कौन जाति प्रभु, हौं अजान नहिं जानौं ।
हमता जहाँ तहाँ प्रचु नाहीं, सो हमता क्यौं मानौं ?
प्रगट खंभ तैं दए दिखाई, जद्यपि कुल कौ दानौ ।
रघुकुल राघव कृष्न सदा ही, गोकुल कीन्हौं थानौ ।
बरनि न जाइ भक्त की महिमा, बारंबार बखानौं ।
ध्रुव रजपूत, बिदुर दासी-सुत कौन कौन अरगानौ ।
जुग जुग बिरद यहै चलि आयौ, भक्तनि हाथ बिकानौ ।
राजसूय मैं चरन पखारे स्याम लिए कर पानौ ।
रसना एक, अनेक स्याम-गुन, कहँ लगि करौं बखानौ ।
सूरदास-प्रभु की महिमा अति, साखी बेद पुरानौ ।।५।।

काहू के कुल तनन विचारत ।
अविगत की गति कहि न परति है, व्याध अजामिल तारत ।
कौन जाति अरु पाँति बिदुर की, ताही कैं पग धारत ।
भोजन करत माँगि घर उनकैं, राज मान-मद टारत ।
ऐसे जनम-करम के ओछे, ओछनि हूँ ब्यौहारत ।
यहै सुभाव सूर के प्रभु कौ, भक्त-बछल प्रन पारत ।।६।।

सरन गए को को न उबारचौ ।
जब जब भीर परी संतति कौं, चक्र सुदरसन तहाँ सँभारचौ ।
भयौ प्रसाद जु अंबरीष कौं, दुरबासा कौ क्रोध निवारचौ ।
ग्वालनि हेत धरचौ गोबर्धन, प्रकट इंद्र कौ गर्ब प्रहारचौ ।
कृपा करी प्रहलाद भक्त पर, खंभ फारि हिरनाकुस मारचौ ।
नरहरि रूप धरचौ करुनाकर, छिनक माहिं उर नखनि बिदारचौ ।
ग्राह ग्रसत गज कौं जल बूड़त, नाम लेत वाकौ दुख टारचौ ।
सूर स्याम बिनु और करै को, रंग भूमि मैं कंस पछारचौ ।।७।।

स्याम गरीबनि हूँ के ग्राहक ।
दीनानाथ हमारे ठाकुर, साँचे प्रीति-निबाहक ।
कहा बिदुर की जाति-पाँति, कुल, प्रेम-प्रीति के लाहक ।

कह पाँडव कैँ घर ठकुराई ? अरजुन के रथ-बाहक ।
कहा सुदामा कैं धन हौ ? तौ सत्य-प्रीति के चाहक ।
सूरदास सठ, तातैं हरि भजि आरत के दुख-दाहक ।।८।।

जैसेँ तुम गज कौ पाउँ छुड़ायौ ।
अपने जन कौँ दुखित जानि कै पाउँ पियादे धायौ ।
जहँ जहँ गाढ़ परी भक्तनि कौँ तहँ तहँ आपु जनायौ ।
भक्ति हेत प्रहलाद उबार्‌यौ, द्रौपदि-चीर बढ़ायौ ।
प्रीति जानि हरि गए बिदुर कैँ, नामदेव-घर छायौ ।
सूरदास द्विज दीन सुदामा, तिहिँ दारिद्र नसायौ ।।९।।

जापर दीनानाथ ढरै ।
सोइ कुलीन, बड़ौ सुँदर सोइ, जिहिँ पर कृपा करै ।
कौन बिभीषन रंक-निसाचर, हरि हँसि छत्र धरै ।
राजा कौन बड़ौ रावन तैँ, गर्बहिँ-गर्ब गरै ।
रंकव कौन सुदामाहूँ तैँ, आप समान करै ।
अधम कौन है अजामील तैँ, जम तहँ जात डरै ।
कौन बिरक्त अधिक नारद तैँ, निसि-दिन भ्रमत फिरै ।
जोगी कौन बड़ौ संकर तैँ, ताकौँ काम छरै ।
अधिक कुरूप कौन कुबिजा तैँ, हरि पति पाइ तरै ।
अधिक सुरूप कौन सीता तैँ, जनम बियोग भरै ।
यह गति-मति जानै नहिं कोऊ, किहिँ रस रसिक ढरै ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, फिरि फिरि जठर जरै ।।१०।।

अविद्या माया

बिनती सुनौ दीन की चित्त दै, कैसेँ तुव गुन गावै ?
माया नटी लकुटी कर लीन्हें, कोटिक नाच नचावै ।
दर-दर लोभ लागि लिए डोलति, नाना स्वाँग बनावै ।
तुम सौँ कपट करावति प्रभु जू, मेरी बुधि भरमावै ।
मन अभिलाष-तरंगनि करि करि, मिथ्या निसा जगावै ।
सोवत सपने मैँ ज्यौं संपति, त्यौं दिखाइ बौरावै ।
महा मोहिनी मोहि आतमा, अपमारगहिं लगावै ।
ज्यौँ दूती पर-बधू भोरि कै, ले पर-पुरुष दिखावै ।

मेरे तो तुम पति, तुमही गति, तुम समान को पावै ?
सूरदास प्रभु तुम्हरी कृपा बिनु, को मो दुख बिसरावै ।।११।।

हरि, तेरौ भजन कियौ न जाइ ।
कह करौं, तेरी प्रबल माया देति मन भरमाइ ।
जबै आवौं, साधु-संगति कछुक मन ठहराइ ।
ज्यौं गयंद अन्हाइ सरिता, बहुरि वहै सुभाइ ।
वेष धरि धरि हरयौ पर-धन, साधु-साधु कहाइ ।
जैसे नटवा लोभ-कारन करत स्वाँग बनाइ ।
करौं जतन, न भजौं, तुमकौं, कछुक मन उपजाइ ।
सूर प्रभु की सबल माया, देति मोहिं भुलाइ ।।१२।।

गुरु बिनु ऐसो कौन करै ?
माला-तिलक मनोहर बाना, लै सिर छत्र धरै ।
भवसागर तैं बूड़त राखै, दीपक हाथ धरै ।
सूर स्याम गुरु ऐसौ समरथ, छिन मैं ले उधरै ।।१३।।

नाम महिमा

हमारे निर्धन के धन राम ।
चोर न लेत, घटत, नहि कबहूँ, आवत गाढैं काम ।
जल नहिं बूड़त, अगिनि न दाहत, है ऐसौ हरि नाम ।
वैकुंठनाम सकल सुख-दाता, सूरदास-सुख-धाम ।।१४।।

बड़ी है राम नाम की ओट ।
सरन गऐं प्रभु काढ़ि देत नहिं करत कृपा कैं कोट ।
बैठत सबै सभा हरि जू की, कौन बड़ौ को छोट ?
सूरदास पारस के परसैं मिटति लोह की खोट ।।१५।।

जो सुख होत गुपालहिं गाऐं ।
सो सुख होत न जप-तप कीन्है, कोटिक तीरथ न्हाऐं ।
दिऐं लेत नहिं चारि पदारथ, चरन-कमल चित लाऐं ।
तीनि लोक तृन-सम करि लेखत, नँद-नँदन उर आऐं ।
बंसीबट, वृन्दावन, जमुना, तजि बैकुंठ न जावै ।
सूरदास हरि को सुमिरन करि, बहुरि न भव-जल आवै ।।१६।।

बंदौं चरन-सरोज तिहारे।
सुंदर स्याम कमल-दल-लोचन, ललित त्रिभंगी प्रान पियारे।
जे पद-पदुम सदा सिव के धन, सिंधु-सुता उर तैं नहिं टारे।
जे पद-पदुम तात-रिस-त्रासत, मन-बच-क्रम प्रहलाद सँभारे।
जे पद-पदुम-परस-जल-पावन, सुरसरि-दरस कटत अघ भारे।
जे पद-पदुम-परस-रिषि-पतिनी बलि, नृग, ब्याध, पतित बहु तारे।
जे पद-पदुम रमत वृन्दावन, अहि-सिर धरि, अगनित रिपु मारे।
जे पद-पदुम परसि ब्रज-भामिनि, सरबस दै, सुत-सदन बिसारे।
जे पद-पदुम रमत पांडव-दल, दूत भए, सब काज सँवारे।
सूरदास तेई पद-पंकज, त्रिबिधि-ताप-दुख-हरन हमारे ॥१७॥

अब कैं राखि लेहु भगवान।
हौं अनाथ बैठ्यो द्रुम-डरिया, पारधि साधे बान!
ताकैं डर मैं भाज्यौ चाहत, ऊपर ढुक्यौ सचान।
दुहूँ भाँति दुख भयो आनि यह, कौन उबारै प्रान?
सुमिरत ही अहि डस्यौ पारधी, कर छूट्यौ संधान।
सूरदास सर लग्यों सचानहिं, जय जय कृपानिधान ॥१८॥

आछौ गात अकार गारचौ।
करी न प्रीति कमल-लोचन सौं, जनम जुवा ज्यौं हारचौ।
निसि-दिन विषय-बिलासनि बिलसत, फूटि गईं तब चारचौ।
अब लाग्यौ पछितान पाइ दुख, दीन, दई कौ मारचौ।
कामी, कृपन, कुचील, कुदरसन, को न कृपा करि तारचौ।
तातैं कहत दयाल देव-मनि, काहैं सूर बिसारचौ ॥१९॥

तुम बिनु भूलोइ भूलौ डोलत।
लालच लागि कोटि देवन के, फिरत कपाटनि खोलत।
जब लगि सरबस दीजै उनकौं, तबहीं लगि यह प्रीति।
फल माँगत फिरि जात मुकर ह्वै, यह देवन की रीति।
एकनि कौं जिय-बलि दै पूजे, पूजत नैंकु न तूठे।
तब पहिचानि-सबनि कौं छाँड़े नख-सिख लौं सब झूठे।
कंचन मनि तजि काँचहिं सैंतत, या माया के लीन्हे।
चारि पदारथ हूँ को दाता, सुतौ विसर्जन कीन्है।

तुम कृतज्ञ, करुनामय, केसव, अखिल लोक के नायक ।
सूरदास हम दृढ़ करि पकरे, अब ये चरन सहायक ॥२०॥

आजु हौं एक-एक करि टरिहौं ।
कै तुमहीं, कै हमहीं माधौ, अपने भरोसैं लरिहौं ।
हौं तो पतित सात पीढ़िनि कौ, पतितै ह्वै निस्तरिहौं ।
अब हौं उघरि नच्यौ चाहत हौं, बिरद बिन करिहौं ।
कत अपनी परतीनि नसावत, मैं पायौ हरि हीरा ।
सूर पतित तबहीं उठिहै प्रभु, जब हँसि दैहो बीरा ॥२१॥

प्रभु, हौं सब पतितनि कौ टीकौ ।
और पतित सब दिवस चारि के, हौं तौ जनमत ही कौ ।
बधिक अजामिल, गनिका, तारी और पूतना ही कौ ।
मोहिं छाँड़ि तुम और उधारे, मिटै सूल क्यौं जी कौ ।
कोउ न समरथ अघ करिबे कौं, खैंचि कहत हौं लीकौ ।
मरियत लाज सूर पतितनि में, मौहूँ तैं को नीकौ ॥२२॥

अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल ।
काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल ।
महामोह के नूपुर बाजत, निंदा-सब्द-रसाल ।
भ्रम-भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल ।
तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना बिधि दै ताल ।
माया को कटि फेंटा बाँध्यौ, लोभ-तिलक दियौ भाल ।
कोटिक कला काछि दिखराई, जल-थल सुधि नहिं काल ।
सूरदास की सबै अविद्या, दूरि करौ नँदलाल ॥२३॥

हमारे प्रभु, औगुन चित न धरौ ।
समदरसी है नाम तुम्हारौ, सोई पार करौ ।
इक लोहा पूजा मैं राखत, इक घर बधिक परौ ।
सो दुबिधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरौ ।
एक नदिया इक नार कहावत, मैलौ नीर भरौ ।
जब मिल गए तब एक बरन ह्वै, गङ्गा नाम परौ ।
तन माया, ज्यौ ब्रह्म कहावत, सूर सु मिल बिगरौ ।
कै इनकौ निरधार कीजियै, कै प्रन जात टरौ ॥२४॥

भगवदाश्रय

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।
जैसे उड़ि जहाज को पच्छी, फिर जहाज पर आवै ।
कमल-नैन कौं छाँड़ि महातम, और देव कौं ध्यावै ।
परम गंग कौं छाँड़ि पियासौ, दुरमति कूप खनावै ।
जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यौं करील-फल भावै ।
सूरदास-प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै ।।२५।।

हमैं नँदनंदन मोल लिए ।
जम के फंद काटि मुकराए, अभय अजाद किये ।
भाल तिलक, स्रबननि तुलसीदल, मेटे अंक बिये ।
मूँड़यौ मूँड़, कंठ बनमाला, मुद्रा-चक्र दिये ।
सब कोउ कहत गुलाम स्याम कौ, सुनत सिरात हिये ।
सूरदास कौं और बड़ौ सुख, जूठनि खाइ जिये ।।२६।।

राखौ पति गिरिवर गिरि-धारी ।
अब तौ नाथ, रह्यौ कछु नाहिन, उघरत माथ अनाथ पुकारी ।
बैठी सभा सकल भूपनि की, भीषम-द्रौन-करन व्रतधारी ।
कहि न सकत कोउ बात बदन पर, इन पतितति मो आपति बिचारी ।
पांडु-कुमार पवन से डोलत, भीम गदा कर तैं महि डारी ।
रही न पैज प्रबल पारथ की, जब तैं धरम-सुत घरनी हारी ।
अब तौ नाथ न मेरौ कोई, बिनु श्रीनाथ-मुकुंद-मुरारी ।
सूरदास अवसर के चूकैं फिरि पछितैहौ देखि उघारी ।।२७।।

भावी

करी गोपाल की सब होइ ।
जो अपनौ पुरुषारथ मानत, अति झूठौ है सोइ ।
साधन, मंत्र, जंत्र, उद्यम, बल, ये सब डारौ धोइ ।
जो कछु लिखि राखी नँदनंदन, मेटि सकै नहिं कोइ ।
दुख-सुख, लाभ-अलाभ समुझि तुम, कतहिं मरतहौ रोइ ।
सूरदास स्वामी करुनामय, स्याम-चरन मन पोइ ।।२८।।

होत सो जो रघुनाथ ठटै ।
पचि-पचि रहैं सिद्ध, साधक, मुनि, तऊ न बढ़ै-घटै ।
जोगी जोग धरत मन अपनैं सिर पर राखि जटै ।
ध्यान धरत महादेवऽरु ब्रह्मा, तिनहूँ पै न छटै ।

जती, सती, तापस आराधैं, चारौं बेद रटै ।
सूरदास भगवन्त-भजन बिनु, करम-फाँस न कटै ।।२९।।

भावी काहूँ सौं न टरै ।
कहँ वह राहु, कहाँ वै रवि ससि, आनि संजोग परै ।
मुनि बसिष्ट पंडित अति ज्ञानी, रचि-पचि लगन धरै ।
तात-मरन, सिय हरन, राम बन-बपु धरि बिपति भरै ।
रावन जीति कोटि तैंतीसौ, त्रिभुवन राज करै ।
मृत्युहिं बाँधि कूप मैं राखै, भावी-बस सो मरै ।
अरजुन के हरि हुते सारथी, सोऊ बन निकरै ।
द्रुपद-सुता कौ राजसभा, दुस्सासन चीर हरै ।
हरीचंद सो को जगदाता, सो घर नीच भरै ।
जौ गृह छाँड़ि देस बहु धावै, तऊ वह संग फिरै ।
भावी कैं बस तीन लोक हैं, सुर नर देह धरै ।
सूरदास प्रभु रची सु ह्वै है, को करि सोच मरै ।।३०।।

तातैं सेइयै श्री जदुराइ ।
संपति बिपति, बिपति तैं संपति, देह कौ यहै सुभाइ ।
तरुवर फूले, फरै, पतझरै, अपने कालहिं पाइ ।
सरवर नीर भरै, भरि उमड़ै, सूखै खेह उड़ाइ ।
दुतिया चंद बढ़त ही बाढ़े, घटत-घटत घटि जाइ ।
सूरदास संपदा-आपदा, जिनि कोऊ पतिआइ ।।३१।।

वैराग्य

किते दिन हरि-सुमिरन बिनु खोए ।
पर-निंदा रसना के रस करि, केतिक जनम बिगोए ।
तेल लगाइ कियौ रुचि-मर्दन, बस्तर मलि-मलि धोए ।
तिलक बनाइ चले स्वामी ह्वै, विषयिनि के मुख जोए ।
काल बली तैं सब जग काँप्यौ, ब्रह्मादिक हूँ रोए ।
सूर अधम की कहौ कौन गति, उदर भरे, परि सोए ।।३२।।

नर तैं जनम पाइ कह कीनौ ?
उदर भरयौ कूकर लौं, प्रभु कौ नाम न लीनौ ।
श्री भागवत सुनी नहिं श्रवननि, गुरु गोबिंद नहिं चीनौ ।
भाव-भक्ति कछु हृदय न उपजी, मन विषया मैं दीनौ ।

झूठौ सुख अपनौ करि जान्यो, परस प्रिया कैं भीनौ।
अघ कौ मेरु बढ़ाइ अधम तू, अंत भयौ बलहीनौ।
लख चौरासी जोनि भरमि कै, फिर वाहीं मन दीनौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, ज्यौं अंजलि-जल छीनौ ॥३३॥

इत-उत देखत जनम गयौ।
या झूठी माया कैं कारन, दुहुँ दृग अंध भयौ।
जनम-कष्ट तैं मातु दुखित भई, अति दुख प्रान सह्यौ।
वै त्रिभुवनपति बिसरि गए तोहिँ, सुमिरत क्यों न रह्यौ।
श्रीभागवत सुन्यौ नहिँ कबहूँ, बीचहिँ भटकि मर्‌यौ।
सूरदास कहै, सब जग बूड़्यौ, जुग-जुग भक्त तर्‌यौ ॥३४॥

सबै दिन गए विषय के हेतु।
तीनौं पन ऐसौं ही खोए, केस भए सिर सेत।
आँखिनि अंध, स्रवन नहिँ सुनियत, थाके चरन समेत।
गंगा-जल तजि पियत कूप-जल, हरि तजि पूजत प्रेत।
मन-बच-क्रम जौ भजे स्याम कौं, चारि पदारथ देत।
ऐसौ प्रभू छाँड़ि क्यों भटकै, अजहूँ चेति अचेत।
राम नाम बिनु क्यों छूटौगे, चंद गहैं ज्यौं केत।
सूरदास कछु खरच न लागत, राम नाम मुख लेत ॥३५॥

द्वै मैं एकौ तौ न भई।
ना हरि भज्यौ, न गृह सुख पायौ, बृथा बिहाइ गई।
ठानी हुती और कछु मन मैं, औरै आनि ठई।
अबिगत-गति कछु समुझि परत नहिँ, जौ कछु करत दई।
सुत सनेहि-तिय सकल कुटुँब मिलि, निसि-दिन होत खई।
पद-नख-चंद चकोर विमुख मन, खात अँगार मई।
विषय-बिकार-दवानल उपजी, मोह-बयारि लई।
भ्रमत-भ्रमत बहुतै दुख पायौ, अजहुँ न टेँव गई।
होत कहा अबके पछिताएँ, बहुत बेर बितई।
सूरदास सेये न कृपानिधि, जो सुख सकल मई ॥३६॥

अब मैं जानी, देह बुढ़ानी।
सीस, पाउँ, कर कह्यौ न मानत, तन की दशा सिरानी।
आन कहत, आनै कहि आवत, नैन-नाक बहै पानी।

मिटि गइ चमक-दमक अँग-अँग की, मति अरु दृष्टि हिरानी।
नाहिँ रहि कछु सुधि तन-मन की, भई जु बात बिरानी।
सूरदास अब होत बिगूचनि, भजि लै सारँगपानी ॥३७॥

मन प्रबोध

सब तजि भजिऐ नन्द कुमार।
और भजे तैं काम सरै नहिँ, मिटै न भव जंजार।
जिहिँ जिहिँ जोनि जन्म धार्‌यो, बहु जोर्‌यो अघ कौ भार।
जिहिँ काटन कौं समरथ हरि कौं तीछन नाम-कुठार।
बेद, पुरान, भागवत, गीता, सब कौ यह मत सार।
भव समुद्र हरि-पद-नौका बिनु, कोउ न उतारै पार।
यह जिय जानि, इहीं छिन भजि, दिन बीते जात असार।
सूर पाइ यह समौ लाहु लहि, दुर्लभ फिरि संसार ॥३८॥

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं।
ता दिन तेरे तन-तरुवर के, सबै पात झरि जैहैं।
या देही कौ गरब न करिये, स्यार-काग-गिध खैहैं।
तीननि में तन कृमि, कै बिष्टा कै ह्वै खाक उड़ैहैं।
कहँ वह नीर, कहाँ वह सोभा, कहँ रँग-रूप दिखैहैं।
जिन लोगनि सौं नेह करत है, तेई देखि घिनैहैं।
घर के कहत सबारे काढ़ौ, भूत होइ घर खैहैं।
जिन पुत्रनिहिँ बहुत प्रतिपाल्यौ, देवी-देव मनैहैं।
तेई लै खोपरी बाँस दे, सीस फोरि बिखरैहैं।
अजहूँ मूढ़ करौ सतसंगति, संतनि मैं कछु पैहैं।
नर-बपु धारि नाहिँ जन हरि कौं, जम की मार सो खैहैं।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु बृथा सु जनम गँवैहैं ॥३९॥

तिहारौ कृष्न कहत कह जात ?
बिछुरै मिलन बहुरि कब ह्वै है, ज्यौं तरवर के पात।
सीत-बात-कफ कंठ बिरोधै, रसना टूटै बात।
प्रान लए जम जात, मूढ़-मति देखत जननी-तात।
छन इक माहिँ कोटि जुग बीतत, नर की केतिक बात।
यह जग-प्रीति सुवा-सेमर ज्यौं, चाखन ही उड़ि जात।

जमकैं फंद पर्‌यौ नहिं जब लगि, चरननि किन लपटात।
कहत सूर बिरथा यह देही, एतौ कत इतरात ।।४०।।

मन, तोसों किती कही समुझाइ।
नँदनंदन के चरन कमल भजि तजि पाखँड-चतुराइ।
सुख-संपति, दारा-सुत, हय गय, छूट सबै समुदाइ।
छनभंगुर यह सबै स्याम बिनु, अंत नाहिँ सँग जाइ।
जनमत-मरत बहुत जुग बीते, अजहुँ लाज न आइ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, जैहै जनम गँवाइ ।।४१।।

धोखैं ही धोखैं डहकायौ।
समुझि न परी, विषय-रस गीध्यौ, हरि-हीरा घर माँझ गँवायौ।
ज्यौं कुरंग जल देखि अवनि कौ, प्यास न गई चहूँ दिसि धायौ।
जनम-जनम बहु करम किए हैं, तिनमैं आपुन आपु बँधायौ।
ज्यौं सुक सेमर सेव आस लगि, निसि-बासर हठि चित्त लगायो।
रीति पर्‌यौ जबै फल चाख्यौ, उड़ि गयौ तूल, ताँवरौ आयौ।
ज्यौं कपि डोर बाँधि बाजीगर, कन-कन कौं चौहटैं नचायौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, काल-व्याल पै आप डसायौ ।।४२।।

भक्ति कब करिहौ, जनम सिरानौ।
बालापन खेलतहीं खोयौ, तरुनाई गरबानौ।
बहुत प्रपंच किए माया के, तऊ न अधम अघानौ।
जतन जतन करि माया जोरी, लै गयौ रंक न रानौ।
सुत-वित-बनिता-प्रीति लगाई, झूठे भरम भुलानौ।
लोभ-मोह तैं चेत्यौ नाहीं, सुपनें ज्यौं डहकानौ।
बिरध भऐं कफ कंठ बिरौध्यौ, सिर धुनि-धुनि पछितानौ।
सूरदास भगवंत-भजन-बिनु, जम कैं हाथ बिकानौ ।।४३।।

तजौ मन, हरि बिमुखनि कौ संग।
जिनकैं संग कुमति उपजति हैं, परत भजन में भंग।
कहा होत पय पान कराऐं, विष नहिं तजत भुजंग।
कागहिं कहा कपूर चुगाऐं, स्वान न्हवाऐं गंग।
खर कौं कहा अरगजा लेपन, मरकट भूषन-अंग।
गज कौं कहा सरित अन्हवाऐं, बहुरि धरे वह ढंग।

पाहन पतित बान नहिँ बेधत, रीतौ करत निषंग।
सूरदास कारी कामरि पै, चढ़त न दूजो रंग।।४४।।

रे मन मूरख जनम गँवायौ।
करि अभियान विषय-रस गीध्यौ, स्याम-सरन नहिँ आयौ।
यह संसार सुवा-सेमर ज्यौँ, सुन्दर देखि लुभायौ।
चाखन लाग्यौ रुई गई उड़ि, हाथ कछू नहिँ आयौ।
कहा होत अब के पछिताऐँ, पहिलेँ पाप कमायौ।
कहत सूर भगवंत-भजन बिनु, सिर धुनि-धुनि पछतायौ।।४५।।

चित्-बुद्धि-संबाद

चकई री, चलि चरन-सरोवर, जहाँ न प्रेम वियोग।
जहँ भ्रम-निसा होति नहिँ कबहूँ, सोइ सागर सुख जोग।
जहाँ सनक-सिव हंस मीन मुनि, नख रवि-प्रभा प्रकास।
प्रफुलित कमल, निमिष नहिँ ससि-डर, गुंजत निगम सुवास।
जिहिँ सर सुभग-मुक्ति-मुक्ताफल, सुकृत-अमृत-रस पीजै।
सो सर छाँड़ि कुबुद्धि बिहंगम, इहाँ कहा रहि कीजै।
लक्षमी सहित होति नित क्रीड़ा, सोभित सरजदास।
अब न सुहात विषय-रस छीलर, वा समुद्र की आस।।४६।।

सुवा, चलि तो बन कौ रस पीजै।
जा बन राम-नाम अम्रित-रस, स्रवन पात्र भरि लीजै।
को तेरौ पुत्र, पिता तू काकौ, घरनी, घर को तेरौ ?
काग सृगाल-स्वान कौ भोजन, तू कहै मेरौ मेरौ!
बन बारानसि मुक्ति क्षेत्र है, चलि तोकौ दिखराऊँ।
सूरदास साधुनि की संगति, बड़े भाग्य जो पाऊँ।।४७।।

हरिविमुख-निन्दा

अचंभौ इन लोगनि कौ आवै।
छाँड़ेँ स्याम-नाम-अम्रित फल, माया-विष-फल भावै।
निंदत मूढ़ मलय चंदन कौँ, राख अंग लपटावै।
मानसरोवर छाँड़ि हंस तट काग-सरोवर न्हावै।
पग तर जरत न जानै मूरख, घर तजि घूर बुझावै।
चौरासी लख जोनि स्वाँग धरि, भ्रमि-भ्रम जमहि हँसावै।

मृगतृष्ना आचार-जगत जल, ता सँग मन ललचावे।
कहतु जु सूरदास संतनि मिलि हरि जस काहे न गावे ॥४८॥
भजन बिनु कूकर-सूकर जैसौ।
जैसे घर बिलाव के मूसा, रहत विषय-वस वैसौ।
बन-बगुली अरु गीध-गीधिनी, आइ जनम लियो तैसौ।
उनहूँ के गृह, सुत, दारा हैं, उन्हैं भेद कहु कैसौ।
जीव मारि के उदर भरत हैं, तिनकौ लेखौ ऐसौ।
सूरदास भगवंत-भजन विनु, मनौ ऊँट-बृष-भैंसौ ॥४९॥

सत्संग-महिमा

जा दिन संत पाहुने आवत।
तीरथ कोटि सनान करैं फल जैसौ दरसन पावत।
नयौ नेह दिन-दिन प्रति उनकैं चरन-कमल चित-लावत।
मन-बच कर्म और नहिँ जानत, सुमिरत औ सुमिरावत।
मिथ्याबाद-उपाधि-रहित ह्वै, बिमल-बिमल जस गावत।
बंधन कर्म जे पहिले, सोऊ काटि बहावत।
संगति रहैं साधु की अनुदिन, भव-दुख दूरि नसावत।
सूरदास संगति करि तिनकी, जे हरि-सुरति कहावत ॥५०॥

स्थितप्रज्ञ

हरि-रस तौऽब जाइ कहुँ लहियै।
गएँ सोच आएँ नहिँ आनँद, ऐसौ मारग गहियै।
कोमल बचन, दीनता सब सौं, सदा अनँदित रहियै।
बाद बिवाद, हर्ष-आतुरता, इतौ द्वंद जिय सहियै।
ऐसी जो आवै या मन मैं, तौ सुख कहँ लौं कहियै।
अष्ट सिद्धि, नवनिधि, सूरज प्रभु, पहुँचै जो कछु चहियै ॥५१॥
जौ लौं मन-कामना न छूटै।
तौ कहा जोग-जज्ञ-ब्रत कीन्हैं बिन कन तुस कौं कूटै।
कहा सनान कियैं तीरथ के, अंग भस्म जट जूटै।
कहा पुरान जु पढ़ें अठारह, ऊर्ध्व धूम के घूटै।
जग शोभा की सफल बड़ाई इनतैं कछू न खूटै।

करनी और, कहैं कछु औरै, मन दसहूँ दिसि टूटै।
काम, क्रोध, मद, लोभ शत्रु हैं, जो इतननि सौं छूटै।
सूरदास तबहीं तम नासै, ज्ञान-अगिनि-झर फूटै ।।५२।।

आत्मज्ञान

अपुनपौ आपुन ही बिसरयौ।
जैसें स्वान काँच-मंदिर मैं, भ्रमि-भ्रमि भूकि परयौ।
ज्यौं सौरभ मृग-नाभि बसत है, द्रुम तृन सूँघि फिरयौ।
ज्यौं सपने मैं रंक भूप भयौ, तसकर अरि पकरयौ।
ज्यौं केहरि प्रतिबिंब देखि कै, आपुन कूप परयौ।
जैसें गज लखि फटिकसिला मैं, दसननि जाइ अरयौ।
मर्कट मूठि छाँड़ि नहीं दीनी, घर-घर-द्वार फिरयौ।
सूरदास नलिनी को सुवटा, कहि कौनैं पकरयौ ।।५३।।

अपुनपौ आपुन ही मैं पायौ।
सब्दहि सब्द भयौ उजियारौ, सतगुरु भेद बतायौ।
ज्यौं कुरंग-नाभी कस्तूरी, ढूँढ़त फिरत भुलायौ।
फिरि चितयौ जब चेतन ह्वै करि, अपनैं ही तन छायौ।
राज-कुमारि कंठ-मनि-भूषन भ्रम भयौ कहूँ गँवायौ।
दियौ बताइ और सखियनि तब, तनु कौ ताप नसायौ।
अपने माहिं नारि कौं भ्रम भयौ बालक कहूँ हिरायौ।
जागि लख्यौ, ज्यौं कौ त्यौं ही है ना कहुँ गयौ न आयौ।
सूरदास समुझे को यह गति, मनहीं मन मुसुकायौ।
कहि न जाइ या सुख की महिमा, ज्यौं गूँगैं गुर खायौ ।।५४।।

———

गोकुल लीला

कृष्ण जन्म

आनंदै आनंद बढ़्यो अति ।
देवनि दिवि दुंदभी बजाई, सुनि मथुरा प्रगटे जादवपति ।
विद्याधर-किन्नर कलोल मन उपजावत मिलि कंठ अमित गति ।
गावत गुन गंधर्व पुलकि तन नाचतिँ सब सुर-नारि रसिक अति ।
बरषत सुमन सुदेस सूर सुर, जय-जयकार करत, मानत रति ।
सिव-विरंचि-इन्द्रादि अमर मुनि, फूले सुख न समात मुदित मति ।।१।।
देवकी मन मन चकित भई ।
देखहु आइ पुत्र-मुख काहे न, ऐसी कहुँ देखी न दई ।
सिर पर मुकुट, पीत उपरैना, भृगु-पद-उर भुज चारि धरे ।
पूरब कथा सुनाइ कही हरि, तुम माँग्यौ इहिँ भेष करे ।
छोरे निगड़, सोआए पहरू, द्वारे कौ कपाट उघरचौ ।
तुरत मोहिँ गोकुल पहुँचावहु, यह कहिके सिसु वेष धरचौ ।
तब बसुदेव उठे यह सुनतहिँ, हरषवंत नँद-भवन गए ।
बालक धरि, लै सुरदेवी कौं, आइ सूर मधुपुरी ठए ।।२।।
गोकुल प्रगट भए हरि आइ ।
अमर-उधारन, असुर-सँहारन अंतरजामी त्रिभुवन राइ ।
माथैं धरि बसुदेव जु ल्याए, नंद-महर-घर गए पहुँचाइ ।
जागी महरि, पुत्र-मुख देख्यौ, पुलकि अंग उर मैं न समाइ ।
गदगद कंठ, बोल नहिँ आवै, हरषवंत ह्वै नंद बुलाइ ।
आवहु कंत, देव परसन भये, पुत्र भयौ, मुख देखौ धाइ ।
दौरि नंद गए, सुत-मुख देख्यौ, सो सुख मोपे बरनि न जाइ ।
सूरदास पहिलैं ही माँग्यौ, दूध पियावन जसुमति माइ ।।३।।
हौं इक नई बात सुनि आई ।
महरि जसोदा ढोटा जायौ, घर-घर होति बधाई ।
द्वारैं भीर गोपि-गोपिनि की, महिमा बरनि न जाई ।
अति आनन्द होत गोकुल मैं, रतन भूमि सब छाई ।

नाचत वृद्ध, तरुन अरु बालक, गोरस-कीच मचाई।
सूरदास स्वामी सुख-सागर, सुन्दर स्याम कन्हाई ॥४॥

आजु नन्द के द्वारैं भीर।
इक आवत, एक जात बिदा ह्वै, इक ठाढ़े मन्दिर कैं तीर।
कोउ केसरि कौ तिलक बनावति, कोउ पहिरति कंचुकी सरीर।
एकनि कौं गौ-दान समर्पत, एकनि कौं पहिरावत चीर।
एकनि कौं भूषन पटंबर, एकनि कौं जु देत नग हीर।
एकनि कौं पुहुपनि की माला, एकनि कौं चन्दन घसि नीर।
एकनि मथैं दूध-रोचना, एकनि कौं बोधति दै धीर।
सूरदास धनि स्याम सनेही, धन्य जसोदा पुन्य-सरीर।।५।।

सोभा सिंधु न अन्त रही री।
नंद-भवन भरि पूरि उमँगि चलि, ब्रज की बीथिनि फिरति वही री।
देखौ जाइ आजु गोकुल मैं, घर-घर बेंचति फिरति दही री।
कहँ लगि कहौं वनाइ बहुत विधि, कहत न मुख सहसहुँ निबही री।
जसुमति-उदर-अगाध-उदधि तैं उपजी ऐसी सबनि कही री।
सूरश्याम प्रभु इंद्र-नीलमनि, ब्रज-बनिता उर लाइ गही री ।।६।।

शैशव चरित्र

जसोदा हरि पालनै झुलावै।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ-सोइ कछू गावै।
मेरे लाल कौं आउ निदँरिया, काहैं न आनि सुवावै।
तू काहैं नहिं वेगहिं आवै, तोकों कान्ह बुलावै।
कबहुँक पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै रहि, करि करि सैन बतावै।
इहिं अन्तर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरैं गावै।
जो सुख सूर अमर-मुनि दुरलभ, सो नँद भामिनि पावै ।।७।।

कपट करि ब्रजहिं पूतना आई।
अति सुरूप, विष अस्तन लाए, राजा कंस पठाई।
मुख चूमति अरु नैन निहारति, राखति कंठ लगाई।
भाग बड़े तुम्हरे नन्दरानी, जिहिं के कुँवर कन्हाई।
कर गहि छीर पियावति अपनी, जानत केसवराई।
बाहर ह्वै कै असुर पुकारी, अब बलि लेहु छुड़ाई।

गइ मुरछाइ, परी धरनी पर, मनौ भुवंगम खाई।
सूरदास प्रभु तुम्हरी लीला, भक्तनि गाइ सुनाई।।८।।

काग-रूप इक दनुज धर्‌यौ।
नृप-आयसु लै धरि माथे पर, हरषवंत उर गरब भर्‌यौ।
कितिक बात प्रभु तुम आयसु तें, वह जानौ मो जात मर्‌यौ।
इतनी कहि गोकुल उड़ आयौ, आइ नन्द-घर-छाज रह्यौ।
पलना पर पौढ़े हरि देखे, तुरत आइ नैननिहिं अर्‌यौ।
कंठ चाँपि बहु बार फिरायो, गहि फटक्यो, नृप पास पर्‌यौ।
तुरत कंस पूछन तिहिं लाग्यौ, क्यों आयौ नहिं काज कर्‌यौ।
बातैं जाम बोलि तब आयौ, सुनहु कंस, तब आइ सर्‌यौ।
धरि अवतार महाबल कोऊ, एकहिं कर मेरौ गर्ब हर्‌यौ।
सूरदास प्रभु कंस-निकंदन, भक्त—हेत अवतार धर्‌यौ।।९।।

कर पग गहि, अंगुठा मुख मेलत।
प्रभु पौढ़े पालनैं अकेले, हरषि-हरषि अपनैं रङ्ग खेलत।
सिव सोचत, बिधि बुद्धि विचारत, बट बाढ़्यौ सागर-जल झेलत।
बिडरि चले घन प्रलय जानि कै, दिगपति दिग दंतीनि सकेलत।
मुनि मन भीत भए, भुव कंपित सेष सकुचि सहसौ फन पेलत।
उन ब्रज-बासिनि बात न जानी, समुझे सूर सकट पग ठेलत।।१०।।

महरि मुदित उलटाइ कै मुख चूमन लागी।
चिरजीवौ मेरौ लाडिलौ, मैं भई सभागी।
एक पाख त्रय-मास कौ मेरौ भयौ कन्हाई।
पटकि रान उलटौ पर्‌यौ, मैं करैं बधाई।
नन्द-घरनि आनन्द भरी, बोलीं ब्रजनारी।
यह सुख सुनि आईं सबै, सूरज बलिहारी।।११।।

जसुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरौ लाल घुटुरुवनि रेंगै, कब धरनी पग द्वैक धरै।
कब द्वै दाँत दूध के देखौं, कब तोतरैं मुख बचन झरै।
कब नंदहि बाबा कहि बोलै, कब जननी कहि मोहिं ररै।
कब मेरौ अँचरा गहि मोहन, जोइ-सोइ कहि मोसौं झगरै।
कब धौं तनक-तनक कछु खैहै, अपने कर सौं मुखहिं भरै।

कब हँसि बात कहैगो मोसौं, जा छबि तैं दुख दूरि हरै।
स्याम अकेले आँगन छाँड़े, आपु गई कछु काज घरै।
इहिं अंतर अँधवाह उठ्यो इक, गरजत गगन सहित घहरै।
सूरदास-ब्रज-लोग सुनत धुनि, जो जहँ-तहँ सब अतिहिं डरै ।।१२।।

सुत मुख देखि जसोदा फूली।
हरषति देखि दूधि की दँतियाँ, प्रेममगन तन की सुधि भूली।
बाहिर तैं तब नंद बुलाए, देखौ धौं सुन्दर सुखदाई।
तनक-तनक सी दूध दँतुलिया, देखौ, नैन सफल करौ आई।
आनँद सहित महर तब आए, मुख चितवत दोउ नैन अघाई।
सूर स्याम किलकत द्विज देख्यौ, मनौ कमल पर बिज्जु जमाई ।।१३।।

हरि किलकत जसुमति की कनियाँ।
मुख मैं तीनि लोक दिखराए, चकित भई नँद-रनियाँ।
घर-घर हाथ दिखावति डोलति, बाँधति गरैं बघनियाँ।
सूर स्याम की अद्भुत लीला नहिं जानत मुनिजनियाँ ।।१४।।

कान्ह कुँवर की करहु पासनी, कछु दिन घटि षट मास गए।
नंद महर यह सुनि पुलकित जिय, हरि अनप्रासन जोग भए।
बिप्र बुलाई नाम लै बूझ्यौ, रासि सोधि एक सुदिन धरचौ।
आछौ दिन सुनि महरि जसोदा, सखिनि बोलि सुभ गान करचौ।
जुवति महरि कौं गारी गावति, और महर कौ नाम लिए।
ब्रज-घर-घर आनंद बढ़यौ अति, प्रेम पुलक न समात हिए।
जाकौं नेति-नेति स्रुति गावत, ध्यावत सुर मुनि ध्यान धरे।
सूरदास तिहिं कौं ब्रज-बनिता, झकझोरतिं उर अंक भरे ।।१५।।

लाल हौं बारी तेरे मुख पर।
कुटिल अलक, मोहनि-मन बिहँसनि भृकुटी बिकट ललित नैननि पर।
दमकति दून-दँतुलिया बिहँसत, मनु सीपज घर कियौ बारिज पर।
लघु-लघु लट सिर घुघरवारी, लटकन लटकि रह्यो माथैं पर।
यह उपमा कापै कहि आवै, कछुक कहौं सकुचति हौं जिय पर।
नव-तन-चंद्र रेख-मधि राजत, सुरगुरु-सुक्र-उदोत परसपर।
लोचन लोल कपोल ललित अति, नासा कौ मुकता रदछद पर।
सूर कहा न्यौछावर करिये अपने लाल ललित लरखर पर ।।१६।।

उमगीं ब्रजनारि सुभग, कान्ह बरष गाँठि उमंग, चहतिँ बरष बरषनि।
गावहिँ मंगल सुगान, नीके सुर नीके तान, आनँद अति हरषनि।
कंचन मनि-जटित-थार, रोचन, दधि, फूल-डार, मिलिबे की तरसनि।
प्रभु बरष-गाँठि जोरति, वा छबि पर तृन तोरति, सूर अरस परसनि ।।१७।।

बालगोपाल

सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरुनि चलत रेनु तन-मंडित, मुख दधि लेप किये।
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन-तिलक दिये।
लट-लटकनि मनु मत्त मधुप-गन मादक मधुहिँ पिए।
कठुला-कंठ, बज्र केहरि-नख, राजत रुचिर हिए।
धन्य सूर एकौ पल इहिँ सुख, का सत कल्प जिए ।।१८।।

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।
मनिमय कनक नंद कैं आँगन, बिंब पकरिबै, धावत।
कबहु निरखि हरी आपु छाँह कौं, कर सौं पकरन चाहत।
किलकि हँसत रजित द्वै दतियाँ, पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत।
कनक-भूमि पर कर-पग-छाया, यह उपमा इक राजति।
करि-करि प्रतिपद प्रतिमनि बसुधा, कमल बैठकी साजति।
बाल-दसा-सुख निरखि जसोदा, पुनि-पुनि नन्द बुलावत।
अँचरा तर लै ढाँकि, सूर के प्रभु कौं दूध पियावति ।।१९।।

सिखवति चलन जसोदा मैया।
अरबराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरे पैया।
कबहुँक सुंदर बदन विलोकति, उर आनंद भरि लेत बलैया।
कबहुँक कुल देवता मनावति, चिरजीवहु मेरौ कुँवर कन्हैया।
कबहुँक बल कौं टेरि बुलावति, इहिं आँगन खेलौ दोउ भैया।
सूरदास स्वामी की लीला, अति प्रताप बिलसत नँदरैया ।।२०।।

चलत देखि जसुमति सुख पावै।
ठुमकि-ठुमकि पग धरनी रेंगत, जननी देखि दिखावै।
देहरि लौं चलि जात, बहुरि फिरि-फिरि इतहीं कौं आवै।
गिरि-गिरि परत, बनत नहिँ नाँघत सुर-मुनि सोच करावै।

कोटि ब्रह्मंड करत छिन भीतर, हरत बिलंब न लावै।
ताकौं लिए नंद की रानी, नाना खेल खिलावै।
तब जसुमति कर टेकि स्याम कौ, क्रम-क्रम करि उतरावै।
सूरदास प्रभु देखि-देखि, सुर-नर-मुनि-बुद्धि भुलावै ।।२१।।

नंद जु के बारे कान्ह, छाँड़ि दे मथनियाँ।
बार-बार कहति मातु जसुमति नँदरनियाँ।
नैंकु रहौ माखन देउँ मेरे प्रान-धनियाँ।
आरि जनि करौ, बलि बलि जाउँ हौं निधनियाँ।
जाकौं ध्यान धरैं सवै, सुर-नर-मुनि जनियाँ।
ताकौं नँदरानी मुख चूमै लिए कनियाँ।
सेष सहस आनन गुन गावत नहिं बनियाँ।
सूर स्याम देखि सबै भूलीं गोप-धनियाँ ।।२२।।

कहन लागे मोहन मैया-मैया।
नंद महर सौं बाबा बाबा, अरु हलधर सों भैया।
ऊँचे चढ़ि चढ़ि कहति जसोदा, लै लै नाम कन्हैया।
दूरि खेलन जनि जाहु लला रे, मारैगी काहु की गैया।
गोपी ग्वाल करत कौतूहल, घर-घर बजति बधैया।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं, चरननि की बलि जैया ।।२३।।

गोपालराइ दधि माँगत अरु रोटी।
माखन सहित देहि मेरी मैया, सुपक सुकोमल, मोटी।
कत हौ आरि करत मेरे मोहन तुम आँगन मैं लोटी।
जो चाहौ सो लेहु तुरतहीं, छाँड़ौ यह मति खोटी।
करि मनुहारि कलेऊ दीन्हौ, मुख चुपरचौ अरु चोटी।
सूरदास कौ ठाकुर ठाढ़ौ, हाथ लकुटिया छोटी ।।२४।।

बरनौं बाल-बेष मुरारि।
थकित जित-तित अमर-मुनि-गन, नंद-लाल निहारि।
केस सिर विन बपन के चहुँ दिसा छिटके झारि।
सीस पर धरि जटा, मनु सिसु रूप कियौ त्रिपुरारि।
तिलक ललित ललाट केसरबिंदु सोभाकारि।
रोष-अरुन तृतीय लोचन, रह्यौ जनु रिपु जारि।

कंठ कठुला नील मनि, अंभोज-माल सँवारि।
गरल ग्रीव, कपाल उर इहिँ भाइ भए मदनारि।
कुटिल हरि-नख हिऐँ हरि के हरषि निरखति नारि।
ईस झनु रजनीस राख्यौ भाल तैँ जु उतारि।
सदन-रज तन स्याम सोभित, सुभग इहिँ अनुहारि।
मनहुँ अंग-बिभूति-राजित संभु सो मधुहारि।
त्रिदस-पति-पति असन कौँ अति जननि सौँ करै आरि।
सूरदास विरंचि जाकौँ जपत निज मुख चारि।।२५।।

मैया, कवहिँ बढ़ैगी चोटी ?

किती बार मोहिँ दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यौँ, ह्वै है लाँबी-मोटी।
काढ़त-गुहत न्हवावत जैहै नागिनि सी भुइँ लोटी।
काचौ दूध पियावति पचि-पचि, देति न माखन-रोटी।
सूरज चिरजीवौ दोउ भैया, हरि-हलधर की जोटी।।२६।।

हरि अपनैँ आँगन कछु गावत।

तनक-तनक चरननि सौँ नाचत, मनहिँ मनहिँ रिझावत।
बाँह उठाइ काजरी-धौरी, गैयनि टेरि बुलावत।
कबहुँक बाबा नंद पुकारत, कबहुँक घर मैँ आवत।
माखन तनक आपनैँ कर लै, तनक बदन मैँ नावत।
कबहुँक चितै प्रतिबिंब खंभ मैँ, लौनी लिए खवावत।
दुरि देखति जसुमति यह लीला, हरष आनंद बढ़ावत।
सूर स्याम के बाल चरित, नित नितही देखत भावत।।२७।।
जसुमति जबहि कह्यौ अन्हवावन, रोइ गए हरि लोटत री।
तेल उबटनौ लै आगैँ धरि, लालहिँ चोटत पोटत री।
मैँ बलि जाऊँ न्हाउ जनि मोहन, कत रोवत बिनु काजैँ री।
पाछे धरि राख्यौ छपाइ कै, उबटन-तेल-समाजैँ री।
महरि बहुत बिनती करि राखति, मानत नहीँ कन्हैया री।
सूर स्याम अतिहीँ बिरुझाने, सुर-मुनि अंत न पैया री।।२८।।
ठाढ़ी अजिर जसोदा अपनैँ, हरिहिँ लिए चंदा दिखरावत।
रोवत कत बलि जाऊँ तुम्हारी, देखौँ धौ भरि नैन जुड़ावत।

चितै रहै तब आपुन ससि-तन अपने कर लै-लै जु बतावत।
मीठौ लगत किधौं यह खाटौ, देखन अति सुन्दर मन भावत।
मनहीं मन हरि बुद्धि करत हैं; माता सौं कहि ताहिं मँगावत।
लागी भूख, चँद मैं खैहौं; देहि देहि रिस करि बिरुझावत।
जसुमति कहति कहा मैं कीनौं रोवत मोहन अति दुख पावत।
सूर स्याम कौं जसुमति बोधति, गगन चिरैया उड़त दिखावत ॥२९॥

सुनि सुत, एक कथा कहौं प्यारी।
कमल-नैन मन आनँद उपज्यौ, चतुर सिरोमनि देत हुँकारी।
दसरथ नृपति हुतौ रघुबंसी, ताकै प्रगट भए सुत चारी।
तिनमैं मुख्य राम जो कहियत, जनक सुता ताकी बर नारी।
तात-बचनलगि राज तज्योतिन, अनुज घरनिसँग गए बनचारी।
धावत कनक मृगा के पाछै, राजिव लोचन परम उदारी।
रावन हरन-सिया कौ कीन्हौ, सुनि नँद-नंदन नींद निँवारी।
चाप चाप कहि उठे सूर प्रभु, लछिमन देहु, जननि भ्रम भारी ॥३०॥

जागौ, जागौ हो गोपाल।
नाहिँ इतौ सोइयत सुनि सुत, प्रात परम सुचि काल।
फिरि-फिरि जात निरखि मुख छिन छिन, सब गोपनि के बाल।
बिन बिकसे कल कमल-कोष तैं मनु मधुपनि की माल।
जो तुम मोहिँ न पत्याहु सूर प्रभु, सुन्दर स्याम तमाल।
तौ तुमहीं देखौ आपुन तजि निद्रा नैन बिसाल ॥३१॥

कमल-नैन हरि करौ कलेवा।
माखन-रोटी, सद्य जम्यौ दधि, भाँति-भाँति के मेवा।
खारिक, दाख, चिरौंजी, किसमिस, उज्वल गरी बदाम।
सफरी, सेव, छुहारे, पिस्ता, जे तरबूजा नाम।
अरु मेवा बहु भाँति-भाँति हैं षटरस के मिष्ठान्न।
सूरदास प्रभु करत कलेवा, रीझे स्याम सुजान ॥३२॥

मैया मोहिँ दाउ बहुत खिझायौ।
मोसौं कहत मोल कौ लीन्हौ, तू जसुमति कब जायौ।
कहा करौं इहि रिस के मारैं खेलन हौं नहिँ जात।
पुनि-पुनि कहत कौन है माता, को है तेरौ तात।

गोरे नंद जसोदा गोरी तू कत स्यामल गात।
चुटकी दै-दै ग्वाल नचावत, हँसत सबै मुसुकात।
तू मोहीं कौं मारन सीखी, दाउहिं कबहूँ न खीझै।
मोहन मुख रिस की ये बातैं, जसुमति सुनि-सुनि रीझै।
सुनहु कान्ह, बलभद्र चबाई, जनमत ही को धूत।
सूर स्याम मोहि गोधन की सौं, हौं माता तू पूत ॥३३॥

खेलन दूरि जात कत कान्हा।

आजु सुन्यौ मैं हाऊ आयौ, तुम नहिं जानत नान्हा।
इक लरिका अबहीं भजि आयौ, रोवत नहिं देख्यौ ताहि।
कान तोरि वह लेत सबनि के, लरिका जानत जाहि।
चलौ न, बेगि सबारै जैये, भाजि आपनैं धाम।
सूर स्याम यह बात सुनतही बोलि लिए बलराम ॥३४॥

खेलत मैं को काको गुसैयाँ।

हरि हारे जीते सुदामा, बरबस हीं कत करत रिसैयाँ।
जाति पाँति हमतैं बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैयाँ।
अति अधिकार जनावत यातै, जातैं अधिक तुम्हारे गैयाँ।
रूठहि करै तासौं को खेलै, रहे बैठि जहँ-तहँ ग्वैयाँ।
सूरदास प्रभु खेल्यौइ चाहत, दाउँ दियौ करि नंद-दुहैयाँ ॥३५॥

हरि कौं टेरति है नँदरानो।

बहुत अबार भई कहँ खेलत रहे, मेरे सारँग पानी ?
सुनतहिं टेर, दौरि तहँ आए, कब के निकसे लाल।
जेंवत जहीं नंद तुम्हरै बिनु, बेगि चलौ, गोपाल।
स्यामहिं ल्याई महरि जसोदा, तुरतहिं पाइँ पखारे।
सूरदास प्रभु संग नंद कैं, बैठे हैं, दोउ बारे ॥३६॥

जेंवत कान्ह नंद इकठौरे।

कछुक खात लपटात दोऊ कर, बालकेलि अति भोरे।
बरा कौर मेलत मुख भीतर, मिरिच दसन टकटौरे।
तीछन लगी नैन भरि आए, रोवत बाहर दौरे।
फूँकति बदन रोहिनी ठाढ़ी, लिए लगाइ अँकोरे।
सूर स्याम कौं मधुर कौर दै, कीन्हे तात निहोरे ॥३७॥

मोहन काहें न उगिलौ माटी ।
बार-बार अनरुचि उपजावति, महरि हाथ लिए साँटी ।
महतारी सौं मानत नाहीं, कपट-चतुरई ठाटी ।
बदन उघारि दिखायौ अपनौ, नाटक की परिपाटी ।
बड़ी बार भई लोचन उघरे, भरम-जवनिका फाटी ।
सूर निरखि नँदरानि भ्रमित भई, कहति न मीठी-खाटी ।।३८।।

नंद करत पूजा, हरि देखत ।
घट बजाइ देव अन्हवायौ, जल चंदन लै भेटत ।
पट अंतर दै भोग लगायौ, आरति करी बनाई ।
कहत कान्ह, बाबा तुम अरप्यौ, देव नहीं कछु खाई ।
चितै रहे तब नंद महरि-मुख, सुनहु कान्ह की बात ।
सूर स्याम देवनि कर जोरहु, कुसल रहै जिहिं गात ।।३९।।

कहत नंद, जसुमति सों बात ।
कहा जानिए कह तै देख्यौं, मेरैं कान्ह रिसात ।
पाँच बरष को मेरौ कन्हैया, अचरज तेरी बात ।
बिनहीं काज साँटि ले धावति, ता पाछै बिललात ।
कुसल रहैं बलराम स्याम दोउ, खेलत-खात-अन्हात ।,
सूर स्याम कौं कहा लगावति, बालक कोमल गात ।।४०।।

माखन-चोरी

मैया री, मोहिं माखन भावै ।
जो मेवा पकवान कहति तू, मोहिं नहीं रुचि आवै ।
ब्रज-जुवती इक पाछै ठाढ़ी, सुनत श्याम की बात ।
मन-मन कहति कंबहु अपनैं घर, देखौं माखन खात ।
पैठे जाइ मथनियाँ कैं ढिग, मैं तब रहौं छपानी ।
सूरदास प्रभु अंतरजामी ग्वालिनि मन की जानी ।।४१।।

गए स्याम तिहिं ग्वालिनि कैं घर ।
देख्यौ द्वार नहीं कोउ, इत-उत चितैं चले तब भीतर ।
हरि आवत गोपी जब जान्यौ, आपुन रही छपाइ ।
सूनें सदन मथनियाँ कैं ढिग, बैठि रहै अरगाइ ।
माखन भरी कमोरी देखत लै-लै लागे खान ।
चितै रहे मनि-खंभ-छाँह तन, तासौं करत सयान ।

प्रथम आजु मैं चोरी आयौ, भलौ बन्यौ है संग।
आपु खात प्रतिबिंब खवावत, गिरत कहत, का रंग ?
जौ चाहौ सब देउँ कमोरी, अति मीठो कत डारत।
तुमहि देति मैं अति सुख पायौ, तुम जिय कहा बिचारत।
सुनि-सुनि बात स्याम के मुख की उमँगि उठी ब्रजनारी।
सूरदास प्रभु निरखि ग्वालि मुख तब भजि चले मुरारी ॥४२॥

प्रथम करी हरि माखन-चोरी।
ग्वालिनि मन इच्छा करि पूरन, आपु भजे ब्रज खोरी।
मन मैं यहै विचार करत हरि, ब्रज घर-घर सब जाऊँ।
गोकुल जनम लियौ सुख-कारन, सबकैं माखन खाऊँ।
बाल-रूप जसुमति मोहिं जानै, गोपिनि मिलि सुख भोग।
सूरदास प्रभु कहत प्रेम सौं, ये मेरे ब्रज-लोग ॥४३॥

गोपालहिं माखन खान दै।
सुनि री सखी, मौन ह्वै रहिए, बदन दही लपटान दै।
गहि बहियाँ हौं लैके जैहैं, नैननि तपति बुझान दै।
याकौ जाइ चौगुनौ लैहौं मोहिं जसुमति लौं जान दै।
तू जानति हरि कछु न जानत, सुनत मनोहर कान दै।
सूर स्याम ग्वालिनि बस कीन्हो, राखतिं तन मन प्रान दै ॥४४॥

जसुदा कहँ लैं कीजै कानि।
दिन प्रति कैसे सही परति है, दूध-दही की हानि।
अपने या बालक की करनी, जौ तुम देखौ आनि।
गोरस खाइ, खवावै लरिकनि, भाजत भाजन भानि।
मैं अपने मंदिर के कोनै राख्यौ माखन छानि।
सोई ज़ाइ तिहारैं ढोटा, लीन्हौ है पहिचानि।
बूझि ग्वालि निज गृह मैं आयौ, नैंकुन संका मानि।
सूर स्याम यह उत्तर बनायौ, चींटी काढ़त पानि ॥४५॥

आपु गए हरुऐं सुनैं घर।
सखा सबै बाहिर ही छाँड़े, देख्यौ दधि-माखन हरि भीतर।
तुरत मथ्यौ दधि-माखन पायौ, लै-लै खात, धरत अधरनि पर।
सैन देइ सब सखा बुलाए, तिनहिं देत भरि-भरि अपनैं कर।

छिटकी रहीं दधि-बूँदि हृदय पर,इत-उत चितवत्त करि मन मैं डर।
उठत ओट लै लखत सबनि कौं, पुनि लै खात लेत ग्वालनि बर।
अंतर भई ग्वालि वह देखति मगन भई, अति उर आनँद भरि।
सूर स्याम मुख निरखि थकित भई,कहत न बनै, रही मन दै हरि ।।४६।।

जान जु पाए हौं हरि नीकै।
चोरि-चोरि दधि माखन मेरौ, नित प्रति गीधि रहे हो छीकैं।
रोक्यौ भवन-द्वार ब्रज-सुन्दरि, नूपुर मूँदि अचानक ही कै।
अब कैसे, जैयतु अपने बल, भाजन भाँजि, दूध दधि पी कै ?
सूरदास प्रभू भलैं परे फँद, देउँ न जान भावते ज़ी कै।
भरि गंडूष, छिरकि दै नैननि, गिरिधर भाजि चले दै कीकै ।।४७।।

अब ये झूठहु बोलत लोग।
पाँच बरष अरु कछुक दिननि कौ, कब भयौ चोरी जोग।
इहिं मिस देखन आवति ग्वालिनि, मुँह फाटे जु गँवारि।
अनदोषे कौं दोष लगावतिं, दई देइगौ टारि।
कैसें करि याकी भुज पहुँची, कौन वेग ह्याँ आयौ ?
ऊखल ऊपर आनि, पीठि दै, तापर सखा चढ़ायौ।
जौ न पत्याहु, चलो सँग जसुमति, देखौ नैन निहारि।
सूरदास प्रभु नैकुँ न बरजौ, मन में महरि विचारि ।।४८।।

इन अखियनि आगैं तै मोहन, एकौ पल जनि होहु नियारे।
हौं बलि गई, दरस देखैं बिनु तलफत है नैननि के तारे।
औरौ सखा बुलाइ आपने इहिं आँगन खेलौ मेरे बारे।
निरखति रहौं फनिग की मनि ज्यौं, सुन्दर बाल-बिनोद तिहारे।
मधु, मेवा, पकवान, मिठाई व्यंजन खाटे, मीठे, खारे।
सूर श्याम जोइ-जोइ तुम चाहौ, सोइ-सोइ माँगि लेहु मेरे बारे। ४९।।

चोरी करत कान्ह धरि पाए।
निसि-बासर मोहिं बहुत सतायौ अब हरि अरि हाथहिं आए।
माखन-दधि मेरौ सब खायौ, बहुत अचगरी कीन्ही।
अब तो घात परे हौ लालन, तुम्हैं भलैं मैं चीन्ही।
दोउ भुज पकरि, कह्यौ कहँ जैहौं माखन लेउँ मँगाइ।
तेरी सौं मैं नेकुँ न खायौ, सखा गये सब खाइ।

मुख तन चितै, बिहँसि हरि दीन्हौ, रिस तब गई बुझाइ।
लियौ स्याम उर लाइ ग्वालिनी, सूरदास बलि जाइ ॥५०॥

कान्हहिं बरजति किन नँदरानी।
एक गाउँ कैं बसत कहाँ लौं करैं नँद की कानी।
तुम जो कहति हौ, मेरो कन्हैया, गङ्गा कैसो पानी।
बाहिर तरुन किसोर बयस बर, बाट घाट कौ दानी।
बचन विचित्र, कमल-दल लोचन, कहत सरस बर बानी।
अचरज महरि तुम्हारे आगैं अबै जीभ तुतरानी।
कहँ मेरी कान्ह, कहाँ तुम ग्वारिनि, यह बिपरीति न जानी।
आवति सूर उरहने कैं मिस, देखि कुँवर मुसुकानी ॥५१॥

मथुरा जाति हौं बेचन दहियौ।
मेरै घर कौ द्वार, सखी री तबलौं देखति रहियौ।
दधि-माखन द्वै माट अछूते तोहिं सौंपति हौं सहियौ।
और नहीं या ब्रज मैं कोऊ, नन्द-सुवन सखि लहियौ।
ते सब बचपन सुने मन-मोहन, वहै राह मन गहियौ।
सूर पौरि लौं गई न ग्वालिन, कूद परे दै घहियौ ॥५२॥

गए स्याम ग्वालिन घर सूनैं।
माखन खाइ, डारि सब गोरस, बासन फोरि किए सब चूने।
बड़ौ माट इक बहुत दिननि कौ, ताहि करचौ दस टूक।
सोवत लरिकनि छिरकि मही सौं, हँसत चले दै कूक।
आइ गई ग्वालिनि तिहिं औसर, निकसत हरि धरि पाए।
देखे घर बासन सब फूटे, दूध दही ढरकाए।
दोउ भुज धरि गाढ़ैं करि लीन्हैं, गई महरि कै आगै।
सूरदास अब बसे कौन ह्याँ, पति रहिहैं ब्रज त्यागै ॥५३॥

करत कान्ह ब्रज-घरनि अचगरी।
खीझति महरि कान्ह सौं पुनि-पुनि, उरहन लै आवति हैं सगरी।
बड़े बाप के पूत कहावत, वै वास बसत इक बगरी।
नन्दहु तैं ये बड़े कहैहैं फेरि बसैहैं यह ब्रज नगरी।
जननी कैं खीझत हरि रोए, झूठहिं मोहिं लगावति धगरी।
सूर स्याम मुख पोंछि जसोदा, कहति सबै जुवती हैं लँगरी ॥५४॥

अपनौ गाउँ लेउ नँदरानी ।
वड़े बाप की वेटी, पूतहिँ भली पढ़ावति बानी ।
सखा-भीर लै पैठत घर मैं आप खाइ तौ सहिऐ ।
मैं जब चली सामुहैं पकरन, तब के गुन कहा कहिऐ ।
भाजि गए दुरि देखत कतहूँ, मैं घर पौढ़ी आइ ।
हरैं हरैं बेनी गहि पाछैं बाँधी पाटी लाइ ।
सुनु मैया, याके गुन मोसौं, इन मोहिँ लयौ बुलाई ।
दधि मैं पड़ी सेंत कौं मोपै चीटीं सबै कढ़ाई ।
टहल करत मैं याके घर की यह पति सँग मिलि सोई ।
सूर बचन सुनि हँसी जसोदा, ग्वाल रही मुख गोई ।।५५।।

महरि तैं बड़ी कृपन है माई ।
दूध-दही बहु विधि कौ दीनौ, सुत सौं धरति छपाई ।
बालक बहुत नहीं री तेरैं एकै कुँवर कन्हाई ।
सोऊ तौ घरही घर डोलतु, माखन खात चोराई ।
वृद्ध बयस, पूरै पुन्यनि तैं, तैं बहुतै निधि पाई ।
ताहूँ के खैवे-पीवे कौं, कहा करति चतुराई ।
सुनहुँ न बचन चतुर नागरि के जसुमति नन्द सुनाई ।
सूर स्याम कौं चोरी कौं मिस देखन है यह आई ।।५६।।

अनत सुत गोरस कौं कत जात ?
घर सुरभी कारी धौरी कौं माखन माँगि न खात ।
दिन प्रति सबै उरहने कैं मिस, आवति है उठि प्रात ।
अनलहते अपराध लगावति, बिकटि बनावति बात ।
निपट निसंक बिबादति संमुख, सुनि-सुनि नन्द रिसात ।
मोसौं कहतिँ कृपन तेरैं घर ढोटाहू न अघात ।
करि मनुहारि उठाइ गोद लै, बरजति सुत कौं मात ।
सूर स्याम नित सुनत उरहनौ, दुख पावत तेरौ तात ।।५७।।

हरि सब भाजन फोरि पराने ।
हाँक देत पैठे दै पैला नैंकु न मनहिँ डराने ।
सींके छोरि, मारि लरकनि कौं, माखन-दधि सब खाई ।
भवन मच्यौ दधि काँदौ, लरिकनि रोवत पाए जाई ।

सुनहु-सुनहु सबहिनि के लरिका, तेरौ सौ कहुँ नाहिं ।
हाटनिं-बाटनि, गलिनि कहूँ कोउ चलत नहीं डरपाहिं ।
रितु आए कौ खेल, कन्हैया सब दिन खेलत फाग ।
रोकि रहत गहि गलो साँकरी, टेढ़ी बाँधत पाग ।
बारे तैं सुत ये ढङ्ग लाए, मनहीं मनहिं सिहात ।
सुनैं सूर ग्वालिनि की बातैं सकुचि महरि पछितात ।।५८।।

कन्हैया तू नहिं मोहिं डरात ।
षटरस धरे छाँड़ि कत पर घर, चोरी करि करि खात ।
बकत-बकत तोसौं पचिहारी, नैं कहुँ लाज न आई ।
ब्रज-परगन-सिगदार महर, तू ताकी करत नन्हाई ।
पूत सपूत भयौ कुल मेरैं, अब मैं जानी बात ।
सूर स्याम अब लौं तुहिं बकस्यौ, तेरी जानी घात ।।५९।।

मैया मैं नहिं माखन खायौ ।
ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि, मेरैं मुख लपटायौ ।
देखि तुहीं सींकै पर भाजन, ऊँचे धरि लटकायौ ।
हौं जु कहत नान्हे कर अपनैं मैं कैसें करि पायौ ।
मुख दधि पोंछि, बुद्धि इक कीन्ही, दोना पीठि दुरायौ ।
डारि साँटि मुसुकाइ जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायौ ।
बाल-बिनोद मोद मन मोह्यौ, भक्ति प्रताप दिखायौ ।
सूरदास जसुमत कौ यह सुख, सिव बिरञ्चि नहिं पायौ ।।६०।।

जसुमति तेरौ बारौ कान्ह अतिही जु अचगरौ ।
दूध-दही माखन लै डारि देत सगरौ ।
भोरहिं नित प्रतिही उठि, मोसौं करत झगरौ ।
ग्वाल-बाल संग लिए घेरि रहै डगरौ ।
हम-तुम सब बैस एक, कातैं को अगरौ ।
लियौ दियौ सोई कछु, डारि देहु झगरौ ।
सूर श्याम तेरौ अति, गुननि माहिं अगरौ ।
चोली अरु हार तोरि, छोरि लियो सगरौ ।।६१।।

ऐसी रिस मैं जौ धरि पाऊँ ।
कैसे हाल करौं धरि हरि के, तुमकौं प्रगट दिखाऊँ ।

संँटिया लिए हाथ नँदरानो, थरथरात रिस गात।
मारे बिना आजु जौं छाँड़ौं, लागै मेरैं तात।
इहिं अंतर ग्वारिनि इक औरे, धरे बाँह हरि ल्यावति।
भली महरि सूधौ सुत जायौ, चोली-हार बतावति।
रिस मैं अतिहीं उपजाई, जानि जननि अभिलाष।
सूर स्याम भुज गहे जसोदा, अब बाँधौं कहि माष।।६२।।

बाँधौं आजु कौन तोहिं छोरे।
बहुत लँगरई कीन्हौ मोसौं, भुज गहि रजु ऊखल सौं जोरै।
जननी अति रिस जानि बँधायौ, निरखि बदन, लोचन जल ढोरै।
यह सुनि ब्रज-जुवतीं सब धाईं कहतिं कान्ह अब क्यों नहिं छोरै।
ऊखल सौं गहि बाँधि जसोदा, मारन कौं साँटी कर तोरै।
साँटी देखि ग्वालि पछितानी, बिकल भई जहँ-तहँ मुख मोरै।
सुनहु महरि ऐसी न बूझिऐ सुत बाँधति माखन दधि थोरै।
सूर स्याम कौं बहुत सतायौ, चूक परी हम तैं यह भोरैं।।६३।।

कहा भयौ जौ घर कैं लरिका चोरी माखन खायौ।
अहो जसोदा कत त्रासति हौ यहै कोखि को जायौ।
बालक अजों अजान न जानै केतिक दह्यौ लुटायौ।
तेरो कहा गयौ ? गोरस कौ गोकुल अंत न पायौ।
हा हा लकुट त्रास दिखरावति आँगन पास बँधायौ।
रुदन करत दोउ नैन रचे हैं, मनहुँ कमल-कन छायौ।
पौढ़ि रह धरनी पर तिरछैं बिलखि बदन मुरझायौ।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि, हँसि करि कंठ लगायौ।।६४।।

हलधर सौं कहि ग्वालि सुनायौ।
प्रातहिं तैं तुम्हरौ लघु भैया, जसुमति ऊखल बाँधि लगायौ।
काहू के लरिकहिं हरि मार्‍यौ भोरहि आनि तिनहिं गुहरायौ।
तबहीं ते बाँधे हरि बैठे, सो हम तुमकौं आनि जनायौ।
हम बरजी, बरज्यो नहिं मानति, सुनतहिं बल आतुर ह्वै धायौ।
सूर स्याम बैठे ऊखल लगि, माता उर तनु अतिहि त्रसायौ।६५।।

यह सुनि कैं हलधर तहँ धाए।
देखि स्याम ऊखल सौं बाँधे, तबहीं दोउ लोचन भरि आए।

मैं बरज्यो कै बार कन्हैया, भली करी दोउ हाथ बँधाए।
अजहुँ छाँड़ौगे लँगराई, दोउ कर जोर जननि पै आए।
स्यामहिं छोरि मोहिं बाँधै बरु, निकसत सगुन भले नहिं पाए।
मेरे प्रान-जिवन-धन कान्हा, तिनके भुज मोहिं बँधे दिखाए।
माता सौ कह करौं ढिठाई, सो सरूप कहि नाम सुनाए।
सूरदास तब कहति जसोदा दोउ भैया तुम इक मत पाए ।।६६।।

तबहिं स्याम इक बुद्धि उपाई।
जुवती गईं घरनि सब अपनें, गृह कारज जननी अटकाई।
आपु गए जमलार्जुन-तरु-तरु, परसत पात उठे झहराई।
दिए गिराइ धरनि दोऊ तरु, सुत कुवेर के प्रगटे आई।
दोउ करजोरि करत दोउ अस्तुति, चारि भुजा तिन्ह प्रगट दिखाई।
सूर धन्य ब्रज जनम लियौ हरि, धरतो की आपदा नसाई ।।६७।।

अब घर काहूँ कैं जनि जाहु।
तुम्हरैं आजु कमी काहे की, कत तुम अनतहिं खाहु।
बरै जेंवरी जिहिं तुम बाँधे, परै हाथ भहराइ।
नंद मोहिं आतहीं त्रासत हैं, बाँधें कुँवर कन्हाइ।
रोग जाउ मेरे हलधर के, छोरत हो तंब स्याम।
सूरदास प्रभु खात फिरौ जनि, माखन-दधि तुव धाम ।।६८।।

भूखौ भयौ आजु मेरौं बारौ।
भोरहिं ग्वारि उरहनौ ल्याई, उहिं यह कियौ पसारौ।
पहिलेहिं रोहिनि सौं कहि राख्यौ, तुरत करहु जेवनार।
ग्वाल-बाल सब बोलि लिए, मिलि बैठे नन्द-कुमार।
भोजन बेगि ल्याउ कछु मैया भूख लगी मोहि भारी।
आजु सबारैं कछु नहिं खायौ, सुनत हँसी महतारी।
रोहिनि चितै रही जसुमति-तन सिर धुनि-धुनि पछितानी।
परसहु बेगि, बेर कत लावति, भूखे साँरगपानी।
बहु ब्यंजन बहु भाँति रसोई षटरस के परकार।
सूर स्याम हलधर दोउ भैया, और सखा सब ग्वार ।।६९।।

मोहिं कहतिं जुवती सब चोर।
खेलत कहूँ रहौं मैं बाहिर, चितै रहतिं सब मेरी ओर।

बोलि लेतिं भीतर घर अपनैं, मुख चूमतिं, भरि लेतिं अँकोर।
माखन हेरि देतिं अपनैं कर कछु कहि बिधि सौं करतिं निहोर।
जहाँ मोहिं, देखतिं, तहं टेरतिं, मैं नहिं जात दुहाई तोर।
सूर स्याम हँसि कंठ लगायौ, वै तरुनी कहं बालक मोर ।।७०।।

जसुमति कहति कान्ह मेरे प्यारे, अपनैं ही आँगन तुम खेलौ।
बोलि लेहु सब सखा संग के, मेरी कह्यौ कबहुँ जिनि पेलौ।
ब्रज-बनिता सब चोर कहतिं तोहिं, लाजनि सकुचि जात मुख मेरौ।
आजु मोहिं बलराम कहत हे, झूठहिं नाम धरति हैं तेरौ।
जब मोहिं रिस लागति तब त्रासति, बाँधति, मारति, जैसें चेरौ।
सूर हँसित ग्वालिन दे तारी, चोर नाम कैसैहुँ सुत फेरौ ।।७१।।

———

वृन्दावन-लीला

वृन्दावन प्रस्थान

महर-महरि कैं मन यह आई।
गोकुल होत उपद्रव दिन प्रति, बसिऐ वृन्दावन मैं जाई।
सब गोपनि मिलि सकटा साले, सबहिनि के मन मैं यह भाई।
सूर जमुन-तट डेरा दीन्हें, पाँच बरष के कुँवर कन्हाई ॥१॥

गोदोहन

मैं दुहिहौं मोहिं दुहन सिखावहु।
कैसें गहत दोहनी घुटुवनि, कैसें बछरा थन लै लावहु।
कैसें लै नोई पग बाँधत, कैसें लै गैया अटकावहु।
कैसें धार दूध की बाजति, सोइ-सोइ बिधि तुम मोहिं बतावहु।
निपट भई अब साँझ कन्हैया, गैयनि पै कहूँ चोट लगावहु।
सूरस्याम सौं कहत ग्वाल सब, धेनु दुहन प्रातहि उठि आवहु ॥२॥

गो चारण

आजु मैं गाइ चरावन जैहौं।
वृन्दावन के भाँति भाँति फल अपने कर मैं खैहौं।
ऐसी बात कहौ जनि बारे, देखौ अपनी भाँति।
तनक तनक पग चलिहौ कैसें, आवत ह्वै है अति राति।
प्रात जात गैया लै चारन, घर आवत हैं साँझ।
तुम्हरौ कमल बदन कुम्हिलैहै, रेंगति घामहिं माँझ।
तेरी सौं, मोहिं घाम न लागत, भूख नहीं कछु नेक।
सूरदास प्रभु कह्यौ न मानत, पर्‌यौ आपनी टेक ॥३॥
बृन्दाबन देख्यौ नँद-नंदन, अतिहिं परम सुख पायौ।
जहँ-जहँ गाइ चरतिं ग्वालनि सँग, तहँ-तहँ आपुन धायौ।
बलदाऊ मोकौं जनि छाँड़ौ सँग तुम्हारैं ऐहौं।
कैसेहुँ आजु जसोदा छाँड़्यौ, काल्हि न आवन पैहौं।
सोवत मोकौं टेरि लेहुगे, बाबा नंद-दुहाई।
सूर स्याम बिनती करि बल सों, सखनि समेत सुनाई ॥४॥

बिहारी लाल, आवहु, आई छाक ।
भई अबार, गाइ बहुरावहु, उलटावहु दै हाक ।
अर्जुन, भोज अरु सुबल, सुदामा, मधुमंगल इक ताक ।
मिलि बैठे सब जेंवन लागे, बहुत बने कहि पाक ।
अपनी पत्रावलि सब देखत, जहँ-तहँ फेनि पिराक ।
सूरदास प्रभु खात ग्वाल सँग, ब्रह्मलोक यह धाक ।।५।।

ब्रज मैं को उपज्यौ यह भैया ।
संग सखा सब कहत परस्पर, इनके गुन अगमैया ।
जब तैं ब्रज अवतार धर्‌यौ इन, कोउ नहिं घात करैया ।
तृनावर्त पूतना पछारी, तब अति रहे नन्हैया ।
कितिक बात यह बका विदार्‌यौ, धनि जसुमति जिन जैया ।
सूरदास प्रभु की यह लीला, हम कत जिय पछितैया ।।६।।

आजु जसोदा जाइ कन्हैया महा दुष्ट इक मार्‌यौ ।
पन्नग-रूप मिले सिसु गो-सुत इहिं सब साथ उबार्‌यौ ।
गिरि-कंदरा समान भयानक जब अघ बदन पसार्‌यौ ।
निडर गोपाल पैठि मुख भीतर, खंड-खंड करि डार्‌यौ ।
याकै बल हम बदत न काहुहिं सकल भूमि तृन चार्‌यौ ।
जीते सबै असुर हम आगैं, हरि कबहूँ नहिं हार्‌यौ ।
हरषि गए सब कहनि महरि सौं अबहिं अघासुर मार्‌यौ ।
सूरदास प्रभु की यह लीला ब्रज कौ काज सँवार्‌यौ ।।७।।

ब्रह्मा बालक-बच्छ हरे ।
आदि अंत प्रभु अंतरजामी, मनसा तैं जु करे ।
सोइ रूप वै बालक गो-सुत, गोकुल जाइ भरे ।
एक बरष निसि बासर रहि सँग, काहु न जानि परे ।
त्रास भयौ अपराध आपु लखि, अस्तुति करत खरे ।
सूरदास स्वामी मनमोहन, तामैं मन न धरे ।।८।।

आजु कन्हैया बहुत बच्यौ री ।
खेलत ह्यौ घोष कैं बाहर, कोउ आयौ सिसु रूप रच्यौ री ।
मिलि गयौ आइ सखा की नाईं; लै चढ़ाइ हरि कंध सच्यौ री ।
गगन उड़ाइ गयौ लै स्यामहिं, आनि धरनि पर आप दच्यौ री ।

धर्म सहाइ होत है जहँ-तहँ, स्रम करि पूरब पुन्य पच्यौ री।
सूर स्याम अब कैं बचि आए, ब्रज-घर-घर सुख-सिंधु मच्यौ री ।।९।।

अब कैं राखि लेहु गोपाल।
दसहूँ दिसा दुसह दावागिनि, उपजी है इहिं काल।
पटकत बाँस, काँस कुस चटकत, लटकत ताल तमाल।
उचटत अति अंगार, फुटत पर झपटत लपट कराल।
धूम धूँधि बाढ़ी घर अम्बर, चमकत बिच-बिच ज्वाल।
हरिन, बराह, मोर, चातक, पिक, जरत जीव बेहाल।
जनि जिय डरहु, नैन मूँदहु सब, हँसि बोले नँदलाल।
सूर अगिनि सब बदन समानी, अभय दिये ब्रज-बाल ।।१०।।

बन तैं आवत धेनु चराए।
संध्या समय साँवरे मुख पर, गो-पद-रज लपटाए।
बरह मुकुट कैं निकट लसति लट, मधुप मनौ रुचि पाए।
बिलसत सुधा जलज-आनन पर, उड़त न जात उड़ाए।
बिधि बाहन-भच्छन की माला, राजत उर पहिराए।
एक बरन बपु नहिं बड़ छोटे, ग्वाल बने इक धाए।
सूरदास बलि लीला प्रभु की जीवत जन जस गाए ।।११।।

मैया बहुत बुरो बलदाऊ।
कहन लग्यौ बन बड़ौ तमासौ, सब मौड़ा मिलि आऊ।
मोहूँ कौं चुचकारि गयो लै, जहाँ सघन बन झाऊ।
भागि चलौ कहि गयो उहाँ तैं, काटि खाइ रे हाऊ।
हौं डरपौं कापौं अरु रोवौं कोउ नहिं धीर धराऊ।
थरसि गयौं नहिं भागि सकौं, वै भागे जात अगाऊ।
मोसौं कहत मोल कौ लीनो, आपु कहावत साऊ।
सूरदास गल बड़ौ चबाई, तैसेहिं मिले सखाऊ ।।१२।।

मैया हौं न चरैहौं गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसौं, मेरे पाइ पिराइ।
जौ न पत्याहि पूछि बलदाउहिं, अपनी सौंह दिवाइ।
यह सुनि माइ जसोदा ग्वालनि, गारी देति रिसाइ।
मैं पठवति अपने लरिका कौ, आवै मन बहराइ।
सूर स्याम मेरौ अति बालक, मारत ताहि रिगाइ ।।१३।।

धनि यह बृन्दावन की रेनु ।
नंद-किसोर चरावत गैयाँ, मुखहिं बजावत बेनु ।
मन-मोहन को ध्यान धरैं जिय, अति सुख पावत चैनु ।
चलत कहाँ मन और पुरी तन, जहँ कछु लैन न दैनु ।
इहाँ रहहु जहँ जूठनि पावहु, ब्रजवासिनि कै ऐनु ।
सूरदास ह्याँ की सरवरि नहि, कल्पवृच्छ सुर-धैनु ।।१४।।

सोवत नींद आइ गई स्यामहिं ।
महरि उठी पौढ़ाइ दुहुँनि कौं, आपु लगी गृह कामहिं ।
बरजति है घर के लोगनि कौं, हरुऐं लै-लै नामहिं ।
गाढ़ै बोलि न पावत कोऊ, डर मोहन बलरामहिं ।
सिव सनकादि अंत नहिं पावत ध्यावत अह-निस जामहिं ।
सूरदास-प्रभु ब्रह्म सनातन, सो सोवत नँद धामहिं ।।१५।।

देखत नंद कान्ह अति सोवत ।
भूखे भये आजु बन-भीतर, यह कहि कहि मुख जोवत ।
कह्यौ नहीं मानत काहू कौ, आपु हठी दोऊ बीर ।
बार-बार तनु पोंछत कर सौं, अतिहिं प्रेम की पीर ।
सेज मँगाइ लई तहँ अपनी, जहाँ स्याम-बलराम ।
सूरदास प्रभु कैं ढिग सोए, सँग पौढ़ी नँद-बाम ।।१६।।

जागि उठे तब कुँवर कन्हाई ।
मैया कहाँ गई मो ढिग तैं, सँग सोवति बल भाई ।
जागे नंद, जसोदा जागी, बोलि लिए हरि पास ।
सोवत झझकि उठे काहे तैं, दीपक कियौ प्रकास ।
सपनैं कूदि पर्‌यौ जमुना दह, काहू दियो गिराइ ।
सूर स्याम सौं कहति जसोदा, जनि हो लाल डराइ ।।१७।।

मैं बरज्यौ जमुना-तट जात ।
सुधि रहि गई न्हात की तेरैं, जनि डरपौ मेरे तात ।
नंद उठाइ लियौ कोरा करि, अपने सँग पौढ़ाइ ।
बृन्दावन मैं फिरत जहाँ तहँ, किहिं कारन तू जाइ ।
अब जनि जैहौ गाइ चरावन, कहँ को रहित बलाइ ।
सूर स्याम दम्पति बिच सोए, नींद गई तब आइ ।।१८।।

काली दमन

नारद ऋषि नृप सौं यौं भाषत ।
वे हैं काल तुम्हारे प्रगटे, काहैं उनकौं राखत ।
काली उरग रहै जमुना मैं, तहँ तैं कमल मँगावहु ।
देत पठाइ देहु ब्रज ऊपर, नंदहिं अति डरपावहु ।
यह सुनि कै ब्रज लोग डरैंगे, वै सुनिहैं यह बात ।
पुहुप लैन जैहैं नँद-ढोटा, उरग करै तहँ घात ।
यह सुनि कंस बहुत सुख पायौ, भली कही यह मोहि ।
सूरदास प्रभु कौं मुनि जानत, ध्यान धरत मन जोहि ।।१९।।

कंस बुलाइ दूत इक लीन्हौ ।
कालीदह के फूल मँगाए, पत्र लिखाइ ताहि कर दीन्हौ ।
यह कहियो ब्रज जाइ नंद सौं, कंस राज अति काज मँगायो ।
तुरत पठाइ दिऐं ही बनिहै भली-भाँति कहि-कहि समुझायौ ।
यहि अंतरजामी जानी जिय, आपु रहे, बन ग्वाल पठाए ।
सूर स्याम, ब्रज-जन-सुखदायक, कंस-काल, जिय हरष बढ़ाए ।।२०।।

पाती बाँचत नंद डराने ।
कालीदह के फूल पठावहु, सुनि सबही घबराने ।
जो मोकौं नहिं फूल पठावहु, तौ ब्रज देहुँ उजारि ।
महर, गोप, उपनंद न राखौं, सबहिनि डारौं मारि ।
पुहुप देहु तौ बनै तुम्हारी, ना तरु गए बिलाइ ।
सूर स्याम बलरामु तिहारे, माँगौं उनहिं धराइ ।।२१।।

पूछौ जाइ तात सौं बात ।
मैं बलि जाउँ मुखारबिंद की, तुमहीं काज कंस अकुलात ।
आए स्याम नंद पै धाए, जान्यौ मातु-पिता बिलखात ।
अबहीं दूर करौं दुख इनकौ, कंसहिं पठै देउँ जलजात ।
मोसौं कहो बात बाबा यह, बहुत करत तुम सोच बिचार ।
कहा कहौं तुमसौं मैं प्यारे, कंस करत तुमसौं कछु झार ।
जब तैं जनम भयौ है तुम्हरौ, केते करबर टरे कन्हाइ ।
सूर स्याम कुलदेवनि तुमकौं जहाँ तहाँ करि लियौ सहाइ ।।२२।।

खेलत स्याम, सखा लिए संग ।
इक मारत, इक रोकत गेंदहिं, इक भागत करि नाना रंग ।

मार परसपर करत आपु मैं, अति आनंद भए मन माहिँ।
खेलत ही मैं स्याम सबनि कौं, जमुना तट कौं लीन्हें जाहिँ।
मारि भजत जो जाहि ताहि सो, मारत लेत आपनौ दाउ।
सूर स्याम के गुन को जानै कहत और कछु और उपाउ ।।२३।।

स्याम सखा कौं गेंद चलाई।
श्रीदामा मुरि अंग बचायौ, गेंद परी कालीदह जाई।
धाइ गही तब फेंट स्याम की, देहु न मेरी गेंद मँगाई।
और सखा जनि मोकौ जानौ, मोसौं तुम जनि करौ ढिठाई।
जानि-बूझि तुम गेंद गिराई, अब दीन्हैं ही बनै कन्हाई।
सूर सखा सब हँसत परसपर, भली करी हरि गेंद गँवाई ।।२४।।

फेंट छाँड़ि मेरी देहु श्रीदामा।
काहे कौं तुम रारि बढ़ावत, तनक बात कैं कामा।
मेरी गेंद लेहु ता बदलैं, बाँह गहत हौ धाइ।
छोटौ बड़ौ न जानत काहूँ, करत बराबरि आइ।
हम काहे कौं तुमहिं बराबर, बड़े नंद के पूत।
सूर स्याम दीन्है ही बनिहैं, बहुत कहावत धूत ।।२५।।

रिस करि लीन्ही फेंट छुड़ाइ।
सखा सबै देखत हैं ठाढ़े, आपुन चढ़े कदम पर धाइ।
तारी दै-दै हँसत सबै मिलि, स्याम गए तुम भाजि डराइ।
रोवत चले श्रीदामा घर कौं, जसुमति आगैं कहिहौं जाइ।
सखा सखा कहि स्याम पुकारचौ, गेंद आपनौ लेहु न आइ।
सूर स्याम पीताम्बर काछे, कूद परे दह में भहराइ ।।२६।।

चौंकि परी तन की सुध आई।
आजु कहा ब्रज सोर मचायौ, तब जान्यौ दह गिरचौ कन्हाई।
पुत्र-पुत्र कहिकै उठि दौरी, व्याकुल जमुना-तीरहिं धाई।
ब्रज-बनिता सब संगहिं लागीं आइ गए बल, अग्रज भाई।
जननी व्याकुल देखि प्रबोधत धीरज करि नीकैं जदुराई।
सूर स्याम कौं नैंकुं नहीं डर, जनि तू रोवै जसुमति माई ।।२७।।

जसुमति टेरति कुँवर कन्हैया।
आगैं देखि कहत बलरामहिं, कहाँ रह्यौ तुव भैया।

मेरौ भैया आवत अबहीं तोहिं दिखाऊँ मैया।
धीरज करहु, नैंकु तुम देखहु, यह सुनि लेत बलैया।
पुनि यह कहति मोहिं परमोधत, धरनि गिरी मुरझैया।
सूर बिना सुत भइ अति ब्याकुल, मेरौ बाल कन्हैया ।।२८।।

अति कोमल तनु धरचौ कन्हाई।
गए तहाँ जहँ काली सोवत, उरग-नारि देखत अकुलाई।
कह्यौ कौन कौ बालक है तू, बार-बार कहि, भागि न जाई।
छनकहि मैं जरि भस्म होइगौ, जब देखे उठि जाग जम्हाई।
उरग-नारि की बानी सुनि कैं आपु हँसे मन मैं मुसुकाई।
मोकौं कंस पठायौ देखन, तू याकौं अब देहि जगाई।
कहा कंस दिखरावत इनकौं, एकहि फूँकहिं मैं जरि जाई।
पुनि-पुनि कहत सूर के प्रभु कौ, तू अब काहे न जाइ पराई ।।२९।।
झिरकि कै नारि, दै गारि गिरिधारि तब, पूँछ पर लात दै अहि जगायौ।
उठ्यो अकुलाइ, डर पाइ खग-राज कौं, देखि बालक गरब अति बढ़ायौ।
पूँछ लीन्ही झटकि, धरनि सौं गहि पटकि फुंकरचौ लटकि करि क्रोध फूले।
पूँछ राखी चाँपि, रिसनि काली काँपि, देखि सब साँपि-अवसान भूले।
करत फन घात विष जात उतरात अति, नीर जरि जात, नहिं गात परसै।
सूर के स्याम प्रभु लोक अभिराम,बिनु जान अहिराज विष ज्वाल बरसै ।।३०।।

उरग लियौ हरि कौ लपटाइ।
गर्व-वचन कहि-कहि रुख भाषत, मोकौं नहिं जानत अहिराइ।
लियौ लपेटि चरन तैं सिख लौं, अति इहिं मोसौं करत ढिठाइ।
चाँपी पूँछ लुकावत अपनी, जुवतिनि कौं नहिं सकत दिखाइ।
प्रभु अंतरजामी सब जानत, अब डारौं इहिं सकुचि मिटाइ।
सूरदास प्रभु तन बिस्तारचौ, काली बिकल भयौ तब जाइ ।।३१।।

जबहिं स्याम तन, अति बिस्तारयौ ।
पटपटात टूटत अंग जान्यौ, सरन-सरन सु पुकारयौ ।
यह बानी सुनतहिं करुनामय, तुरत गए सकुचाइ ।
यहै बचन सुनि द्रुपद-सुता दीन्हौ बसन बढ़ाइ ।
यहै बचन गजराज सुनायौ, गरुड़ छाँड़ि तहँ धाए ।
यहै बचन सुनि लाखा गृह मैं, पांडव जरत बचाए ।
यह बानी सहि जात न प्रभु सौं, ऐसे परम कृपाल ।
सूरदास प्रभु अंग सकोरयौ ब्याकुल देख्यौ ब्याल ।।३२।।
नाथत ब्याल बिलंब न कीन्हौ ।
पग सौं चाँपि धीँच बल तोरयौ, नाक फौरि गरि लीन्हौ ।
कूदि चढ़े ताके माथे पर काली करत बिचार ।
स्रवननि सुनी रही यह बानी, ब्रज ह्वै है अवतार ।
तेइ अवतरे आइ गोकुल मैं, मैं जानी यह बात ।
अस्तुति करन लग्यौ सहसौ मुख, धन्य-धन्य जग-तात ।
बार-बार कहि सरन पुकारयौ, राखि-राखि गोपाल ।
सूरदास प्रभु प्रगट भए जब, देख्यौ ब्याल बिहाल ।।३३।।
आवत उरग नाथे स्याम ।
नंद जसुदा गोपी, कहत हैं बलराम ।
मोर-मुकुट, बिसाल लोचन, स्रवन कुंडल लोल ।
कटि पितंबर, बेष नटवर, नृतत फन प्रति डोल ।
देव दिवि दुंदुभि बजावत, सुमन गन बरषाइ ।
सूर स्याम बिलोकि ब्रज-जन, मातु-पितु सुख पाइ ।।३४।।
गोपाल राइ निरतत फन-प्रति ऐसे ।
गिरि पर आए बादर देखत, मोर अनंदित जैसे ।
डोलत मुकुट सीस पर हरि के, कुंडल-मंडित-गंड ।
पीत बसन, दामिन मनु घन पर, तापर सुर-कोदंड ।
उरग-नारि आगैं, सब ठाढ़ीं, मुख मुख अस्तुति गावैं ।
सूर स्याम अपराध छमहु अब, हम मागैं पति पावैं ।।३५।।
गरुड़-त्रास तैं जौ ह्यां आयौ ।
तौ प्रभु चरन-कमल फन-फन प्रति, अपनैं सीस धरायौ ।

घनि रिषि साप दियौ खगपति कौं, ह्याँ तब रह्यौ छपाइ।
प्रभु वाहन-डर भाजि बच्यौ, नातरु लेतौ खाइ।
यह सुनि कृपा करी नँद-नंदन, चरन चिह्न प्रगटाए।
सूरदास प्रभु अभय ताहि करि, उरग-द्वीप पहुँचाए ॥३६॥

सहस सकट भरि कमल चलाए।
अपनी समसरि और गोप जे, तिनकौं साथ पठाए।
और बहुत काँवरि दधि-माखन, अहिरनि काँधैं जोरि।
नृप कैं हाथ पत्र यह दीजौ, बिनती कीजौ मोरि।
मेरो नाम नृपति सौं लीजौ, स्याम कमल लै आए।
कोटि कमल आपुन नृप-माँगे, तीनि कोटि हैं पाए।
नृपति हमहिँ अपनौं करि जानौ, तुम लायक हम नाहिँ।
सूरदास कहियौ नृप आगैं, तुमहिँ छाँड़ि कहँ जाहिँ! ॥३७॥

मुरली

जब हरि मुरली अधर धरत।
थिर चर, चर थिर, पवन थकित रहैं, जमुनाजल न बहत।
खग मोहैं, मृग-जूथ भुलाहीं, निरखि मदन-छबि छरत।
पसु मोहैं सुरभी विथकित, तृन दंतनि टेकि रहत।
सुक सनकादि सकल मुनि मोहैं, ध्यान न तनक गहत।
सूरजदास भाग हैं तिनके, जे या सुखहिँ लहत ॥३८॥

(कहौं कहा) अंगनि की सुधि बिसरि गईं।
स्याम अधर मृदु सुनत मुरलिका, चकित नारि भईं।
जो जैसें तो तैसें रहि गईं, सुख-दुख कह्यौ न जाई।
लिखी चित्र सी सूर ह्वै रहिँ इकटक पत्र बिसराई ॥३९॥

मुरली धुनि स्रवन सुनत, भवन रहि न परै।
ऐसी को चतुर नारि, धीरज मन धरै।
सुर नर मुनि सुनत सुधि न, सिव-समाधि टरै।
अपनी गति तजत पवन, सरिता नहिँ ढरै।
मोहन मुख-मुरली, मन मोहिनि बस करै।
सूरदास सुनत स्रवन, सुधा-सिंधु भरै ॥४०॥

बाँसुरी बजाइ आछें रंग सौं मुरारी।
सुनि कै धुनि छूटि गई, संकर की तारी।

वेद पढ़न भूलि गए, ब्रह्मा ब्रह्मचारी।
रसना गुन कहि न सकै, ऐसी सुधि बिसारी।
इंद्र-सभा थकित भइ, लगी जब करारी।
रंभा कौ मान मिट्यौ, भूली नृत कारी।
जमुना जू थकित भईं, नहीं सँभारी।
सूरदास मुरली है, तीन-लोक प्यारी ।।४१।।

मुरली तऊ गुपालहिं भावति।
सुनि री सखी जदपि नँदलालहिं, नाना भाँति नचावति।
राखति एक पाइ ठाढ़ौ करि, अति अधिकार जनावति।
कोमल तन आज्ञा करवावति, कटि टेढ़ौ ह्वै आवति।
अति अधीन सुजान कनौड़े, गिरिधर नार नवावति।
आपुन पौंढ़ि अधर सज्जा कर, पर पल्लव पलुटावति।
भृकुटी कुटिल, नैन नासा-पुट, हम पर कोप करावति।
सूर प्रसन्न जानि एकौ छिन, धर तैं सीस डुलावति ।।४२।।

अधर-रस मुरली लूटन लागी।
जा रस कौं षटरितु तप कीन्हौ, मो रस पियति सभागी।
कहाँ रही, कहँ तैं यह आई, कौनें याहि बुलाई ?
चक्रित भई कहतिं ब्रजबासिनि यह तौ भली न आई।
सावधान क्यौं होतिं नहीं तुम, उपजी बुरी बलाई।
सूरदास प्रभु हम पर ताकौं, कीन्हौ सौति बजाई ।।४३।।

अबहीं तैं हम सबनि बिसारी।
ऐसे बस्य भये हरि बाके, जाति न दसा बिचारी।
कबहूँ कर पल्लव पर राखत, कबहुँ अधर लै धारी।
कबहुँ लगाइ लेत हिरदै सौं, नैंकहुँ करत न न्यारी।
मुरली स्याम किए वस अपनैं, जे कहियत गिरिधारी।
सूरदास प्रभु कैं तन-मन-धन, बाँस बँसुरिया प्यारी ।।४४।।

मुरली की सरि कौन करै।
नँद-नंदन त्रिभुवन-पति नागर सो जौ बस्य करै।
जबहीं जब मन आवत तब तब अधरनि पान करै।
रहत स्याम आधीन सदाई आयसु तिनहिं करै।

ऐसी भई मोहिनी माई मोहन मोह करै।
सुनहु सूर याके गुन ऐसे ऐसी करनि करै ।।४५।।

काहैं न मुरली सौं हरि जोरैं।
काहैं न अधरनि धरैं जु पुनि-पुनि मिली अचानक भीरैं।
काहैं नहीं ताहि कर धारैं, क्यौं नहिं ग्रीव नवावैं।
काहैं न तनु त्रिभंगा करि राखैं ताके मनहिं चुरावैं।
काहैं न यौ आधीन रहैं ह्वै, वै अहीर वह बेनु।
सूर स्याम कर तैं नहिं टारत, बन-बन चारत धेनु ।।४६।।

मुरलिया कपट चतुरई ठानी।
कैसें मिलि गई नँद-नंदन कौं, उन नाहिं न पहिचानी।
इक वह नारि, बचन मुख मीठे, सुनत स्याम ललचाने।
जाँति-पाँति की कौन चलावै, वाकैं रंग भुलाने।
जाकौ मन मानत है जासौं, सौ तहँई सुख मानै।
सूर स्याम वाके गुन गावत, वह हरि के गुन गानै ।।४७।।

स्यामहिं दोष कहा कहि दीजै।
कहा बात मुरली सौं कहियै, सब अपनैहिं सिर लीजै।
हमहीं कहति बजावहु मोहन, यह नहीं तब जानी।
हम जानी यह बाँस बँसुरिया, को जानै पटरानी।
बारे तैं मुँह लागत-लागत, अब ह्वै गई सयानी।
सुनहु सूर हम भोरी-भारी, याकी अकथ कहानी ।।४८।।

मुरली कहै सु स्याम करैं री।
वाही कैं बस भये रहत हैं वाकैं रंग ढरैं री।
घर-बन, रैन-दिना सँग डोलत, कर तैं करत न न्यारी।
आई बन बलाइ यह हमकौं, कहा दीजियै गारी।
अब लौं रहें हमारे माई, इहिं अपने अब कीन्हे।
सूर स्याम नागर यह नागरि, दुहुँनि भलैं कर चीन्हे ।।४९।।

मेरे दुख कौ ओर नहीं।
षट रितु सीत उष्न बरषा मैं, ठाढ़े पाइ रही।
कसकी नहीं नैं कहूँ काटत, घामें राखी डारि।
अगिनि सुलाक देत नहिं मुरकी, बेह बनावत जारि।

तुम जानति मोहिं बाँस बँसुरिया, अगिनि छाप दै आई।
सूर स्याम ऐसैं तुम लेहु न, खिझति कहाँ हो माई ।।५०।।
स्रम करिहौ जब मेरी सी।
तब तुम अधर-सुधा-रस बिलसहु, मैं ह्वै रहिहौं चेरी सी।
बिना कष्ट यह फल न पाइहौ, जानति हौ अवडेरी सी।
षटरितु सीत तपनि तन गारौ, बाँस बँसुरिया केरी सी।
कहा मौन ह्वै ह्वै जु रही हौ, कहा करत अवसेरी सी।
सुनहु सूर मैं न्यारी ह्वै हौं, जब देखौं तुम मेरी सी ।।५१।।
मुरली स्याम बजावन दै री।
स्रवननि सुधा पियति काहैं नहिं, इहिं तू जनि बरजै री।
सुनति नहीं वह कहति कहा है, राधा राधा नाम।
तू जानति हरि भूल गए मोहिं, तुम एकै पति बाम।
वाही कैं मुख नाम धरावत, हमहिं मिलावत ताहि।
सूर स्याम हमकौं नहिं बिसरे, तुम डरपति हौ काहि ।।५२।।
मुरलिया मोकौं लागति प्यारी।
मिली अचानक आइ कहूँ तैं, ऐसी रही कहाँ री।
धनि याके पितु-मातु, धन्य यह, धन्य-धन्य मृदु बोलनि।
धन्य स्याम गुन गुनि कै ल्याए, नागरि चतुर अमोलनि।
यह निरमोल मोल नहिं याकौ, भलो न यातैं कोई।
सूरदास याके पटतर कौ, तौ दीजै जौ होई ।।५३।।

कमरी

धनि धनि यह कामरी मोहन स्याम की।
यहै ओढ़ि जात बन, यहै सेज कौ बसन, यहै निवारिनि मेह-
बूँद छाँह घाम की।
याही ओट सहत सिसिर-सीत, याही गहने हरत लै धरत
ओट कोटि बाम की।
यहै जाति-पाँति, परिपाटी यहै सिखवत, सूरज प्रभु के यहै
सब बिसराम की ।।५४।।
यह कमरी कमरी करि जानति।
जाके जितनी बुद्धि हृदय मैं, सौ तितनौ अनुमानति।

या कमरी कैं एक रोम पर, वारौं चीर पटंबर।
सो कमरी तुम निंदति गोपी, जो तिहुँ लोक अडंबर।
कमरी कैं बल असुर सँहारे, कमरिहिं तैं सब भोग।
जाति-पाँति कमरी सब मेरी, सूर सबै यह जोग ।।५५।।

चीर-हरन

भवन रवन सबही बिसरायौ।
नँद-नंदन जब तैं मन हरि लियौ, बिरथा जनम गँवायौ।
जप, तप, ब्रत, संजम, साधन तैं, द्रवति होत पाषान।
जैसें मिलैं स्याम सुंदर बर, सोइ कीजै, नहिं आन।
यहै मंत्र दृढ़ कियौ सबनि मिलि, यातैं होइ सुहोइ।
वृथा जनम जग मैं जिनि खोवहु, ह्याँ अपनी नहिं कोइ।
तब प्रतीत सबहिनि कौं आइ, कीन्हौ दृढ़ बिस्वास।
सूर स्यामसुंदर पति पावैं, यहै हमारी आस ।।५६।।

जमुना तट देखे नँद नंदन।
मोर-मुकुट मकराकृत-कुंडल, पीत-बसन तन चंदन।
लोचन तृप्त भए दरसन तैं उर की तपनि बुझानी।
प्रेम-मगन तब भईं सुंदरी, उर गदगद, मुख-बानी।
कमल-नयन तट पर हैं ठाढ़े, सकुचहिं मिलि ब्रज नारी।
सूरदास-प्रभु अंतरजामी, ब्रत-पूरन पगधारी ।।५७।।

बनत नहिं जमुना कौ ऐबौ।
सुंदर स्याम घाट पर ठाढ़े, कहौ कौन बिधि जैबौ।
कैसें बसन उतारि धरैं हम, कैसें जलहिं समैबौ।
नँद-नंदन हमकौं देखैंगे, कैसें करि जु अन्हैबौ।
चोली, चीर, हार लै भाजत, सो कैसें करि पैबौ।
अंकन भरि-भरि लेत सूर प्रभु, काल्हि न इहिं पथ ऐबौ ।।५८।।

नीकैं तप कियौ तनु गारि।
आपु देखत कदम पर चढ़ि, मानि लियौ मुरारि।
वर्ष भर ब्रत-नेम-संजम, स्रम कियौ मोहिं काज।
कैसे हूँ मोहिं भजै कोऊ, मोहिं बिरद की लाज।
धन्य ब्रत इन कियौ पूरन, सीत तपति निवारि।
काम-आतुर भजीं मोकौं, नव तरुनि ब्रज-नारि।

कृपा-नाथ कृपाल भए तब, जानि जन की पीर।
सूर-प्रभु अनुमान कीन्हौ, हरौं इनके चीर ।।५६।।

बसन हरे सब कदम चढ़ाए।
सोरह सहस गोप-कन्यनि के, अंग अभूषन सहित चुराए।
नीलांबर, पाटंबर, सारी, सेत पीत चुनरी, अरुनाए।
अति बिस्तार नीप तरु तामैं, लै-लै जहाँ तहाँ लटकाए।
मनि आभरन डार-डारनि प्रति, देखत छबि मनहीं अँटकाए।
सूर, स्याम जु तिनि ब्रत पूरन, कौ फल डारनि कदम फराए ।।६०।।

हमारे अम्बर देहु मुरारी।
लै सब चीर कदम चढ़ि बैठे, हम जल-माँझ उघारी।
तट पर बिना बसन क्यौं आवैं, लाज लगति है भारी।
चोली हार तुमहिं कौं दीन्हौं, चीर हमहिं द्यौ डारी।
तुम यह बात अचम्भौ भाषत, नाँगी आवहु नारी।
सूर स्याम कछु छोह करौ जू, सीत गई तनु मारी ।।६१।।

लाज ओट यह दूरि करौ।
जोइ मैं कहौं करौ तुम सोई, सकुच बापुरिहि कहा करौ।
जल तैं तीर आइ कर जोरहु, मैं देखौं तुम बिनय करौ।
पूरन ब्रत अब भयौ तुम्हारौ, गुरुजन संका दूरि करौ।
अब अंतर मोसौं जनि राखहु, बार-बार हठ वृथा करौ।
सूर स्याम कहौं चीर देत हौं, मौ आगें सिंगार करौ ।।६२।।
ब्रत पूरन कियौ नंद-कुमार । जुवतिनि के मेटे जंजार ।।
जप तप करि अब जनि तन गारौ । तुम घरनी मैं कंत तुम्हारौ ।।
अंतर सोच दूरि करि डारौ। मेरो कह्यौ सत्य उर धारौ ।।
सरद-रास तुम आस पुराऊँ । अंकन भरि सबकौं उर लाऊँ ।।
यह सुनि सब मन हरष बढ़ायौ । मन-मन कह्यौ कृस्न पति पायौ ।।
जाहु सबै घर घोष कुमारी। सरद-रास दैहौं सुख भारी ।।
सूर स्याम प्रगटे गिरिधारी । आनँद सहित गईं घर नारी ।।६३।।

गोवर्द्धन धारण

बाजति नंद-अवास बधाई।
बैठे खेलत द्वार आपनैं, सात बरस के कुँवर कन्हाई।

बैठे नंद सहित वृषभानुहिँ, और गोप बैठे सब आई।
थापैं देत धरनि के द्वारैं, गावतिं मंगल नारि बधाई।
पूजा करत इंद्र की जानी, आए स्याम तहाँ अतुराई।
बार बार हरि बूझत नंदहिं, कौन देव की करत पुजाई।
इंद्र बड़े कुल-देव हमारे, उनतैं सब यह होति बड़ाई।
सूर स्याम तुम्हरे हित कारन, यह पूजा हम करत सदाई।।६४।।

मेरौ कह्यौ सत्य करि जानौ।
जौ चाहौ ब्रज की कुसलाई, तौ गोबर्धन मानौ।
दूध दही तुम कितनी लैहौ, गोसुत बढ़ैं अनेक।
कहा पूजि सुरपति सैं पायौ, छाँड़ि देहु यह टेक।
मुँह माँगे फल जौ तुम पावहु, तौ तुम मानहु मोहिं।
सूरदास प्रभु कहत ग्वाल सौं, सत्य बचन करि दोहिं।।६५।।

बिप्र बुलाइ लिए नँदराइ।
प्रथमारम्भ जज्ञ कौ कीन्हौ, उठे बेद-धुनि गाइ।
गोबर्धन सिर तिलक चढ़ायौ, मेटि इंद्र ठकुराइ।
अन्नकूट ऐसौ रचि राख्यौ, गिरि की उपमा पाइ।
भाँति-भाँति व्यंजन परसाएँ, कापैं बरन्यौ जाइ।
सूर स्याम सौं कहत ग्वाल गिरि जेवहिं कहौ बुझाइ।।६६।।

गिरिबर स्याम की अनुहारि।
करत भोजन अधिक रुचि यह, सहस भुजा पसारि।
नंद कौ कर गहे ठाढ़े, यहै गिरि कौ रूप।
सखी ललिता राधिका सौं, कहति देखि स्वरूप।
यहै कुंडल, यहै माला, यहै पीत पिछौरि।
सिखर सोभा स्याम की छबि, स्याम-छबि गिरि जोरि।
नारि बदरौला रही, वृषभानु-घर रखवारि।
तहाँ तैं उहिं भोग अरप्यौ, लियौ भुजा पसारि।
राधिका-छबि देखि भूलो, स्याम, निरखैं ताहि।
सूर प्रभु-बस भई प्यारी, कोर-लोचन चाहि।।६७।।

ब्रज बासिनि मोकौं बिसरायौ।
भली करी बलि मेरी जो कछु, सो सब लै परबतहिं चढ़ायौ।

मोसौं गर्ब कियौ लघु प्रानी, ना जानियै कहा मन आयौ।
तैं तिस कोटि सुरनि कौ नायक, जानि-बूझि इन मोहिं भुलायौ।
अब गोपनि भूतल नहिं राखौं, मेरी बलि मोहिं नहिं पहुँचायौ।
सुनहु सूर मेरैं मारत धौं, परबत कैसें होत सहायौ ॥६८॥

गिरि पर बरषन लागे बादर।
मेघवर्त्त, जलवर्त्त, सैन सजि, आए लै लै आदर।
सलिल अखंड धार धर टूटत, किये इंद्र मन सादर।
मेघ परस्पर यहै कहत हैं, धोइ करहु गिरि खादर।
देखि देखि डरपत ब्रजबासी, अतिहिं भए मन कादर।
यहै कहत ब्रज कौन उबारै, सुरपति कियैं निरादर।
सूर स्याम देखैं गिरि अपनैं, मेघनि कीन्हौ दादर।
देव आपनौ नहीं सम्हारत, करत इंद्र सौं ठादर ॥६९॥

ब्रज के लोग फिरत बितताने।
गैयनि लै बन ग्वाल गए, ते धाए आवत ब्रजहिं पराने।
कोउ चितवत नभ-तन चक्रित ह्वै, कोउ गिरि परत धरनि अकुलाने।
कोउ लै रहत ओट वृच्छि की, अंध-धुंध दिसि बिदिस भुलाने।
कोउ पहुँचे जैसें तैसें गृह, कोउ ढूँढ़त गृह नहिं पहिचाने।
सूरदास गोबर्धन-पूजा, कीन्हे कौ फल लेहु बिहाने ॥७०॥

राखि लेहु अब नंदकिसोर।
तुम जौ इंद्र की मेटी पूजा, बरसत है अति जोर।
ब्रजवासी तुम तन चितवत हैं, ज्यौं करि चंद चकोर।
जनि जिय डरौं नैन जनि मूँदौ, धरिहौं नख की कोर।
करि अभिमान इंद्र झरि लायौ, करत घटा घनघोर।
सूर स्याम कह्यौ तुम कौं राखौं, बूँद न आवै छोर ॥७१॥

स्याम लियौ गिरिराज उठाइ।
धीर धरौ हरि कहत सबनि सौं, गिरि गोबर्धन करत सहाइ।
नन्द गोप ग्वालनि के आगैं, देव कह्यौ यह प्रगट सुनाइ।
काहे कौं व्याकुल भएँ डोलत, रच्छा करै देवता आइ।
सत्य बचन गिरि-देव कहत हैं, कान्ह लेहि मोहिं कर उचकाइ।
सूरदास नारी-नर ब्रज के, कहत धन्य तुम कुँवर कन्हाइ ॥७२॥

गिरि जनि गिरै स्याम के कर तैं।
करत विचार सबै ब्रजबासी, भय उपजत अति उर तैं।
लै-लै लकुट ग्वाल सब धाए, करत सहाय जु तुरतैं।
यह अति प्रबल, स्याम अति कोमल, रबकि रबकि हरबर तैं।
सप्त दिवस कर पर गिरि धारयौ, वरसि थक्यौ अम्बर तैं।
गोपी ग्वाल नंद-सुत राख्यौ, मेघ-धार जलधर तैं।
जमलार्जुन दोउ सुत कुबेर के, तेउ उखारे जर तैं।
सूरदास प्रभु इन्द्र-गर्व हरि, ब्रज राख्यौ करबर तैं ।।७३।।

मेघनि जाइ कही पुकारि।
दीन ह्वै सुरराज आगैं, अस्त्र दीन्हे डारि।
सात दिन भरि बरसि ब्रज पर, गई नैकुँ न झारि।
अखँड धारा सलिल निझरयौ, मिटी नहिं लगारि।
धरनि नैंकु न बूँद पहुँची, हरषे ब्रज-नर-नारि।
सूर घन सब इन्द्र आगैं, करत यहै गुहारि ।।७४।।

घरनि घरनि ब्रज होति बधाई।
सात बरष को कुँवर कन्हैया, गिरिवर धरि जीत्यौ सुरराई।
गर्व सहित आयौ ब्रज बोरन, वह कहि मेरौ भक्ति घटाई।
सात दिवस जल बरषि सिरान्यौ, तब आयौ पाइनि तर धाई।
कहाँ कहाँ नहिं संकट मेटत, नर-नारी सब करत बड़ाई।
सूर स्याम अब कैं ब्रज राख्यो, ग्वाल करत सब नंद दोहाई ।।७५।।

(तेरैं) भुजनि बहुत बल होइ कन्हैया।
बार-बार भुज देखि तनक सैं, कहति जसोदा मैया।
स्याम कहत नहिं भुजा पिरानी, ग्वालिन कियौ सहैया।
लकुटिनि टेक सबनि मिलि राख्यौ, अरु बाबा नँदरैया।
मोसौं क्यौं रहतौ गोबरधन, अतिहिं बड़ौ यह भारी।
सूर स्याम यह कहि परबोध्यौ, चकित देखि महतारी ।।७६।।

मातु पिता इनके नहिं कोइ।
आपुहिं करता, आपुहिं हरता, त्रिगुन रहित हैं सोइ।
कितिक बार अवतार लियौ ब्रज, ये हैं ऐसे ओइ।
जल-थल, कीट-ब्रह्म के व्यापक, और न इन सरि होइ।

बसुधा-भार-उतारन-काजैं, आपु रहत तनु गोइ।
सूर स्याम माता-हित-कारन, भोजन माँगत रोइ ।।७७।।
सुरगन सहित इन्द्र ब्रज आवत।
धवल बरन ऐराबत देख्यौ उतरि गगन तैं धरनि धँसावत।
अमरा-सिव-रबि-ससि चतुरानन, हय-गय बसह हंस-मृग जावत।
धर्मराज, बनराज, अनल, दिव, सारद, नारद, सिव-सुत भावत।
मेढ़ा, महषि, मगर, गुदरारौ, मोर, आखुमन वाहन, गावत।
ब्रज के लोग देखि डरपे मन, हरि आगैं कहि कहि जु सुनावत।
सात दिवस जल बरषि सिरान्यौ, आवत चल्यौ ब्रजहिं अतुरावत।
घेरौ करत जहाँ तहँ ठाढ़े, ब्रजबासिनि कौं नाहिँ बचावत।
दूरहिं तैं बाहन सौ, उतरचौ, देवनि सहित चल्यौ सिर नावत।
आइ परचौ चरननि तर आतुर, सूरदास-प्रभु सीस उठावत ।।७८।।

रास लीला

जबहिँ बन मुरली स्रवन परीं।
चकित भईं गोप कन्या सब, काम-धाम बिसरीं।
कुल मर्जाद बेद की आज्ञा, नैंकहुँ नहीं डरीं।
स्याम-सिंधु, सरिता-ललना-गन, जल की ढरनि ढरीं।
अँग-मरदन करिबे कौं लागीं, उबटन तेल धरीं।
जो जिहिं भाँति चली सो तैसैंहिं, निसि बन कौं जुखरीं।
सुत पति-नेह, भवन-जन-संका, लज्जा नाहिँ करीं।
सूरदास-प्रभु मन हरि लीन्हौ, नागर नवल हरीं ।।७९।।
चली बन बेनु सुनत जब धाइ।
मातु पिता-बांधव अति त्रासत, जाति कहाँ अकुलांइ।
सकुच नहीं, संका कछु नाहीं, रैनि कहाँ तुम जाति।
जननी कहति दई की घाली, काहे कौं इतराति।
मानति नहीं और रिस पावति, निकसी नातौ तोरि।
जैसैं जल-प्रवाह भादौं कौ, सो को सकै बहोरि।
ज्यौं केंचुरी भुअंगम त्यागत, मात पिता यौं त्यागे।
सूर स्याम कैं हाथ बिकानी, अलि अम्बुज अनुरागे ।।८०।।
मातु-पिता तुम्हरे धौं नाहीं।
बारम्बार कमल-दल-लोचन, यह कहि-कहि पछिताहीं।

उनकैं लाज नहीं, बन तुमकौं आवन दीन्ही राति।
सब सुंदर, सबै नवजोबन, निठुर अहिर की जाति।
की तुम कहि आईं, की ऐसेंहिं कीन्ही कैसी रीति।
सूर तुमहिं यह नहीं बूझियै, करी बड़ी बिपरीति ।।८१।।

इहिं बिधि बेद-मारग सुनौ।
कपट तजि पति करौ पूजा, कहा तुम जिय गुनौ।
कंत मानहु भव तरोगी, और नाहिं उपाइ।
ताहि तजि क्यौं बिपिन आईं; कहा पायौ आइ।
बिरध अरु बिन भागहूँ कौ, पतित जौ पति होइ।
जऊ मूरख होइ रोगी, तजै नाहीं जोइ।
यहै मैं पुनि कहत तुम सौं, जगत मैं यह सार।
सूर पति-सेवा बिना, क्यौं तरौगी संसार ।।८२।।

तुम पावत हम घोष न जाहिं।
कहा जाइ लैहैं हम ब्रज यह दरसन त्रिभुवन नाहिं।
तुमहूँ तैं ब्रज हितू न कोऊ, कोटि कहौ नहिं मानैं।
काके पिता, मातु हैं काकी, काहूँ हम नहिं जानैं।
काके पति, सुत-मोह कौन कौ, घरही कहा पठावत।
कैसौ धर्म, पाप है कैसौ, आप निरास करावत।
हम जानैं केवल तुमहीं कौं, और बृथा संसार।
सूर स्याम निठुराई तजियै, तजियै बचन-विकार ।।८३।।

कहत स्याम श्रीमुख यह बानी।
धन्य-धन्य दृढ़ नेम तुम्हारौ, बिनु दामनि मो हाथ बिकानी।
निरदय बचन कपट के भाखे, तुम अपनें जिय नैंकु न आनी।
भजीं निसंक आइ तुम मोकौं, गुरुजन की संका नहिं मानी।
सिंह रहै जंबुक सरनागत, देखी सुनी न अकथ कहानी।
सूर स्याम अंकन भरि लीन्हीं, बिरह अग्नि-झर तुरत बुझानी ।।८४।।

कियौ जिहिं काज तप घोष नारी।
देहु फल हौं तुरत लेहु तुम अब घरी, हषष चित करहु दुख देहु डारी।
रास रस रचौं, मिलि संग बिलसौ, सबै वस्त्र हरि कहि जो निगम बानी।
हँसत मुख मुख निरखि, बचन अमृत बरषि, कृपा-रस भरे सारंग पानी।

ब्रज-जुवति चहुँ पास, मध्य सुंदर स्याम राधिका बाम अति छबि बिराजै।
सूर नव-जलद-तनु,सुभग स्यामल कांति,इंदु-बहु-पाँति-बिच अधिक छाजै।।८५।।

मानो माई घन घन अंतर, दामिनि।
घन दामिनि दामिनि घन अंतर, शोभित हरि-ब्रज भामिनि।
जमुन पुलिन मल्लिका मनोहर, सरद-सुहाई-जामिनि।
सुंदर ससि गुन रूप-राग-निधि, अंग-अंग अभिरामिनि।
रच्यौ रास मिलि रसिक राइ सौं, मुदित भईं गुन ग्रामिनि।
रूप-निधान स्याम सुंदर घन, आनँद मन बिस्रामिनि।
खंजन-मीन-मयूर-हंस-पिक, भाइ-भेद गज-गामिनि।
को गति गनै सूर मोहन सँग, काम बिमोह्यौ कामिनि ।।८६।।

गरब भयौ ब्रजनारि कौं, तबहीं हरि जाना।
राधा प्यारी संग लिये, भए अंतर्धाना।
गोपिनि हरि देख्यौ नहीं, तब सब अकुलाई।
चकित होइ पूछन लगीं, कहँ गए कन्हाई।
कोउ मर्म जानैं नहीं, व्याकुल सब बाला।
सूर स्याम ढूँढ़ति फिरैं, जित-तित ब्रज-बाला ।।८७।।

तुम कहुँ देखे स्याम बिसासी।
तनक बजाइ बाँस की मुरली, लै गए प्रान निकासी।
कबहुँक आगैं, कबहुँक पाछैं, पग-पग भरति उसासी।
सूर स्याम-दरसन के कारन, निकसीं चंद-कला सी ।।८८।।

कहि धौं री बन बेलि कहूँ तैं, देखे हैं नँद-नंदन।
बूझहु धौं मालती कहूँ तैं, पाए हैं तन-चंदन।
कहि धौं कुंद, कदंब, बकुल, बट, चंपक, ताल, तमाल।
कहि धौं कमल कहाँ कमलापति, सुन्दर नैन बिसाल।
कहि धौं री कुमुदिनि,कदली कछु, कहि बदरी करबीर।
कहि तुलसी तुम सब जानति हौ, कहँ घनस्याम सरीर।
कहि धौं मृगी मया करि हमसौं, कहि धौं मधुप मराल।
सूरदास-प्रभु के तुम संगी, हैं कहँ परम कृपाल ।।८९।।

स्याम सबनि कौं देखही, वै देखतिं नाहीं।
जहाँ तहाँ व्याकुल फिरैं, धीर न तनु माहीं।

कोउ बंसीबट कौं चली, कोउ बन घन जाहीं।
देखि भूमि वह रास की, जहँ-तहँ पग-छाहीं।
सदा हठीली, लाड़िली, कहि-कहि पछिताहीं।
नैन सजल जल ढारहीं, व्याकुल मन माहीं।
एक-एक ह्वै ढूँढ़हीं, तरुनी बिकलाहीं।
सूरज प्रभु कहुँ नहिँ मिले, ढूँढ़ति द्रुम पाहीं ॥९०॥

तब नागरि जिय गर्ब बढ़ायौ।
मो समान तिय और नहीं कोउ, गिरिधर मैं ही बस करि पायौ।
जोइ-जोइ कहति करत पिय सोइ सोइ, मेरैं ही हित रास उपायौ।
सुन्दर, चतुर और नहिँ मोसी, देह धरे कौ भाव जनायौ।
कबहुँक बैठि जाति हरि कर धरि, कबहुँ कहति मैं अति स्रम पायौ।
सूर स्याम गहि कंठ रहो तिय, कंध चढ़ौ यह बचन सुनायौ ॥९१॥

कहै भामिनी कंत सौं, मोहिँ कंध चढ़ावहु।
नृत्य करत अति स्रम भयो, ता स्रमहिँ मिटावहु।
धरनी धरत बनै नहीं, पग अतिहिँ पिराने।
तिया-बचन सुनि गर्ब के, पिय मन मुसुकाने।
मैं अबिगत, अज, अकल हौं, यह मरम न पायौ।
भाव बस्य सब पैं रहौं, निगमनि यह गायौ।
एक प्रान द्वै देह हैं, द्विविधा नहिँ यामैं।
गर्ब कियौ नरदेह तैं, मैं रहौं न तामैं।
सूरज-प्रभु अंतर भए, संग तैं तजि प्यारी।
जहँ की तहँ ठाड़ी रही, वह घोष-कुमारी ॥९२॥

जो देखैं द्रुम के तरैं, मुरझी सुकुमारी।
चकित भईं सब सुन्दरी, वह तौ राधा री।
याही कौं खोजति सबै, यह रही कहाँ री।
धाइ परीं सब सुंदरी, जो जहाँ-तहाँ री।
तन की तनकहुँ सुधि नहीं, व्याकुल भईं बाला।
यह तौ अतिं बेहाल है, कहुँ गए गोपाला।
बार-बार बूझतिं सबै, नहिँ बोलति बानी।
सूर स्याम काहैं तजी, कहि सब पछितानी ॥९३॥

केहिं मारग मैं जाउँ सखी री, मारग मोहिं बिसर्‍यौ।
ना जानैं कित ह्वै गए मोहन, जात न जानि पर्‍यौ।
अपनौ पिय ढूँढ़ति फिरौं, मोहिं मिलिबे कौ चाव।
काँटो लाग्यौ प्रेम कौ, पिय यह पायौ दाव।
बन डोंगर ढँढ़त फिरी, घर-मारग तजि गाउँ।
बूझौं द्रुम, प्रति बेलि कोउ, कहै न पिय कौ नाउँ।
चकित भई, चितवत फिरी, ब्याकुल अतिहिं अनाथ।
अब कैं जौ कैसेहु मिलौं, पलक न त्यागौं साथ।
हृदय माँझ पिय-घर करौं, नैननि बैठक देउँ।
सूरदास प्रभु सँग मिलौं, बहुरि रास-रस लेउँ ।।९४।।

कृपा सिंधु हरि कृपा करौ हो।
अनजानैं मन गर्व बढ़ायौ, सो जिनि हृदय धरौ हो।
सोरह सहस पीर तनु एकै, राधा जिव, सब देह।
ऐसी दसा देखि करुनामय, प्रगटौ हृदय-सनेह।
गर्व-हत्यौ तनु बिरह प्रकास्यौ, प्यारी व्याकुल जानि।
सुनहु सूर अब दरसन दीजै, चूक लई इनि मानि ।।९५।।

अंतर तैं हरि प्रगट भए।
रहत प्रेम के बस्य कन्हाई, जुवतिनि कौं मिलि हर्ष दए।
वैसोइ सुख सबकौं फिरि दीन्हौं, वहै भाव सब मानि लियौ।
वै जानति हरि संग तबहिं तैं, वहै बुद्धि सब, वहै हियौ।
वहै रास-मंडल-रस जानतिं, बिच गोपी, बिच स्याम धनी।
सूर स्याम श्यामा मधि नायक, वहै परस्पर प्रीति बनी ।।९६।।

आजु हरि अद्भुत रास उपायौ।
एकहिं सुर सब मोहित कीन्हे, मुरली नाद सुनायौ।
अचल चले, थकित भए, सब मुनिजन ध्यान भुलायौ।
चंचल पवन थक्यौ नहिं डोलत, जमुना उलटि बहायौ।
थकित भयौ चंद्रमा सहित-मृग, सुधा-समुद्र बढ़ायौ।
सूर स्याम गोपिनि सुखदायक, लायक दरस दिखायौ ।।९७।।

बनावत रास मंडल प्यारौ।
मुकुट की लटक, झलक कुंडल की, निरतत नंद दुलारौ।

उर बनमाल सोह सुंदर बर, गोपिनि कैं सँग गावै ।
लेत उपज नागर नागरि सँग, बिच-बिच तान सुनावै ।
बंसीबट-तट रास रच्यौ है, सब गोपिनि सुखकारौ ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन सौं, भक्तनि प्रान अधारौ ।।९८।।

रास रस स्रमित भईं ब्रजबाल ।
निसि सुख दै यमुना-तट लै गए, भोर भयौ तिहिं काल ।
मनकामना भई परिपूरन, रही न एकौ साधि ।
षोड़स सहस नारि सँग मोहन, कीन्हौ सुख अवगाधि ।
जमुना-जल बिहरत नँद-नंदन, संग मिलीं सुकुमारि ।
सूर धन्य धरनी बृन्दावन, रवि तनया सुखकारि ।।९९।।

ललकत स्याम मन ललचात ।
कहत हैं घर जाहु सुंदरि, मुख न आवति बात ।
षट सहस दस गोप कन्या, रैनि भोगीं रास ।
एक छिन भईं कोउ न न्यारी, सबनि पूजी आस ।
बिहँसि सब घर-घर पठाईं, ब्रज गईं ब्रज-बाल ।
सूर प्रभु-नँद-धाम पहुँचे, लख्यौ काहु न ख्याल ।।१००।।

ब्रजबासी सब सोवत पाए ।
नंद सुवन मति ऐसी ठानी, उनि घर लोग जगाए ।
उठे प्रात-गाथा मुख भाषत, आतुर रैनि बिहानी ।
ऐंडत अंग जम्हात बदन भरि, कहत सबै यह बानी ।
जो जैसें सो तैसें लागे, अपनैं-अपनैं काज ।
सूर स्याम के चरित अगोचर, राखी कुल की लाज ।।१०१।।

ब्रज-जुवती रस-रास पगीं ।
कियौ स्याम सब को मन भायो, निसि रति-रंग जगीं ।
पूरन ब्रह्म, अकल, अबिनासी, सबनि संग सुख दीन्हौ ।
जितनी नारि भेष भए तितने, भेद न काहू कीन्हौ ।
वह सुख टरत न काहूँ मन तैं, पति हित-साध पुराईं ।
सूर स्याम दूलह सब दुलहिनि, निसि भाँवरि दै आईं ।।१०२।।

रास रस लीला गाइ सुनाऊँ ।
यह जस कहै, सुनै मुख स्रवननि, तिहि चरननि सिर नाऊँ ।

कहा कहौं वक्ता स्रोता फल, इक रसना क्यौं गाऊँ।
अष्ट सिद्धि नवनिधि सुख-संपति, लघुता करि दरसाऊँ।
जौं परतीति होइ हिरदै मैं, जग-माया धिक देखै।
हरि-जन दरस हरिहि सम बूझे, अंतर कपट न लेखै।
धनि वक्ता, तेई धन स्रोता, स्याम निकट हैं ताकैं।
सूर धन्य तिहि के पितु, माता, भाव भगति है जाकैं॥१०३॥

पनघट लीला

पनघट रोके रहत कन्हाई।
जमुना-जल कोउ भरन न पावै, देखत ही फिरि जाई।
तबहिं स्याम इक बुद्धि उपाई, आपुन रहे छपाई।
तट ठाढ़े जे सखा संग के, तिनकौं लियौ बुलाई।
बैठारचौ ग्वालनि कौं द्रुमतर, आपुन फिरि-फिरि देखत।
बड़ी बार भई कोउ न आई, सूर स्याम मन लेखत॥१०४॥

जुवति इक आवति देखी स्याम।
द्रुम कैं ओट रहै हरि आपुन, जमुना तट गई बाम।
जल हलोरि गागरि भरि नागरि, जबहीं सीस उठायो।
घर कौं चली जाइ ता पाछैं, सिर तैं घट ढरकायो।
चातुर ग्वालि कर गह्यो स्याम कौ, कनक लकुटिया पाई।
औरनि सौं करि रहे अचगरी, मोसौं लगत कन्हाई।
गागरि लै हँसि देत ग्वारि-कर, रीतौ घट नहिं लैहौं।
सूर स्याम ह्याँ आनि देहु भरि, तबहिं लकुट कर दैहौं॥१०५॥

घट भरि दियौ स्याम उठाइ।
नैंकु तन की सुधि न ताकौं, चली ब्रज-समुहाइ।
स्याम सुन्दर नैन-भीतर, रहे आनि समाइ।
जहाँ-तहँ भरि दृष्टि देखै, तहाँ-तहाँ कन्हाइ।
उतहिं तैं इक सखी आई, कहति कहा भुलाइ।
सूर अबहीं हँसत आई, चली कहाँ गवाँइ॥१०६॥

नीकैं देहु न मेरी गिंडुरी।
लै जैहैं धरि जसुमति आगैं, आवहु री सब मिलि झुँडरी।
काहूँ नहीं डरात कन्हाई, बाट घाट तुम करत अचगरी।
जमुना-दह गिंडुरी फटकारी, फोरी सब मटुकी अरु गगरी।

भली करी यह कुंवर कन्हाई, आजु मेटिहैं तुम्हरी लँगरी।
चलीं सूर जसुमति के आगै, उरहन लै ब्रज-तरुनी सगरी ।।१०७।।

सुनहु महरि तेरौ लाड़िलौ, अति करत अचगरी।
जमुन भरन जल हम गईं, तहँ रोकत डगरी।
सिरतैं नीर ढराइ दै, फोरी सब गगरी।
गेंडुरि दई फटकारि कै, हरि करत जु लँगरी।
नित प्रति ऐसे ढंग करै, हमसौं कहै धगरी।
अब बस-बास बनैं, नहिँ इहिँ तुव ब्रज-नगरी।
आपु गयौ चढ़ि कदम पर, चितवत रहीं सगरी।
सूर स्याम ऐसेंहि सदा, हम सौं करै झगरी ।।१०८।।

ब्रज-घर-घर यह बात चलावत।
जसुमति कौ सुत करत अचगरी, जमुना जल कोउ भरन न पावत।
स्याम वरन नटवर बपु काछे, मुरली राग मलार बजावत।
कुंडल-छबि रबि किरनहुँ तैं दुति, मुकुट इंद्र-धनुहूँ तैं भावत।
मानत काहु न करत अचगरी, गागरि धरि जल मुँह ढरकावत।
सूर स्याम कौं मात पिता दोउ, ऐसे ढँग आपुनहिँ पढ़ावत ।।१०९।।

करत अचगरी नंद महर कौ।
सखा लिये जमुना तट बैठ्यो, निबह न लोग डगर कौ।
कोउ खीझो, कोऊ बिन बरजौ, जुवतिन कैं मन ध्यान।
मन-बच-कर्म स्याम सुन्दर तजि, और न जानति आन।
यह लीला सब स्याम करत हैं, ब्रज जुवतिन कैं हेत।
सूर भजे जिहिँ भाव कृष्न कौं, ताकौं, सोइ फल देत ।।११०।।

दान लीला

ऐसौ दान माँगियै नहिँ जौ, हम पैं दियौ न जाइ।
बन मैं पाइ अकेली जुवतिनि, मारग रोकत धाइ।
घाट बाट औघट जमुना-तट, बातैं कहत बनाइ।
कोऊ ऐसौ दान लेत है, कौनें पठए सिखाइ।
हम जानतिँ तुम यौं नहिँ रैहौ, रहिहौ गारी खाइ।
जो रस चाहौ सो रस नाहीं, गोरस पियौ अघाइ।
औरनि सौं लै लीजै मोहन, तब हम देहिँ बुलाइ।
सूर स्याम कत करत अचगरी, हम सौं कुँवर कन्हाइ ।।१११।।

ऐसैं जनि बोलहु नँद-लाला।
छाँड़ि देहु अँचरा मेरौ नीकैं, जानत और सी बाला।
बार-बार मैं तुमहिं कहत हौं, परिहौ बहुरि जँजाला।
जोवन, रूप देखि ललचाने, अबहीं तैं ये ख्याला।
तरुनाई तनु आवन दीजै, कत जिय होत बिहाला।
सूर स्याम उर तैं कर टारहु, टूटै मोतिनि-माला।।११२।।
तैं कत तोर्‍यौ हार नौ सरि कौ।
मोती बगरि रहे सब-बन मैं, गयौ कान कौ तरिकौ।
ये अवगुन जु करत गोकुल मैं, तिलक दिये केसरि कौ।
ढीठ गुवाल दही कौ मातौ, ओढ़नहार कमरि कौ।
जाइ पुकारैं जसुमति आगैं, कहति जु मोचन लरिकौ।
सूर स्याम जानी चतुराई, जिहिं अभ्यास महुअरि कौ।।११३।।
आपुन भई सबै अब भोरी।
तुम हरि कौ पीताम्बर झटक्यौ, उन तुम्हरी मोतिनि लर तोरी।
माँगत दान ज्वाब नहिं देतीं, ऐसी तुम जोबन की जोरी।
डर नहिं मानतिं नँद-नंदन कौ, करतिं आनि झकझोरा झोरी।
इक तुम नारि गँवारि भली हौ, त्रिभुवन मैं इनकी सरि को री।
सूर सुनहु लैहैं छँडाइ सब, अबहिं फिरौगी दौरी दौरी।।११४।।
हँसत सखनि यह कहत कन्हाई।
जाइ चढ़ी तुम सघन द्रुमनि पर, जहँ तहँ रहौ छपाई।
तब लौं बैठि रहौ मुख मूँदे, जब जानहु सब आई।
कूदि परौ तब द्रुमनि-द्रुमनि तैं, दै दै नंद दुहाई।
चकित होहिं जैसैं जुवती-गन, डरनि जाहिं अकुलाई।
बेनु-विषान-मुरलि-धुन कीजौ, संख-सब्द घहनाई।
नित प्रति जाति हमारै मारग, यह कहियौ समुझाई।
सूर स्याम माखनदधि दानी, यह सुधि नाहिं न पाई ?।।११५।।
ग्वारिनि जब देखे नँद-नंदन।
मोर मुकुट पीताम्बर काछे, खौरि किए तन चंदन।
तब यह कह्यौ कहाँ अब जैहौ, आगैं कुँवर कन्हाई।
यह सुनि मन आनन्द बढ़ायौ, मुख कहैं, बात डराई।

कोउ-कोउ कहति चलौ री जैये, कोउ कहै घर फिरि जैये।
कोउ-कोउ कहति कहा करिहैं हरि, इनसौं कहा परैयै।
कोउ-कोउ कहति कालिहीं हमकौं, लूटि लई नँद लाल।
सूर स्याम के ऐसे गुन हैं, घरहिं फिरीं ब्रज-बाल ।।११६।।

कान्ह कहत दधि-दान न दैहौ ?
लैहौं छीनि दूध दधि माखन, देखति ही तुम रैहौ।
सब दिन कौ भरि लेउँ आजुहीं, तब छाड़ौ, मैं तुमकौं।
उघटति हो तुम मातु-पिता लौं, नहिं जानत हो हमकौं।
हम जानति हैं तुमकौ मोहन, लै-लै गोद खिलाए।
सूर स्याम अब भये जगाती, वै दिन सब बिसराए ।।११७।।

जाइ सबै कंसहि गुहरावहु।
दधि माखन घृत लेत छुड़ाए, आजु हजूर बुलावहु।
ऐसे कौं कहि मोहिं बतावति, पल भीतर गहि मारौं।
मथुरापतिहिं सुनौगी तुमहीं, जब धरि केस पछारौं।
बार-बार दिन हमहिं बतावति, अपनौ दिन न विचारयौ।
सूर इन्द्र ब्रज जबहिं बहावत, तब गिरि राखि उबारयौ ।।११८।।

मोसौं बात सुनहु ब्रज-नारी।
इक उपखान चलत त्रिभुवन मैं, तुमसौं कहौं उघारी।
कबहूँ बालक मुँह न दीजियै, मुँह न दीजियै नारी।
जोइ मन करै सोइ करि डारैं, मूँड़ चढ़त हैं भारी।
बात कहत अँठिलाति जाति सब, हँसति देति कर तारी।
सूर कहा ये हमकौं जानैं, छाँछहिं बेंचनहारी ।।११९।।

यह जानति तुम नंदमहर-सुत।
धेनु दुहत तुमकौं हम देखतिं, जबहिं जाति खरिकहिं उत।
चोरी करत यहौ पुनि जानति, घर-घर ढूँढ़त भाँड़े।
मारग रोकि भए अब दानी, वे ढँग कब तैं छाँड़े।
और सुनौ जसुमति जब बाँधे, हम कियौ सहाइ।
सूरदास-प्रभु यह जानति हम, तुम ब्रज रहत कन्हाइ ।।१२०।।

को माता को पिता हमारैं।
कब जनमत हमकौं तुम देख्यौ, हँसियत बचन तुम्हारैं।

कब माखन चोरी करि खायौ, कब बाँधे महतारी।
दुहत कौन गैया चारत, बात कही यह भारी।
तुम जानत मोहिं नंद-ढुटौना, नंद कहाँ तैं आए।
मैं पूरन अबिगत, अबिनासी, माया सबनि भुलाए।
यह सुनि ग्वालि सबै मुसुक्यानी, ऐसे गुन हौ जानत।
सूर स्याम जो निदर्‌यौ सबही, मात-पिता नहिं मानत ।।१२१।।

भक्त हेत अवतार धरौं।
कर्म-धर्म कैं बस मैं नाहीं, जोग जज्ञ मन मैं न करौं।
दीन-गुहारि सुनौं स्रवननि भरि, गर्ब-वचनसुनि हृदय जरौं।
भाव-अधीन रहौं सबही कै, और न काहू नैंकु डरौं।
ब्रह्मा कीट आदि लौं व्यापक, सबकौं सुख दै दुखहिं हरौं।
सूर स्याम तब कही प्रगटही, जहाँ भाव तहँ तैं न टरौं ।।१२२।।

जौ तुमहीं हौ सबके राजा।
तौ बैठौ सिंहासन चढ़ि कै, चँवर, छत्र, सिर भ्राजा।
मोर-मुकुट, मुरली पीतांबर, छाड़ौ नटवर-साजा।
बेनु, विषान, संख क्यौं पूरत, बाजै नौबत बाजा।
यह जु सुनैं हमहूँ सुख पावैं, संग करैं कछु काजा।
सूर स्याम ऐसी बातैं सुनि, हमकौं आवति लाजा ।।१२३।।

हमहिं और सो रोकै कौन।
रोकनहारौ नंदमहर सुत, कान्ह नाम जाकौ है तौन।
जाकैं बल है कामनृपति कौ, ठगत फिरत जुवतिनि कौं जौन।
टोना डारि देत सिर ऊपर, आपु रहत ठाढ़ौ ह्वै मौन।
सुनहु स्याम ऐसी न बूझियै, बानि परी तुमकौं यह कौन।
सूरदास-प्रभु कृपा करहु अब, कैसेंहु जाहिं आपनै भौन ।।१२४।।

राधा सौं माखन हरि माँगत।
औरनि की मटुकी कौ खायौ, तुम्हरौ कैसौ लागत।
लै आई वृषभानु-सुता, हँसि, सद लवनी है मेरौ।
लै दीन्हौं अपनैं कर हरि-मुख, खात अल्प हँसि हेरौ।
सबहिनि तैं मीठौ दधि है यह, मधुरैं कह्यौ सुनाइ।
सूरदास-प्रभु सुख उपजायौ, ब्रज ललना मनभाइ ।।१२५।।

मेरे दधि कौ हरि स्वाद न पायौ।
जानत इन गुजरिनि कौ सौ है, लयौ छिड़ाइ मिलि ग्वालनि खायौ।
धौरी धेनु दुहाइ छानि पय, मधुर आँचि मैं औटि सिरायौ।
नई दोहनी पोंछि पखारी, धरि निरधूम खिरनि पै तायौ।
तामैं मिलि मिस्रित मिसिरी करि, दै कपूर पुट जावन नायौ।
सुलभ ढकनियाँ ढाँकि बाँधि पट, जतन राखि छीकैं समुदायौ।
हौं तुम कारन लै आई गृह, मारग मैं न कहूँ दरसायौ।
सूरदास-प्रभु रसिक-सिरोमनि, कियौ कान्ह ग्वालिनि मन भायौ ।।१२६।।

गोपी कहति धन्य हम नारी।
धन्य दूध, धनि दधि, धनि माखन, हम परुसति जेंवत गिरिधारी।
धन्य घोष, धनि दिन, धनि निसि वह, धनि गोकुल प्रगटे बनवारी।
धन्य सुकृत पाँछिलौ, धन्य धनि नँद, धन्य जसुमति महतारी।
धनि धनि ग्वाल, धन्य वृन्दावन, धन्य भूमि यह अति सुखकारी।
धन्य दान, धनि कान्ह मँगैया, धन्य सूर त्रिन-द्रुम बन-डारी ।।१२७।।

गन गंधर्व देखि सिहात।
धन्य ब्रज-ललनानि कर तें, ब्रह्म माखन खात।
नहीं रेख, न रूप, नहिं तनु, बरन नहिं अनुहारि।
मातु-पितु नहिं दोउ जाकैं, हरत-मरत न जारि।
आपु कर्त्ता आपु हर्त्ता, आपु त्रिभुवन नाथ।
आपुहीं सब घट कौ व्यापी, निगम गावत गाथ।
अंग प्रति-प्रति रोम जाकै, कोटि-कोटि ब्रह्मंड।
कीट ब्रह्म प्रजंत जल-थल, इनहिं तैं यह मंड।
येइ विस्वंभरन नायक, ग्वाल-संग-बिलास।
सोइ प्रभु दधि दान माँगत, धन्य सूरजदास ।।१२८।।

ब्रह्म जिनहिं यह आयसु दीन्हौ।
तिन तिन संग जन्म लियौ परगट, सखी सखा करि कीन्हौ।
गोपी ग्वाल कान्ह द्वै नाहीं, ये कहुँ नैंकु न न्यारे।
जहाँ-जहाँ अवतार धरत हरि; ये नहिं नैंकु बिसारे।
एकै देह बहुत करि राखे, गोपी ग्वाल मुरारी।
यह सुख देखि सूर कै प्रभु कौं, थकित अमर-सँग-नारी ।।१२९।।

यह महिमा येई पै जानैं ।
जोग-यज्ञ तप ध्यान न आवत, सो दधि-दान लेत सुख मानैं ।
खात परस्पर ग्वालनि मिलि कै, मीठौ कहि कहि आप बखानैं ।
विस्वंभर जगदीस कहावत, ते दधि दोना माँझ अघानैं ।
आपुहिं करता, आपुहिं हरता, आपु बनावत, आपुहिं भाने ।
ऐसे सूरदास के स्वामी, ते गोपिनि कैं हाथ बिकाने ॥१३०॥

सुनहु बात जुवती इक मेरी ।
तुमतें दूरि होत नहिं कबहूँ, तुम राख्यौ मोहिं घेरी ।
तुम कारन बैकुंठ तजत हौं, जनम लेत ब्रज आइ ।
वृन्दावन राधा-गोपी सँग, यहि नहिं बिसरयौ जाइ ।
तुम अंतर-अंतर कह भाषति, एक प्रान द्वै देह ।
क्यौं राधा ब्रज बसैं बिसारौं, सुमिरि पुरातन नेह ।
अब घर जाहु दान मैं पायौ, लेखा कियौ न जाइ ।
सूर स्याम हँसि-हँसि जुबतिनि सौं, ऐसी कहत बनाइ ॥१३१॥

तुमहिं बिना मन धिक अरु धिक घरु ।
तुमहिं बिना धिक-धिक माता पितु, धिक कुल-कानि, लाज, डरु ।
धिक सुत पति, धिक जीवन जग कौ, धिक तुम बिनु संसार ।
धिक सौ दिवस, पहर, घटिका, पल जो बिनु नंद-कुमार ।
धिक धिक स्रवन कथा बिनु हरि कै, धिक लोचन बिनु रूप ।
सूरदास प्रभु तुम बिनु घर ज्यौं, बन भीतर के कूप ॥१३२॥

रीती मटुकी सीस धरैं ।
बन की घर की सुरति न काहूँ, लेहु दही या कहति फिरैं ।
कबहुँक जाति कुंज भीतर कौं, तहाँ स्याम की सुरति करैं ।
चौंकि परतिं, कछु तन सुधि आवति, जहाँ तहाँ सुख सुनति ररैं ।
तब यह कहतिं कहीं मैं इनसौं, भ्रमि भ्रमि बन मैं वृथा मरैं ।
सूर स्याम कैं रस पुनि छाकतिं, वैसें हीं ढंग बहुरि ढरैं ॥१३३॥

तरुनी स्याम-रस मतवारि ।
प्रथम जोबन-रस चढ़ायौ, अतिहि भई खुमारि ।
दूध नहिं दधि नहीं, माखन नहीं रीतौ माट ।
महा-रस अँग-अंग पूरन, कहाँ घर, कहँ बाट ।

मातु-पितु गुरुजन कहाँ के, कौन पति को नारि।
सूर प्रभु कैं प्रेम पूरन, छकि रहीं ब्रजनारि ॥१३४॥

कोउ माई लैहै री गोपालहिं।
दधि कौ नाम स्यामसुंदर-रस, बिसरि गयौ ब्रज-बालहिं।
मटुकी सीस, फिरति ब्रज-बीथिनि, बोलति बचन रसालहिं।
उफनत तक्र चहूँ दिसि चितवत, चित लाग्यौ नँद-लालहिं।
हँसति, रिसाति, बुलावति, बरजति, देखहु इनकी चालहिं।
सूर स्याम बिनु और न भावै, या बिरहिनि बेहालहिं ॥१३५॥

गोपिका अनुराग

लोक-सकुच कुल-कानि तजो।
जैसें नदी सिंधु कौं धावै, वैसेहिं स्याम भजी।
मातु-पिता बहु त्रास दिखायौ, नैकुँ न डरी, लजी।
हारि मानि बैठे, नहिं लागति, बहुतै बुद्धि सजी।
मानत नहीं लोक मरजादा, हरि कैं रङ्ग मजी।
सूर स्याम कौं मिलि, चूनौ-हरदी ज्यौं रँजी ॥१३६॥

कहा कहति तू मोहिं, री माई।
नँद-नंदन मन हरि लियौ मेरौ, तब तैं मोकौं कछु न सुहाई।
अब लौं नहिं जानति मैं को ही, कब तैं तू मेरैं ढिग आई।
कहाँ गेह, कहँ मातु-पिता हैं, कहाँ सजन, गुरुजन कहँ भाई।
कैसी लाज, कानि है कैसी, कहा कहति ह्वै ह्वै रिसहाई ?
अब तौ सूर भजी नँद-लालहिं, की लघुता की होइ बड़ाई ॥१३७॥

मेरे कहे मैं कोउ नाहिं।
कहा कहौं, कछु कहि न आवै, नैकहुँ न डराहिं।
नैन ये हरि-दरस-लोभी, स्रवन सब्द-रसाल।
प्रथमहीं बन गयौ तन तजि, तब भई बेहाल।
इन्द्रियनि पर भूप मन है, सबनि लियौ बुलाइ।
सूर प्रभु कौं मिले सब ये, मोहिं करि गए बाइ ॥१३८॥

अब तौ प्रगट भई जग जानी।
वा मोहन सौं प्रीति निरन्तर, क्यौंऽब रहैगी छानी।
कहा करौं सुन्दर मूरति, इन नैननि माँझ समानी।
निकसति नहीं बहुत पचि हारी, रोम-रोम अरुझानी।



अब कैसें निरवारि जाति है, मिली दूध ज्यौं पानी।
सूरदास प्रभु अन्तरजामी, उर अन्तर की जानी ।।१३९।।

सखि मोहिं हरिदरस रस प्याइ।
हौं रँगो अब स्याम-मूरति, लाख लोग रिसाइ।
स्याम सुन्दर मदन मोहन, रंग-रूप सुभाइ।
सूर स्वामी-प्रीति-कारन, सोस रहौ कि जाइ।।१४०।।

नन्दलाल सौं मेरौ मन मान्यौ, कहा करैगौ कोउ।
मैं तौ चरन-कमल लपटानी, जो भावै सो होउ।
बाप रिसाइ, माइ घर मारै, हँसैं बिराने लोग।
अब तौ स्यामहिं सौं रति बाढ़ी, बिधना रच्यौ सँजोग।
जाति महति पति जाइ न मेरी, अरु परलोक नसाइ।
गिरिधर बर मैं नैंकु न छाँड़ौं, मिली निसान बजाइ।
बहुरि कबहिं यह तन धरि पैहौं, कहँ पुनि श्रीबनवारि।
सूरदास स्वामी कैं ऊपर, यह तन डारौं वारि।।१४१।।

करन दै लोगनि कौं उपहास।
मन क्रम बचन नंद-नंदन कौ, नैंकु न छाड़ौं पास।
सब या ब्रज के लोग चिकनियाँ, मेरे भाऐं घास।
अब तौ यहै बसी री माई, नहिं मानौं गुरु त्रास।
कैसें रह्यौ परै री सजनी, एक गाँव कै बास।
स्याम मिलन की प्रीति सखी री, जानत सूरजदास ।।१४२।।

एक गाउँ कै बास बसी हौं, कैसें धीर धरौं।
लोचन-मधुप अटक नहिँ मानत, जद्यपि जतन करौं।
वै इहिं मग नित प्रति आवत हैं, हौं दधि लै निकरौं।
पुलकित रोम-रोम, गदगद सुर, आनँद उमँग भरौं।
पर अन्तर चलि जात, कलप बर, बिरहा अनल जरौं।
सूर सकुच कुल-कानि कहाँ लगि, आरज-पथहिँ डरौं ।।१४३।।

हौं संग साँवरे के जैहौं।
होनी होइ होइ सो अबहीं, जस अपजस काहूँ न डरैहौं।
कहा रिसाइ करे कोउ मेरौ, कछु जो कहै प्रान तिहिं दैहौं।
दैहौं त्यागि राखिहौं यह व्रत, हरि-रति बीज बहुरि कब बैहौं।

का यह सूर अचिर अवनी, तनु तजि अकास पिय-भवन समैहौं।
का यह ब्रज-बापी क्रीड़ा जल, भजि नँद-नंद सबै सुख लैहौं ॥१४४॥

रूप-वर्णन

देखौ माई सुन्दरता कौ सागर।
बुधि-बिबेक बल पार न पावत, मगन होत मन नागर।
तनु अति स्याम अगाध अंबु-निधि, कटि पट पीत तरंग।
चितवत चलत अधिक रुचि उपजत, भँवर परति सब अंग।
नैन-मीन, मकराकृत कुंडल, भुज सरि सुभग भुजंग।
मुक्ता-माला मिलीं मानौ द्वै, सुरसरि एकै संग।
कनक खचित मनिमय आभूषण, मुख, स्रम-कन सुख देत।
जनु जल-निधि मथि प्रकट कियौ ससि, श्री अरु सुधा समेत।
देखि सरूप सकल गोपी जन, रहीं बिचारि-बिचारि।
तदपि सूर तरि सकीं न सोभा, रहीं प्रेम पचि हारि ॥१४५॥

स्याम भुजनि की सुन्दरताई।
चन्दन खौरि अनूपम राजति, सो छवि कही न जाई।
बड़े बिसाल जानु लौं परसत, इक उपमा मन आई।
मनौ भुजंग गगन तैं उतरत, अधमुख रह्यौ झुलाई।
रत्न-जटित पहुँची कर राजति, अँगुरी सुन्दर भारी।
सूर मनौ फनि-सिर मनि सोभित, फन-फन की छबि न्यारी ॥१४६॥

स्याम-अंग जुवती निरखि भुलानी।
कोउ निरखति कुंडल की आभा, इतनेहिं माँझ बिकानी।
ललित कपोल निरखि कोउ अटकी, सिथिल भई ज्यौं पानी।
देह-गेह की सुधि नहिं काहूँ, हरषत कोउ पछितानी।
कोउ निरखति रही ललित नासिका, यह काहू नहिं जानी।
कोउ चकित भइ दसन-चमक पर, चकचौंधी अकुलानी।
कोउ निरखति दुति चिबुक चारु की, सूर तरुनि बिततानी ॥१४७॥

मैं बलि जाउँ स्याम-मुख-छबि पर।
बलि-बलि जाउँ कुटिल कच बिथुरे, बलि-बलि भृकुटी ललाट पर।
बलि-बलि जाउँ चारु अवलोकनि, बलि-बलि कुंडल-रबि को।

बलि-बलि जाउँ नासिका सुललित, बलिहारी वा छबि की।
बलि-बलि जाउँ अरुन अधरनि की, बिद्रुम-बिंब लजावन।
मैं बलि जाउँ दसन चमकनि की, बारौं तड़ितनि सावन।
मैं बलि जाउँ ललित ठोड़ी पर, बलि मोतिन की माल।
सूर निरखि तन-मन बलिहारौं, बलि बलि जसुमति-लाल ॥१४८॥

नटवर वेष धरे ब्रज आवत।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, कुटिल अलक मुख पर छबि पावत।
भृकुटी विकट नैन अति चंचल, इहिं छबिपर उपमा इक धावत।
धनुष देखि खंजन विधि डरपत, उड़ि न सकत उड़िबै अकुलावत।
अधर अनूप मुरलि-सुर पूरत, गौरी राग अलापि बजावत।
सुरभी-वृन्द गोप-बालक-सँग, गावत अति आनन्द बढ़ावत।
कनक-मेखला कटि पीतांबर, निर्तत मन्द-मन्द सुर गावत।
सूर-स्याम-प्रनि-अंग-माधुरी, निरखत ब्रज-जन कैं मन भावत ॥१४९॥

आवत मोहन धेनु चराए।
मोर मुकुट सिर, उर बनमाला, हाथ लकुट गोरज लपटाए।
कटि काछनी किंकिन-धुनि बाजति, चरन चलत नूपुर रव लाए।
ग्वाल-मंडली मध्य स्यामघन, पीत बसन दामिनहिं लजाए।
गोप सखा आवत गुन गावत, मध्य स्याम हलधर छबि छाए।
सूरदास प्रभु असुर सँहारे, ब्रज आवत मन हरष बढ़ाए ॥१५०॥

उपमा हरि-तनु देखि लजानी।
कोउ जल मैं, कोउ बननि रहीं दुरि, कोउ कोउ गगन समानी।
मुख निरखत ससि गयौ अम्बर कौं, तड़ित दसन-छबि हेरि।
मीन कमल कर-चरन नयन डर, जल मैं कियौ बसेरि।
भुजा देखि अहिराज लजाने, बिबरन पैठे धाइ।
कटि निरखत केहरि डर मान्यौ, वन-बन रहे दुराइ।
गारी देहिं कबिनि कैं बरनत, श्री-अँग पटतर देत।
सूरदास हमकौं सरमावत, नाउँ हमारौ लेत ॥१५१॥

स्याम सुख-रासि, रस-रासि भारी।
रूप की रासि, गुन-रासि, जोबन-रासि, थकित भईं निरखि नव तरुन नारी।
सील की रासि, जस-रासि, आनँद रासि, नील नव-जलद छबि बरनकारी।
दया की रासि, विद्या-रासि, बल-रासि, निर्दयारति दनुकुल-प्रहारी।

चतुराई-रासि, छल-रासि, कल-रासि, हरि भजै जिहिँ हेत तिहिँ देन हारी।
सूर-प्रभु स्याम सुख-धाम पूरन काम,बसन-कटि-पीत मुख मुरलीधारी।।१५२।।

स्याम-कमल-पद-नख की सोभा।

जे नख-चंद्र इन्द्र-सर परसे, सिव बिरंचि मन लोभा।
जे नख-चंद्र सनक मुनि ध्यावत, नहिँ पावत भरमाहीँ।
ते नख-चंद्र प्रकट ब्रज-जुवती, निरखि निरखि हरषाहीँ।
जे नख-चंद्र फनिंद-हृदय तैँ, एकौ निमिष न टारत।
जे नख-चंद्र महामुनि नारद, पलक न कहूँ बिसारत।
जे नख-चंद्र-भजन खल नासत, रमा हृदय जे परसति।
सूर स्याम-नख-चंद्र बिमल छबि, गोपीजन मिलि दरसति।।१५३।।

स्याम-हृदय जल-सुत की माला, अतिहिँ अनूपम छाजै (री)।
मनहुँ बलाकपाँति नवधन पर, यह उपमा कछु भ्राजै (री)।
पीत, हरित, सित, अरुन मालबन, राजति हृदय बिसाल(री)।
मानहुँ इन्द्रधनुष नभमंडल, प्रगट भयौ तिहिँ काल (री)।
भृगु पद-चिन्ह उरस्थल प्रगटे,कौस्तुभ मनि ढिग दरसत (री)।
बैठे मानौ षट बिधु एक सँग, अर्द्ध निसा मिलि हरषत (री)।
भुजा बिसाल स्याम सुन्दर की, चन्दन खौरि चढ़ाये (री)।
सूर सुभग अँग-अँग की सोभा, ब्रज-ललना ललचाए (री) ।।१५४।।

मुख पर चंद डारौँ वारि।

कुटिल कच पर भौँर वारौँ, भौँह पर धनु वारि।
भाल-केसरि-तिलक छवि पर, मदन-सर सत वारि।
मनु चली बहि सुधा- धारा, निरखि मन द्यौँ वारि।
नैन सुरसति-जमुन-गंगा, उपम डारौँ वारि।
मीन खंजन मृगज वारौँ, कमल के कुल वारि।
निरखि कुंडल तरनि वारौँ, कूप स्रवननि वारि।
झलक ललित कपोल-छवि पर, मुकुट सत-सत वारि।
नासिका पर कीर वारौँ, अधर बिद्रुम वारि।
दसन पर कन-बज्र वारौँ, बीज दाड़िम वारि।
चिबुक पर चित-बित्त धारौँ, प्रान डारौँ वारि।
सूर हरि की अंग-सोभा, को सकै निरवारि।।१५५।।

नेत्र अनुराग

नैन न मेरे हाथ रहे।
देखत दरस स्याम सुन्दर कौं, जल की ढरनि बहे।
वह नीचे कौं धावत आतुर, वैसेहिं नैन भए।
वह तो जाइ समात उदधि मैं, ये प्रति अंग रए।
यह अगाध कहुँ वार पार नहिं, येउ सोभा नहिं पार।
लोचन मिले त्रिवेनी ह्वै कै, सूर समुद्र अपार ॥१५६॥

इन नैननि मोहिं बहुत सतायौ।
अब लौं कानि करी मैं सजनी, बहुतै मूँड़ चढ़ायौ।
निदरे रहत गहे रिस मोसौं, मोहिं दोष लगायौ।
लूटत आपुन श्री-अँग-सोभा, ज्यौं निधनी धन पायौ।
निसिहूँ दिन ये करत अचगरी, मनहिं कहा धौं आयौ।
सुनहु सूर इनकौं प्रतिपालत, आलस नैंकु न लायौ ॥१५७॥

नैन करैं सुख, हम दुख पावैं।
ऐसौ को पर-बेद न जानै, जासौं कहि जु सुनावैं।
तातैं मौन भलौ सबही तैं, कहि कै मान गँवावैं।
लोचन, मन,इंद्री हरि कौं भजि,तजि हमकौं सुख पावैं।
वै तौ गए आपने कर तैं, वृथा जीव भरमावैं।
सूर स्याम हैं चतुर सिरोमनि, तिनसौं भेद जनावैं ॥१५८॥

ऐसे आपु स्वारथी नैन।
अपनोइ पेट भरत हैं निसि-दिन, और न लैन न दैन।
वस्तु अपार परी ओछैं कर, ये जानत घटि जैहैं।
कौ इनसैं समुझाइ कहै यह, दीन्है हीं अधिकैहैं।
सदा नहीं रैहैं अधिकारी, नाउँ राखि जौ लेते।
सूर स्याम सुख लूटैं आपुन, औरनि हूँ कौं देते ॥१५९॥

नैन भए बस मोहन तैं।
ज्यौं कुरंग बस होत नाद के, टरत नहीं ता गोहन तैं।
ज्यौं मधुकर बस कमल-कोस के, ज्यौं बस चंद चकोर।
तैसेंहि ये बस भए स्याम के, गुड़ी-बस्य ज्यौं डोर।
ज्यौं बस स्वाँति-बूँद कै चातक, ज्यौं बस जल के मीन।
सूरज-प्रभु के बस्य भए ये, छिनु-छिनु प्रीति नवीन ॥१६०॥

तब तैं नैन रहे इकटकहीं।
जब तैं दृष्टि परे नँद-नंदन, नैंकु न अंत मटकहीं।
मुरली धरे अरुन अधरनि पर, कुंडल झलक कपोल।
निरखत इकटक पलक भुलाने, मनौ बिकाने मोल।
हमकौं वै काहैं न बिसारैं, अपनी सुधि उन नाहिं।
सूर स्याम- छवि-सिंधु सामने, वृथा तरुनि पछिताहिं ।।१६१।।

नैननि सौं झगरौ करिहौं री।
कहा भयौ जौ स्याम-संग हैं, बाँह पकरि सम्मुख लरिहौं री।
जन्महिं तैं प्रतिपालि गड़े किये, दिन-दिन कौ लेखौ करिहौं री।
रूप-लूट कीन्ही तुम काहैं, अपने बाँटे कौं धरिहौं री।
एक मातु पितु भवन एक रहे, मैं काहैं उनकौं डरिहौं री।
सूर अंस जौ नहीं देहिगे, उनके रँग मैं हूँ ढरिहौं री ।।१६२।।

कपटी नैननि तैं कोउ नाहीं।
घर कौ भेद और के आगैं, क्यौं कहिबे कौं जाहीं।
आपु गए निधरक ह्वै हमतैं, बरजि-बरजि पचिहारी।
मनकाँमना भई परिपूरन, ढरि रीझे गिरिधारी।
इनहिं बिना वे, उनहिं बिना ये, अंतर नाहीं भावत।
सूरदास यह जुग की महिमा, कुटिल तुरत फल पावत ।।१६३।।

नैना घूँघट मैं न समात।
सुन्दर बदन नन्द-नन्दन कौ, निरखि-निरखि न अघात।
अति रस लुब्ध महा मधु लम्पट, जानत एक न बात।
कहा कहौं दरसन-सुख माते, ओट भएँ अकुलात।
बार-बार बरजत हौं हारी, तऊ टेव नहिं जात।
सूर तनक गिरिधर बिनु देखै, पलक कलप सम जात ।।१६४।।

ये नैना मेरे ढीठ भए री।
घूँघट-ओट रहत नहिं रोकैं, हरि-मुख देखत लोभि गए री।
जउ मैं कोटि जतन करि राखे, पलक-कपाटनि मूँदि लए री।
तउ ते उमँगि चले दोउ हठ करि, करौं कहा मैं जान दए री।
अतिहिं चपल, बरज्यौ नहिं मानत, देखि बदन तन फेरि नए री।
सूर स्यामसुंदर-रस अटके, मानहुँ लोभी उहँह छए री ।।१६५।।

अँखियाँ हरि कैं हाथ बिकानीं।
मृदु मुसुकानि मोल इनि लीन्ही, यह सुनि सुनि पछितानीं।
कैसैं रहति रहीं मेरैं बस, अब कछु औरै भाँति।
अब वै लाज मरतिं मोहिं देखत, बैठीं मिलि हरि-पाँति।
सपने की सी मिलनि करति हैं, कब आवतिं कब जातिं।
सूर मिलीं ढरि नँद-नन्दन कौं, अनत नहीं पतियातिं ॥१६६॥

अँखियन तब तैं बैर धरचौ।
जब हम हटकी हरि-दरसन कौं, सो रिस नहिं बिसरचौ।
तबहीं तैं उनि हमहिं भुलायौ, गईं उतहिं कौं धाइ।
अब तौ तरकि तरकि ऐंठति हैं; लेनी लेतिं बनाइ।
भईं जाइ वै स्याम-सुहागिनि, बड़भागिनि कहवावैं।
सूरदास वैसी प्रभुता तजि, हम पै कब वै आवैं ॥१६७॥

———

राधा-कृष्ण

प्रथम मिलन

खेलत हरि निकसे ब्रज-खोरी।
कटि कछनी पीतांबर बाँधे, हाथ लिये भौंरा, चक, डोरी।
मोर-मुकुट, कुंडल स्रवननि बर, दसन-दमक दामिनि-छबि छोरी।
गए स्याम रवि-तनया कैं तट, अंग लसति चन्दन की खोरी।
औचक ही देखी तहँ राधा, नैन बिसाल भाल दिये रोरी।
नील बसन फरिया कटि पहिरे, बेनी पीठि रुलति झकझोरी।
संग लरिकिनी चली इत आवति, दिन-थोरी, अति छबि तन-गोरी।
सूर स्याम देखत हीं रीझे, नैन-नैन मिलि परी ठगोरी ॥१॥

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज खोरी।
काहे कौं हम ब्रज-तन आवतिं, खेलति रहतिं आपनी पौरी।
सुनत रहतिं स्रवननि नँद-ढोटा, करत फिरत माखन-दधि-चोरी।
तुम्हरौ कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलौ संग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी ॥२॥

प्रथम सनेह दुहुँनि मन जान्यौ।
नैन नैन कीन्ही सब बातैं, गुप्त प्रीति प्रगटान्यौ।
खेलन कबहुँ हमारैं आवहु, नंद-सदन, ब्रज गाउँ।
द्वारैं आइ टेरि मोहिं लीजौ, कान्ह हमारौ नाउँ।
जौ कहियै घर दूरि तुम्हारौ, बोलत सुनियै टेरि।
तुमहिं सौंह बृषभानु बबा की, प्रात-साँझ इक फेरि।
सूधी निपट देखियत तुमकौं, तातैं करियत साथ।
सूर स्याम नागर-उत नागरि, राधा दोउ मिलि गाथ ॥३॥

गई बृषभानु-सुता अपने घर।
संग सखी सौं कहति चली यह, को जैहैं इनकैं दर।
बड़ी बेर भई जमुना आए, खीझति ह्वैहै मैया।
बचन कहति मुख, हृदय-प्रेम-दुख, मन हरि लियौ कन्हैया।

माता कहति कहाँ री प्यारी, कहाँ अबेर लगाई।
सूरदास तब कहति राधिका, खरिक देखि हौं आई ।।४।।

नंद गए खरिकहिं हरि लीन्हे।
देखी तहाँ राधिका ठाढ़ी, बोलि लिए तिहिं चीन्हे।
महर कह्यौ खेलौ तुम दोऊ, दूरि कहूँ जिनि जैहौ।
गनती करत ग्वाल गैयनि की, मोहिं नियरैं तुम रैहौ।
सुनि बेटी बृषभानु महर की, कान्हहिं लेइ खिलाइ।
सूर स्याम कौं देखे रहिहौ, मारै जनि कोउ गाइ ।।५।।

नन्द बबा की बात सुनौ हरि।
मोहिं छाँड़ि जौ कहूँ जाहुगे, ल्याऊँगी तुमकौं धरि।
भली भई तुम्हें सौंपि गए मोहिं, जान न दैहौं तुमकौं।
बाँह तुम्हारी नैंकु न छाँड़ौं, महर खीझिहैं हमकौं।
मेरी बाँह छाँड़ि दै राधा, करत उपरफट बातैं।
सूर स्याम नागर, नागरि सौं, करत प्रेम की घातैं ।।६।।

खेलन कैं मिस कुँवरि राधिका, नंद-महरि कैं आई (हो)।
सकुच सहित मधुरे करि बोली, घर हौ कुँवर कन्हाई (हो)।
सुनत स्याम कोकिल सम बानी, निकसे अति अतुराई (हो)।
माता सौं कछु करत कलह हे, रिस डारी बिसराई (हो)।
मैया री तू इनकौं चीन्हति, बारम्बार बताई (हो)।
जमुना-तीर काल्हि मैं भूल्यौ, बाँह पकरि लै आई (हो)।
आवति इहाँ तोहिं सकुचति है, मैं दै सौंह बुलाई (हो)।
सूर स्याम ऐसे गुन-आगर, नागरि बहुत रिझाई (हो) ।।७।।

नाम कहा तेरौ री प्यारी।
बेटी कौन महर की है तू, को तेरी महतारी।
धन्य कोख जिहिं तोकौं राख्यौ, धनि घरि जिहिं अवतारी।
धन्य पिता माता तेरे, छबि निरखति हरि-महतारी।
मैं बेटी बृषभानु महर की, मैया तुमकौं जानतिं।
जमुना-तट बहु बार मिलन भयौ, तुम नाहिंन पहिचानतिं।
ऐसी कहि, वाकौं मैं जानति, वह तो बड़ी छिनारि।
महर बड़ौ लंगर सब दिन कौ, हँसति देति मुख गारि।

राधा बोलि उठी, बाबा कछु, तुमसौं ढोठौ कीन्हौ।
ऐसे समरथ कब मैं देखे, हँसि प्यारिहिं उर लीन्हौ।
महरि कुँवरि सौं यह कहि भाषति, आउ करौं तेरी चोटी।
सूरदास हरषित नँदरानी, कहति महरि हम जोटी ॥८॥

जसुमति राधा कुँवरि सँवारति।
बड़े बार सीमंत सीस के, प्रेम सहित निरुवारति।
माँग पारि बेनी जु सँवारति, गूँथी सुन्दर भाँति।
गोरैं भाल बिंदु बंदन, मनु इन्दु प्रात-रवि काँति।
सारी चीरि नई फरिया लै, अपने हाथ बनाइ।
अंचल सौं मुख पोंछि अंग सब, आपुहि लै पहिराइ।
तिल, चाँवरी, बतासे, मेवा, दियौ कुँवरि की गोद।
सूर स्याम-राधा तनु चितवत, जसुमति मन-मन मोद ॥९॥

बूझति जननि कहाँ हुती प्यारी।
किन तेरे भाल तिलक रचि कीनौ, किहिं कच गूँदि माँग सिर पारी।
खेलत रही नंद कैं आँगन, जसुमति कही कुँवरि ह्याँ आ री।
मेरौ नाउँ बूझि बाबा कौ, तेरौ बूझि दई हँसि गारी।
तिल, चाँवरी गोद करि दीनी, फरिया दई फारि नव सारी।
मो तन चितै, चितै ढोटा-तन, कछु सविता सौं गोद पसारी।
या सुनि कै बृषभानु मुदित चित, हँसि-हँसि बूझत बात दुलारी।
सूर सुनत रस-सिन्धु बढ़्यौ अति, दम्पति एकै बात बिचारी ॥१०॥

गारुड़ी कृष्ण

सखियनि मिलि राधा घर लाईं।
देखहु महरि सुता अपनी कौं, कहुँ इहिं कारैं खाई।
हम आगैं आवति, यह पाछैं, धरनि परी भहराई।
सिर तैं गई दोहनी ढरिकै, आपु रही मुरझाई।
स्याम-भुअंग डस्यौ हम देखत, ल्यावहु गुनी बुलाई।
रोवति जननि कंठ लपटानी, सूर स्याम गुन राई ॥११॥

नंद-सुवन गारुड़ी बुलावहु।
कह्यौ हमारौ सुनत न कोऊ, तुरत जाहु, लै आवहु।
ऐसौ गुनी नहीं त्रिभुवन कहुँ, हम जानतिं हैं नीकै।
आइ जाइ तौ तुरत जियावहिं, नैंकु छुवत उठै जी कै।

देखौ धौं यह बात हमारी, एकहि मन्त्र जिवावै।
नन्द महर कौ सुत सूरज जौ, कैसेहुँ ह्याँ लौ आवै ॥१२॥

महरि, गारुड़ी कुँवर कन्हाई।
एक बिटिनियाँ कारैं खाई, ताकौं स्याम तुरतहीं ज्याई।
बोलि लेहु अपने ढोटा कौं, तुम कहि कै देउ नैंकु पठाई।
कुँवरि राधिका प्रात खरिक गई, तहाँ कहूँ-धौं कारैं खाई।
यह सुनि महरि मनहिं मुसुक्यानी, अबहिं रही मेरैं गृह आई।
सूर स्याम राधहिं कछु कारन, जसुमति समुझि रही अरगाई ॥१३॥

तब हरि कौं टेरति नँदरानी।
भली भई सुत भयौ गारुड़ी, आजु सुनी यह बानी।
जननी-टेर सुनत हरि आए, कहा कहति री मैया ?।
कीरति महरि बुलावन आई, जाहु न कुँवर कन्हैया।
कहूँ राधिका कारैं खाई, जाहु न आवौ झारि।
जंत्र-मंत्र कछु जानत हौ तुम, सूर स्याम बनवारि ॥१४॥

हरि गारुड़ी तहाँ तब आए।
यह बानी वृषभानु सुता सुनि, मन-मन हरष बढ़ाए।
धन्य-धन्य आपुन कौं कीन्हौ, अतिहिं गई मुरझाई।
तन पुलकित रोमांच प्रगट भए, आनँद-अश्रु बहाइ।
बिह्वल देखि जननि भई ब्याकुल, अँग विष गयौ समाइ।
सूर स्याम-प्यारी दोउ जानत, अन्तरगत कौ भाइ ॥१५॥

रोवति महरि फिरति बिततानी।
बार-बार लै कंठ लगावति, अतिहिं सिथिल भई पानी।
नन्द सुवन कैं पाइ परी लै, दौरि महरि तब आइ।
ब्याकुल भई लाड़िली मेरी, मोहन देहु जिवाइ।
कछु पढ़ि-पढ़ि कर, अंग परस करि, विष अपनौ लियौ झारि।
सूरदास-प्रभु बड़े गारुड़ी, सिर पर गाड़ू डारि ॥१६॥

लोचन दए कुँवरि उघारि।
कुँवर देख्यौ नन्द कौ तब, सकुची अंग सम्हारि।
बात बूझति जननि सौं री, कहा है यह आज।
मरत तैं तू बची प्यारी, करति है कह लाज।

तब कहति तोहिँ कारैं खाई, कछु न रहि सुधि गात।
सूर प्रभु तोहिँ ज्याइ लीन्ही, कही कुँवरि सौं मात ॥१७॥

बड़ौ मंत्र कियौ कुँवर कन्हाई।
बार-बार लै कंठ लगायौ, मुख चूम्यौ दियौ घरहिँ पठाई।
धन्य कोषि वह महरि जसोमति, जहाँ अवतरयौ यह सुत आई।
ऐसौ चरित तुरतहीं कीन्हौं, कुँवरि हमारी मरी जिवाई।
मनहीं मन अनुमान कियौ यह, बिधिना जोरी भली बनाई।
सूरदास प्रभु बड़े गारुड़ी, ब्रज घर-घर यह घैरु चलाई ॥१८॥

सम्बन्ध रहस्य

तुम सौं कहा कहौं सुन्दर घन।
या ब्रज मैं उपहास चलत है, सुनि सुनि स्रवन रहति मनहीं मन।
जा दिन सबनि पछारि, नोइ करि, मोहिं दुहि दई धेनु बंसीबन।
तुम गही बाँह सुभाइ आपनैं, हौं चितई हँसि नैंकु बदन-तन।
ता दिन तैं घर मारग जित तित, करत चवाव सकल गोपीजन।
सूर-स्याम अब साँच पारिहौं, यह पतिब्रत तुम सौं नँद-नंदन ॥१९॥

स्याम यह तुमसौं क्यौं न कहौं।
जहाँ तहाँ घर घर कौ घैरा, कौनी भाँति सहौं।
पिता कोपि करवाल गहत कर, बंधु बधन कौं धावै।
मातु कहै कन्या कुल कौ दुख, जनि कोऊ जग जावै।
बिनती एक करौं कर जोरे, इनि बीधिन जनि आवहु।
जौ आवहु तौ मुरलि-मधुर-धुनि, मो जनि कान सुनावहु।
मन क्रम बचन कहति हौं साँची, मैं मन तुमहिँ लगायौ।
सूरदास-प्रभु अन्तरजामी, क्यौं न करौ मन भायौ ॥२०॥

हँसि बोले गिरिधर रस-बानी।
गुरजन खिझैं कतहिँ रिस पावति, काहे कौं पछतानी।
देह धरे कौ धर्म यहै है, स्वजन कुटुंब गृह-प्रानी।
कहन देहु, कहि कहा करैंगे, अपनी सुरत हिरानी ?।
लोक लाज काहे कौं छाँड़ति, ब्रजहीं बसैं भुलानी।
सूरदास घट द्वै हैं, मन इक, भेद नहीं कछु जानी ॥२१॥

ब्रज बसि काके बोल सहौं।
तुम बिनु स्याम और नहिँ जानौं, सकुचि न तुमहिँ कहौं।

कुल की कानि कहा लै करिहौं, तुमकौं कहाँ लहौं।
धिक माता, धिक पिता बिमुख तुव, भावै तहाँ बहौं।
कोउ कछु करै, कहै कछु कोऊ, हरष न सोक गहौं।
सूर स्याम तुमकौं बिनु देखैं, तनु मन जीव दहौं ॥२२॥

ब्रजहिं बसैं आपुहिं बिसरायौ।
प्रकृति पुरुष एकहि करि जानहु, बातनि भेद करायौ।
जल थल जहाँ रहौं तुम बिनु नहिं, बेद उपनिषद गायौ।
द्वै-तन जीव-एक हम दोऊ, सुख-कारन उपजायौ।
ब्रह्म-रूप द्वितिया नहिं कोऊ, तब मन तिया जनायौ।
सूर स्याम-मुख देखि अलप हँसि, आनँद-पुंज बढ़ायौ ॥२३॥

तब नागरि मन हरष भई।
नेह पुरातन जानि स्याम कौ, अति आनंद-भई।
प्रकृति पुरुष, नारी मैं वै पति, काहैं भूलि गई।
को माता, को पिता, बंधु को, यह तो भेंट नई।
जन्म-जन्म, जुग-जुग यह लीला, प्यारी जानि लई।
सूरदास प्रभु की यह महिमा, यातैं बिबस भई ॥२४॥

देह धरे कौ कारन सोई।
लोक-लाज कुल-कानि तजियै, जातैं भलौ कहै सब कोई।
मातु पिता के डर कौं मानै, मानै सजन कुटुंब सब लोई।
तात मातु मोहूँ कौं भावत, तन धरि कै माया-बस होई।
सुनि बृषभानु-सुता मेरी बानी, प्रीति पुरातन राखहु गोई।
सूर स्याम नागरिहिं सुनावत, मैं तुम एक नाहिं हैं दोई ॥२५॥

राधा-सखी सम्वाद

घरहिं जाति मन हरष बढ़ायौ।
दुख डारचौ, सुख अंग भार भरि, चली लूट सौ पायौ।
भौंह सकोरति चलति मंद गति, नैंकु बदन मुसुकायौ।
तहँ इक सखी मिली राधा कौं, कहति भयौ मन भायौ।
कुंज-सुवन हरि-संग बिलस रस, मन कौ सुफल करायौ।
सूर सुगन्ध चुरावनहारौ, कैसैं दुरत दुरायौ ॥२६॥

मोसौं कहा दुरावति राधा।
कहाँ मिली नँद-नंदन कौं, जिनि पुरई मन की साधा।

ब्याकुल भई फिरति हो अबहीं, बाग-बिथा तनु बाधा।
पुलकित रोम रोम गद गद, अब अँग अँग रूप अगाधा।
नहिं पावत जो रस जोगी जन, जप तप करत समाधा।
सुनहु सूर तिहिं रस परिपूरन, दूरि कियौ तनु दाधा ॥२७॥

स्याम कौन कारे की गोरे।

कहाँ रहत काके पै ढोटा, वृद्ध, तरुन की धौं हैं भोरे।
इहँई रहत कि और गाउँ कहुँ, मैं देखे नाहिँन क़हुँ उनकौं।
कहै नहीं समुझाइ बात यह, मोहिं लगावति हौ तुम जिनकौं।
कहाँ रहौं मैं, वै धौं कहँकै, तुम मिलवति हौ काहैं ऐसी।
सुनहु सूर मोसी भोरी कौं, जोरि जोरि लावति हौ कैसी ॥२८॥

सुनहु सखी राधा की बातैं।

मोसौं कहति स्याम हैं कैसे, ऐसी मिलई घातैं।
की गोरे, की कारे-रँग हरि, की जोबन, की भोरे।
की इहिं गाउँ बसत, की अनतहिं, दिननि बहुत की थोरे।
की तू कहति बात हँसि मोसौं, की बूझति सति-भाउ।
सपनैं हूँ उनकौं नहिं देखे, वाके सुनहु उपाउ।
मोसौं कही कौन तोसी प्रिय, तोसौं बात दुरैहौं।
सूर कही राधा मो आगैं, कैसैं मुख दरसैहौं ॥२९॥

राधे तेरौ बदन बिराजत नीकौ।

जब तू इत-उत बंक बिलोकति, होत निसा-पति फीकौ।
भृकुटी धनुष, नैन सर साँधे, सिर केसरि कौ टीकौ।
मनु-घूँघट-पट मैं दुरि बैठ्यौ, पारधि रति-पतिही कौ।
गति मैमंत नाग ज्यौं नागरि, करे कहति हौं लीकौ।
सूरदास-प्रभु बिबिध भाँति करि, मन रिझयौ हरि पी कौ ॥३०॥

काकौ काकौ मुख माई बातनि कौं गहियै।

पाँच की सात लगायौ, झूठी-झूठी कै बनायौ, साँची जौ तनक होई, तौलौं सब सहियै।
बातनि गह्यौ अकास, सुनत न आवै साँस, बोलि तौ कछू न आवै, तातैं मौन गहियै।
ऐसैं कहैं नर नारि, बिना भीति चित्रकारि, काहे कौं देखे मैं कान्ह, कहा कहौ कहियै।

घर घर यहै घैर, बृथा मोसौं करैं बैर, यह सुनि स्त्रौन,
हिरदय दहिए ।
सूरदास बरु उपहास होइ सिर मेरैं, नंद कौ सुवन मिलै, तो पै
कहा चहियै ।।३१।।

कैसे हैं नँद-सुवन कन्हाई ।
देखे नहीं नैन भरि कबहूँ, ब्रज मैं रहत सदाई ।
सकुचति हौं इक बात कहति तोहिं, सो नहिं जाति सुनाई ।
कैसैंहुँ मोहिं दिखावहु उनकौं, यह मेरैं मन आई ।
अतिहीं सुंदर कहियत हैं वै, मोकौं देहु बताई ।
सूरदास राधा की बानी, सुनत सखी भरमाई ।।३२।।

सुनहु सखी राधा की बानी ।
ब्रज बसि हरि देखे नहिं कबहूँ, लोग कहत कछु अकथ कहानी ।
यह अब कहत दिखावहु हरि कौं, देखहु री यह अचिरज मानी ।
जो हम सुनति रही सो नाहीं, ऐसैं ही यह बायु बहानी ।
ज्वाब न देत बनै काहू सौं, मन मैं यह काहू नहिं मानी ।
सूर सबै तरुनी मुख चाहतिं, चतुर-चतुर सौं चतुरई ठानी ।।३३।।

सुनि राधे तोहिं स्याम दिखैहैं ।
जहाँ तहाँ ब्रज-गलिनि फिरत हैं, जब इहिं मारग ऐहैं ।
जबहीं हम उनकौं देखैंगी, तबहीं तोहिं बुलैहैं ।
उनहूँ कैं लालसा बहुत यह, तोहिं देखि सुख पैहैं ।
दरसन तैं धीरज जब रैहै, तब हम तोहिं पत्यैहैं ।
तुमकौं देखि स्याम सुन्दर घन, मुरली मधुर बजैहैं ।
तनु त्रिभंग करि अंग अंग सौं, नाना भाव जनैहैं ।
सूरदास-प्रभु नवल कान्ह बर, पीतांबर फहरैहैं ।।३४।।

माता की सीख

काहे कौं पर-घर छिनु-छिनु जाति ।
घर मैं डाँटि देति सिख जननी, नाहिंन नैंकु डराति ।
राधा-कान्ह कान्ह राधा ब्रज, ह्वै रह्यौ अतिहि लजाति ।
अब गोकुल की जैबौ छाँड़ौ, अपजस हू न अघाति ।
तू बृषभानु बड़े की बेटी; उनकैं जाति न पाँति ।
सूर सुता समुझावति जननी, सकुचति नहिं मुसुकाति ।।३५।।

खेलन कौं मैं जाउं नहीं ?
और लरिकिनी घर घर खेलति, मोहीं कौं पै कहति तुहीं ।
उनकैं मातु पिता नहिं कोई, खेलत डोलतिं जहीं तहीं ।
तोसी महतारी बहि जाइ न, मैं रैहौं तुमहीं बिनुहीं ।
कबहूँ मोकौं कछू लगावति, कबहूँ कहति जनि जाहु कहीं ।
सूरदास बातैं अनखौहीं, नाहिंन मो पै जाति सही ।।३६।।

मनहीं मन रीझति महतारी ।
कहा भई जौ बाढ़ि तनक गई, अबहीं तौ मेरी है बारी ।
झूठैं हीं यह बात उड़ी है, राधा-कान्ह कहत नर नारी ।
रिस की बात सुता के मुख की, सुनत हँसति मनहीं मन भारी ।
अब लौं नहीं कछू इहिं जान्यौ, खेलत देखि लगावैं गारी ।
सूरदास जननी उर लावति, मुख चूमति पोंछति रिस टारी ।।३७।।

सुता लए जननी समुझावति ।
संग बिटिनिअनि कैं मिलि खेलौ, स्याम-साथ सुनि-सुनि रिस पावति ।
जातैं निंदा होइ आपनी, जातैं कुल कौं गारी आवति ।
सुनि लाड़लो कहति यह तोसैं, तोको यातैं रिस करि धावति ।
अब समुझी मैं बात सबनि की, झूठैं ही यह बात उड़ावति ।
सूरदास सुनि सुनि ये बातैं, राधा मन अति हरष बढ़ावति ।।३८।।

राधा बिनय करत मनहीं मन, सुनहु स्याम अंतर के जामी ।
मातु-पिता कुल-कानिहिं मानत, तुमहिं न जानत हैं जग स्वामी ।
तुम्हारौ नाउ लेत सकुचत हैं, ऐसैं ठौर रही हौं आनी ।
गुरु परिजन की कानि मानियौ, बारंबार कही मुख बानी ।
कैसे संग रहौं बिमुखनि कैं, यह कहि-कहि नागरि पछितानी ।
सूरदास-प्रभु कैं हिरदै धरि, गृह-जन देखि-देखि मुसुकानी ।।३९।।

कृष्ण-दर्शन

राधा जल बिहरति सखियन संग ।
ग्रीव-प्रजंत नीर मैं ठाढ़ीं, छिरकति जल अपनैं अपनैं रंग ।
मुख भरि नीर परसपर डारतिं, सोभा अतिहिं अनूप बढ़ी तब ।
मनहु चंद-गन सुधा गँडूषनि, डारति हैं आनंद भरे सब ।

आईं निकसि जानु कटि लौं सब, अँजुरिन तैं लै लै जल डारतिं।
मानहु सूर कनक-बल्ली जुरि, अमृत-बूँद पवन-मिस झारतिं ॥४०॥

जमुना-जल बिहरति ब्रज-नारी।
तट ठाढ़े देखत नँद-नंदन, मधुरि मुरलि कर धारी।
मोर-मुकुट, स्रवननि मनि कुंडल, जलज-माल उर भाजत।
सुंदर सुभग स्याम तन नव घन, विच बग पाँति बिराजत।
उर बनमाल सुमन बहु भाँतिनि, सेत, लाल, सित पीत।
मनहुँ सुरसरी तट बैठे सुक, बरन बरन तजि भीत।
पीतांबर कटि तट छुद्रावलि, बाजति परम रसाल।
सूरदास मनु कनकभूमि ढिग, बोलत रुचिर मराल ॥४१॥

चितवनि रोकै हूँ न रही।
स्याम सुंदर सिंधु-सनमुख, सरित उमँगि बही।
प्रेम-सलिल-प्रवाह भँवरनि, मिति, न कबहुँ लही।
लोभ-लहर-कटाच्छ, घूँघट-पट-करार ढही।
थके पल पथि, नाव धीरज परति नहिँन गही।
मिली सूर सुभाव स्यामहिँ, फेरिहू न चही ॥४२॥

हमहिँ कह्यौ हौं स्याम दिखावहु।
देखहु दरस नैन भरि नीकैं, पुनि-पुनि दरस न पावहु।
बहुत लालसा करति रही तुम, वे तुम कारन आए।
पूरी साध मिली तुम उनकौं, यातैं हमहिँ भुलाए।
नीकैं सगुन आजु ह्याँ आईं, भयौ तुम्हारौ काज।
सुनहु सूर हमकौं कछु दैहौ, तुमहिँ मिले ब्रजराज ॥४३॥

राधा चलहु भवनहिँ जाहिँ।
कबहिँ की हम जमुना आई, कहहिँ अरु पछिताहिँ।
कियौ दरसन स्याम कौ तुम, चलौगी की नाहिँ।
बहुरि मिलिहौ चीन्हि राखहु, कहत, सब मुसुकाहिँ।
हम चलीं घर तुमहुँ आवहु, सोच भयौ मन माहिँ।
सूर राधा सहित गोपी, चलीं ब्रज-समुहाहिँ ॥४४॥

कहि राधा हरि कैसे हैं।
तेरैं मन भाए की नाहीं, को सुंदर, को नैसे हैं।

की पुनि हमहिँ दुराव करौगी, की कैहौ वै जैसे हैं।
की हम तुमसौं कहति रहीं ज्यों, साँच कहौ की तैसे हैं।
नटवर-वेष काछनी काछे, अंगनि रति-पति-सै से हैं।
सूर स्याम तुम नीकैं देखे, हम जानत हरि ऐसे हैं।।४५।।

स्याम सखि नीकैं देखे नाहिँ।
चितवत ही लोचन भरि आए, बार-बार पछिताहिँ।
कैसेहुँ करि इकटक मैं राखति, नैंकहिँ मैं अकुलाहिँ।
निमिष मनौं छवि पर रखवारे, तातैं अतिहिँ डराहिँ।
कहा करैं इनकौ कह दूषन, इन अपनी सी कीन्ही।
सूर स्याम-छवि पर मन अटक्यौ, उन सब सोभा लीन्ही।।४६।।

राधा का अनुराग

पुनि-पुनि कहति हैं ब्रज नारि।
धन्य बड़ भागिनी राधा, तेरैं बस गिरिधारि।
धन्य नंद-कुमार धनि तुम, धन्य तेरी प्रीति।
धन्य दोउ तुम नवल जोरी, कोक कलानि जीति।
हम विमुख, तुम कृष्ण संगिनी, प्रान इक, द्वै देह।
एक मन, इक बुद्धि, इक चित, दुहुँनि एक सनेह।
एक छिनु बिनु तुमहिँ देखैं, स्याम धरत न धीर।
मुरलि मैं तुम नाम पुनि पुनि, कहत हैं बलबीर।
स्याम मनि तैं परखि लीन्हौं, महा चतुर सुजान।
सूर के प्रभु प्रेमहीं बस, कौन तो सरि आन।।४७।।

राधा परम निर्मल नारि।
कहति हौं मन कर्मना करि, हृदय-दुविधा टारि।
स्याम कौं इक तुहीं जान्यौ, दुराचारिनि और।
जैसैं घट पूरन न डोलै, अध भरौ डगडौर।
धनी धन कबहूँ न प्रगटै, धरै ताहि छपाइ।
तैं महानग स्याम पायौ, प्रगटि कैसैं जाइ।
कहति हौं यह बात तोसौं, प्रगट करिहौं नाहिँ।
सूर सखी सुजान राधा, परसपर मुसुकाहिँ।।४८।।

तैं ही स्याम भले पहिचाने।
साँची प्रीति जानि मनमोहन, तेरेहिँ हाथ बिकाने।

हम अपराध कियौ कहि तुमसौं, हमहीं कुलटा नारि।
तुमसौं उनसौं बीच नहीं कछु, तुम दोऊ बर-नारि।
धन्य सुहाग भाग है तेरौ, धनि बड़भागी स्याम।
सूरदास-प्रभु से पति जाकैं, तोसी जाकैं बाम ॥४९॥

राधा स्याम की प्यारी।

कृष्न पति सर्वदा तेरे, तू सदा नारी।
सुनत बानी सखी-मुख की, जिय भयौ अनुराग।
प्रेम-गदगद, रोम पुलकित, समुझि अपनौ भाग।
प्रीति परगट कियौ चाहैं, बचन बोलि न जाइ।
नंद-नंदन काम-नायक, रहे नैननि छाइ।
हृदय तैं कहुँ टरत नाहीं, कियौ निहचल बास।
सूर प्रभु-रस भरी राधा, दुरत नहीं प्रकास ॥५०॥

जौ विधना अपबस करि पाऊँ।

तो सखि कह्यौ होइ कछु तेरौ, अपनी साध पुराऊँ।
लोचन रोम-रोम-प्रति माँगौं, पुनि-पुनि त्रास दिखाऊँ।
इकटक रहैं पलक नहिं लागैं, पद्धति नई चलाऊँ।
कहा करौं छवि-रासि स्यामघन, लोचन द्वै नहिं ठाऊँ।
एते पर ये निमिष सूर सुनि, यह दुख काहि सुनाऊँ ॥५१॥

कहि राधिका बात अब साँची।

तुम अब प्रगट कही मो आगैं, स्याम-प्रेम-रस माँची।
तुमकौं कहाँ मिले, नँद-नंदन, जब उनकैं रँग राँची।
खरिक मिले, की गोरस बेंचत, की जब बिषहर बाँची।
कहै बनै छाँड़ौ चतुराई, बात नहीं यह काँची।
सूरदास राधिका सयानी, रूप-रासि-रस-खाँची ॥५२॥

कब री मिले स्याम नहिं जानौं।

तेरी सौं करि कहति सखी री, अजहूँ नहिं पहिचानौं।
खरिक मिले, की गोरस बेंचत, की अबहीं, की कालि।
नैननि अंतर होत न कबहूँ, कहति कहा री आलि।
एकौ पल हरि होत न न्यारैं, नीकैं देखे नाहिं।
सूरदास-प्रभु टरत न टारैं, नैननि सदा बसाहिं ॥५३॥

स्याम मिले मोहिँ ऐसैं माई । मैं जल कौं जमुना तट आई ।।
औचक आए तहाँ कन्हाई । देखत ही मोहिनी लगाई ।।
तबहीं तैं तन-सुरति गँवाई । सूझैं मारग गई भुलाई ।।
बिनु देखैं कल परै न माई । सूर स्याम मोहिनी लगाई ।।५४।।
तबहीं तैं हरि हाथ बिकानी । देह-गेह-सुधि सबै भुलानी ।।
अंग सिथिल भए जैसैं पानी । ज्यौं-त्यौं करि गृह पहुँची आनी ।।
बोले तहाँ अचानक बानी । द्वारैं देखे स्याम बिनानी ।।
कहा कहौं सुनि सखी सयानी । सूर स्याम ऐसी मति ठानी ।।५५।।
जा दिन तैं हरि दृष्टि परे री ।
ता दिन तैं मेरैं इन नैननि, दुख सुख सब बिसरे री ।
मोहन अंग गुपाल लाल के, प्रेम-पियूष भरे री ।
बसे उहाँ मुसुकानि-बाँह लैं, रचि रुचि भवन करे री ।
पठवति हौं मन, तिनहिँ मनावन, निसदिन रहत अरे री ।
ज्यौं ज्यौं जतन, करति उलटावति, त्यौं त्यौं उठत खरे री ।
पचिहारी समुझाइ नीच-उँच, पुनि-पुनि पाँइ परे री ।
सो सुख सूर कहाँ लौं बरनौं, इक टक तैं न टरे री ।।५६।।
जब तैं प्रीति स्याम सौं कीन्हीं ।
ता दिन तैं मेरैं इन नैननि, नैंकहुँ नींद न लीन्ही ।
सदा रहै मन चाक चढ़यौ, सों और न कछू सुहाइ ।
करत उपाइ बहुत मिलिबे कौं, यहै बिचारत जाइ ।
सूर सकल लागति ऐसीयै, सो दुख कासौं कहियै ।
ज्यौं अचेत बालक कौ बेदन, अपनैं ही तन सहियै ।।५७।।
ना जानौं तबहीं तैं मोकौं, स्याम कहा धौं कीन्हौ री ।
मेरी दृष्टि परी जा दिन तैं, ज्ञान ध्यान हरि लीन्हौ री ।
द्वारैं आइ गए औचक हीं, मैं आँगन ही ठाढ़ी री ।
मनमोहन-मुख देखि रही तब, काम-बिथा तनु बाढ़ी री ।
नैन-सैन दै दै हरि मो तन, कछु इक भाव बतायौ री ।
पीतांबर उपरैना कर गहि, अपनैं सीस फिरायौ री ।
लोक-लाज, गुरुजन की संका, कहत न आवै बानी री ।
सूर स्याम मेरैं आँगन आए, जात बहुत पछितानी री ।।५८।।

मैं अपनौ मन हरत न जान्यौ।
कीधौं गयौ संग हरि कैं वह, कीधौं पंथ भुलान्यौ।
कीधौं स्याम हटकि है राख्यौ, कीधौं आपु रतान्यौ।
काहे तैं सुधि करी न मेरी, मोपै कहा रिसान्यौ।
जबहीं तैं हरि ह्याँ ह्वै निकसे, बैरु तबहिं तैं ठान्यौ।
सूर स्याम संग चलन कह्यौ मोहिं, कह्यौ नहीं तब मान्यौ ॥५९॥

स्याम करत हैं मन की चोरी।
कैसैं मिलत आनि पहलैं हीं, कहि-कहि बतियाँ भोरी।
लोक-लाज की कानि गँवाई, फिरति गुड़ी बस डोरी।
ऐसैं ढंग स्याम अब सीख्यौ, चोर भयौ चित कौ री।
माखन की चोरी सहि लीन्हीं, बात रही वह थोरी।
सूर स्याम भयौ निडर तबहिं तैं, गोरस लेत अँजोरी ॥६०॥

माई कृष्ण-नाम जब तैं स्रवन सुन्यौ है री, तब तैं भूली री मौन बावरी सी भई री।
भरि भरि आवैं नैन, चित न रहत चैन बैन नहिं सूधौ दसा औरहिं ह्वै गई री।
कौन माता, कौन पिता, कौन भैनी, कौन भ्राता, कौन ज्ञान, कौन ध्यान, मनमथ हई री।
सूर स्याम जब तैं परै री मेरी डीठि, बाम, काम, धाम, लोक-लाज, कुल-कानि नई री ॥६१॥

राधा तैं हरि कैं रँग राँची।
तो तैं चतुर और नहिं कोऊ, बात कहौं मैं साँची।
तैं उनकौ मन नहीं चुरायौ, ऐसी है तू काँची।
हरि तेरौ मन अबहिं चुरायौ, प्रथम तुहीं है नाँची।
तुम अरु स्याम एक हौ दोऊ, बाकी नाहीं बाँची।
सूर स्याम तेरैं बस, राधा, कहति लीक मैं खाँची ॥६२॥

तुम जानति राधा है छोटी।
चतुराई अंग-अंग भरी है, पूरन-ज्ञान, न बुधि की मोटी।
हमसौं सदा दुराव कियौ इहिं, बात कहै मुख चोटी-पोटी।
कबहुँ स्याम तैं नैंकु न बिछुरति, किये रहति हमसौं हठ ओटी।

नँद नंदन याही कैं बस हैं, बिबस देखि बेंदी छवि-चोटी।
सूरदास-प्रभु वै अति खोटे, यह उनहूँ तैं अतिहीं खोटी ॥६३॥

सुनहु सखी राधा सरि को है।
जो हरि हैं रतिपति मनमोहन, याकौं मुख सो जोहै।
जैसे स्याम नारि यह तैसी, सुंदर जोरी सोहै।
यह द्वादस वहऊ दस द्वै कौ, ब्रज-जुवतिनि मन मोहै।
मैं इनकौं घटि बढ़ि नहिं जानति, भेद करै सो को है।
सूर स्याम नागर, यह नागरि, एक प्रान तन दो है ॥६४॥

राधा नँद-नंदन अनुरागी।
भय चिंता हिरदै नहिं एकौ, स्याम रंग-रस पागी।
हरद चून रँग, पय पानी ज्यौं, दुबिधा दुहुँ की भागी।
तन-मन-प्रान समर्पन कीन्हौ, अंग-अंग रति ख़ागी।
ब्रज-बनिता अवलोकन करि-करि, प्रेम-बिबस तनु त्यागी।
सूरदास प्रभु सौं चित्त लाग्यौ, सोवत तैं मनु जागी ॥६५॥

आँखिनि मैं बसै, जिय मैं बसै, हिय मैं बसत निसि दिवस प्यारौ।
तन मैं बसै, मन मैं बसै, रसना हूँ मैं बसै नंदवारौ।
सुधि मैं बसै, बुधिहू मैं बसै, अंग-अंग बसै मुकुटवारौ।
सूर बन बसै, घरहु मैं बसै, संग ज्यौं तरंग जल न न्यारौ ॥६६॥

उपहास

तुम कुल बधू निलज जनि ह्वै हौ।
यह करनी उनहीं कौं छाजै, उनकैं संग न जैहौ।
राधा-कान्ह-कथा ब्रज-घर-घर, ऐसैं जनि कहवैहौ।
यह करनी उन नई चलाई, तुम जनि हमहिं हँसैहौ।
तुम ही बड़े महर की बेटी, कुल जनि नाउँ धरैहौ।
सूर स्याम राधा की महिमा, यहै जानि सरमैहौ ॥६७॥

यह सुनि कै हँसि मौन रहीं री।
ब्रज उपहास कान्ह-राधा कौ, यह महिमा जानी उनहीं री।
जैसी बुद्धि हृदय है इनकैं, तैसीयै मुख बात कहीं री।
रवि कौ तेज उलूक न जानै, तरनि सदा पूरन नभहीं री।
विष को कीट बिषहिं रुचि मानै, कहा सुधा रसहीं री।
सूरदास तिल-तेल-सवादी, स्वाद कहा जानै घृतहीं री ॥६८॥

सहसा भेंट

इततैं राधा जाति जमुन-तट, उततैं हरि आवत घर कौं।
कटि काछनी, वेष नटवर कौ, बीच मिली मुरलीधर कौं।
चितै रही मुख-इंदु मनोहर, वा छबि पर वारति तन कौं।
दूरिहु तैं देखत ही जाने, प्राननाथ सुंदर घन कौं।
रोम पुलक, गदगद बानी कहि, कहाँ जात चोरे मन कौं।
सूरदास-प्रभु चोरन सीखे, माखन तैं चित-बित-धन कौं ।।६९।।

भुजा पकरि ठाढ़े हरि कीन्हे।
बाँह मरोरि जाहुगे कैसें, मैं, तुम नीकैं चीन्हे।
माखन-चोरी करत रहे तुम, अब भए मन के चोर।
सुनत रही मन चोरत हैं हरि, प्रगट लियौ मन मोर।
ऐसे ढीठ भए तुम डोलत, निदरे ब्रज की नारि।
सूर स्याम मोहूँ निदरौगे, देहुँ प्रेम की गारि ।।७०।।

यह बल केतिक जादौ राइ।
तुम जु तमकि कै मो अबला सौं, चले बाहँ छुटकाइ।
कहियत हो अति चतुर सकल अंग, आवत बहुत उपाइ।
तो जानौं जौ अब एकौ छन, सकौ हृदय तैं जाइ।
सूरदास स्वामी श्रीपति कौं, भावत अंतर भाइ।
सहि न सके रति-वचन, उलटि हँसि लीन्ही कंठ लगाइ ।।७१।।

कुल की लाज अकाज कियौ।
तुम बिनु स्याम सुहात नहीं कछु, कहा करौं अति जरत हियौ।
आपु गुप्त करि राखी मोकौं, मैं आयसु सिर मानि लियौ।
देह-गेह सुधि रहति बिसारे, तुम तैं हितु नहिं और बियौ।
अब मोकौं चरननि तर राखौ, हँसि नँद-नंदन अंग छियौ।
सूर स्याम श्रीमुख की बानी, तुम पैं प्यारी बसत जियौ ।।७२।।

मातु पिता अति त्रास दिखावति।
भ्राता मोहिं मारन कौं धिरवै, देखें मोहिं न भावति।
जननी कहति बड़े की बेटी, तोकौं लाज न आवति।
पिता कहैं कैसी कुल उपजी, मनहीं मन रिस पावति।
भगिनी देख देति मोहिं गारी, काहैं कुलहिं लजावति।
सूरदास-प्रभु सौं यह कहि-कहि, अपनी विपति जनावति ।।७३।।

सुंदर स्याम कमल-दल-लोचन।
विमुख जननि की संगति कौं दुख, कब धौं करिहौ मोचन।
भवन मोहिँ भाठी सौं लागत, मरति सोचहीं सोचन।
ऐसी गति मेरी तुम आगैं, करत कहा जिय दोचन।
धिक वे मातु-पिता, धिक भ्राता, देत रहत मोहिँ खोचन।
सूर स्याम मन तुमहिँ लगान्यौ, हृदय-चून-रँग-रोचन ॥७४॥

कुल की कानि कहाँ लगि करिहौं।
तुम आगैं मैं कहौं जु साँची, अब काहू नहिँ डरिहौं।
लोग कुटुंब जग के जे कहियत, पेला सबहिँ निदरिहौं।
अब यह दुख सहि जात न मोपैं, विमुख बचन सुनि मरिहौं।
आपु सुखी तौ सब नीके हैं, उनके सुख कह सरिहौं।
सूरदास प्रभु चतुरसिरोमनि, अबकैं हौं कछु लरिहौं ॥७५॥

प्राननाथ हो मेरी सुरति किन करौ।
मैं जु दुख पावति हौं, दीनद्याल, कृपा करौ, मेरी कामदंद-दुख
औ बिरह हरौ।
तुम बहु रमनी रमन सो जानति हौं, याही के जु धौखैं
हौ मौसौं काहैं लरौ।
सूरदास-स्वामी तुम हौ अंतरजामी सुनो मनसा बाचा मैं
ध्यान तुम्हरोई धरौं ॥७६॥

हौं या माया ही लागी तुम कत तोरत।
मेरौ तौ जिय तिहारे चरननि ही मैं लाग्यौ, धीरज क्यौं रहै रावरे
मुख मोरत।
कोऊ लै बनाइ बातैं, मिलवति तुम आगैं, सोई किन आइ
मोसौं अब है जोरत।
सूरदास-पिय, मेरे तौ तुमहिँ हो जु जिय, तुम बिनु देखैं मेरौ
हिय ककोरत ॥७७॥

बिहँसि राधा कृष्न अंक लीन्ही।
अधर सौं अधर जुरि, नैन सौं नैन मिलि, हृदय सौं हृदय
लगि, हरष कीन्हो।
कंठ भुज-भुज जोरि, उछंग लीन्ही नारि, भुवन-दुख टारि,
सुख दियौ भारी।

हरषि बोले स्याम, कुन्ज-बन धन-धाम, तहाँ हम तुम संग मिलैं प्यारी।
जाहु गृह परम धन, हमहुँ जैहैं सदन, आइ कहुँ पास मोहिं सैन दैहौ।
सूर यह भाव दै, तुरतहीं गवन करि, कुंज-गृह सदन तुम जाइ रैहौ।।७८।।

व्याज मिलन

सुनि री मैया काल्हिही, मोतिसरी गँवाई।
सखिनि मिलै जमुना गई, धौं उनहिं चुराई।
कीधौं जलही मैं गई, यह सुधि नहिं मेरैं।
तब तैं मैं पछिताति हौं, कहति न डर तेरैं।
पलक नहीं निसि कहूँ लगी, मोहिं सपथ तिहारी।
इहि डर तैं मैं आजुहीं, अति उठी सवारी।
महरि सुनत चकित भई, मुख ज्वाब न आवै।
सूर राधिका गुन भरी, कोउ पार न पावै।।७९।।

सुनि राधा अब तोहिं न पत्यैहौं।
और हार चौकी हमेल अब, तेरैं कंठ न नैहौं।
लाख टकटकी हानि करी तैं, सो जब तोसौं लैहौं।
हार विना ल्याऐं लड़बौरी, घर नहिं पैठन दैहौं।
जब देखौंगी वहै मोतिसरि, तबहीं तौ सचु पैहौं।
नातरु सूर जन्म भरि तेरो, नाउं नहीं मुख लैहौं।।८०।।

जैहै कहाँ मोतिसरि मोरो।
अब सुधि भई लई वाही नैं, हंसति चली बृषभानु-किसोरी।
अबहीं मैं लीन्हे आवति हौं, मेरैं सँग आवै जानि को री।
देखौं धौं कहा करिहौं बाकौ, बड़े लोग सीखत हैं चोरी।
मोकौं आजु अबेर लागि है, ढूढौंगी घर-घर ब्रज खोरी।
सूर चली निधरक ह्वै सब सौं, चतुर राधिका बातनि भोरी।।८१।।

नंद-महर घर के पिछ्वारैं राधा आइ बतानी।
मनो अंब-दल-मौर देखि कें, कुहुकी कोकिल बानी।
झूठेहिं नाम लेति ललिता कौं, काहैं जाहु परानी।
वृन्दावन-मग जाति अकेली, सिर लै दही-मथानी।

मैं बैठी परखति ह्याँ रैहौं, स्याम तबहिं तिहिं जानी।
कोक-कला-गुन आगरि नागरि, सूर चतुरई ठानी ।।८२।।

सैन दै नागरी गई बन कौं।
तबहिं कर-कौर दियौ डारि, नहिं रहि सकैं, ग्वाल जेंवत तजे, मोह्यौ उनकौं।
चले अकुलाइ बन धाइ, ब्याई गाइ देखिहौं जाइ, मन हरष कीन्हौ।
प्रिया निरखति पंथ, मिलैं कब हरि कंत, गए इहिं अंत, हँसि अंक लीन्हौ।
अतिहिं सुख पाइ, अतुराइ मिले धाइ, दोउ मनौ अति रंक, नव-निधहिं पाई।
सूर प्रभु की प्रिया, राधिका अति नवल, नवल नँदलाल के, मनहिं भाई ।।८३।।

दीजै कान्ह काँधे कौ कंबर।
नान्हीं नान्हीं बूँदनि बरषन लाग्यौ, भीजत कुसुंभी अंबर।
बार-बार अकुलाइ राधिका, देखि मेघ-आडंबर।
हँसि हँसि रीझि बैठि रहे दोऊ, ओढ़ि सुभग पीतंबर।
सिव सनकादिक नारद-सारद, अंत न पावै तुंबर।
सूर स्याम-गति लखि न परति कछु, खात ग्वाल सँग संबर ।।८४।।

कान्ह कह्यौ बन रैनि न कीजै, सुनहु राधिका प्यारी।
अति हित सौं उर लाइ कह्यौ, अब भवन आपनैं जा री।
मातु-पिता जिय जानै न कोऊ, गुप्त-प्रीति रस भारी।
कर तैं कौर डारि मैं आयौ, देखत दोउ महतारी।
तुम जैसी मोहिं प्यारी लागति, चंद चकोर कहा री।
सूरदास स्वामी इन बातनि, नागरि रिझई भारी ।।८५।।

मैं बलि जाउँ कन्हैया की।
करतैं कौर डारि उठि धायौ, बात सुनी बन गैया की।
धौरी गाय आपनी जानी, उपजी प्रीति लवैया की।
तातैं जल समोइ पग धोवति, स्याम देखि हित मैया की।
जो अनुराग जसोदा कैं उर, मुख की कहनि कन्हैया की।
यह सुख सूर और कहुँ नाहीं, सौंह करत बल भैया की ।।८६।।

राधा अतिहिं चतुर प्रवीन।
कृष्न कौं सुख दै चली हँसि, हंस-गति कटि छीन।
हार कैं मिस इहाँ आई, स्याम मनि-कैं काज।
भयौ सब पूरन मनोरथ, मिले श्रीब्रजराज।
गाँठि-आँचर छोरि कै, मोतिसरी लीन्ही हाथ।
सखी अवति देखि राधा, लई ताकौं साथ।
जुबति बूझति कहाँ नागरि, निसि गई इक जाम।
सूर व्यौरौ कहि सुनायौ, मैं गई तिहिं काम ।।८७।।

करति अवसेर बृषभानु-नारी।
प्रात तैं गई, बासर गयौ बीति सब, जाम निसि गई, धौं कहाँ बारी।
हार कैं त्रास मैं कुँवरि त्रासी बहुत, तिहिं डरनि अजहूँ नहिं सदन आई।
कहाँ मैं जाउँ, कह धौं रही रूसि कैं, सखिनि सौं कहति कहूँ मिलि माई।
हार बहि जाइ, अति गइ अकुलाइ कैं, सुता कैं नाउँ इक वहै मेरैं।
सूर यह बात जो सुनैं अबहीं महर, कहैं मोहिं ये ढंग तेरैं ।।८८।।

राधा डर डराति घर आई।
देखति हीं कीरति महतारी, हरषि कुँवरि उर लाई।
धीरज भयौ सुता-माता जिय, दूरि गयौ तनु-सोच।
मेरौ कौं मैं काहैं त्रासी, कहा कियौ यह पोच।
लै री मैया हार मोतिसरी, जा कारन मोहिं त्रासी।
सूर राधिका के गुन ऐसे, मिलि आई अविनासी ।।८९।।

परम चतुर बृषभानु-दुलारी।
यह मति रची कृष्न मिलिबे की, परम पुनीत महा री।
उत सुख दियौ नंद-नंदन कौं, इतहिं हरष महतारी।
हार इतौ उपकार करायौ, कबहूँ न उर तैं टारी।
जे सिव-सनक-सनातन दुर्लभ, ते बस किये कुमारी।
सूरदास-प्रभु-कृपा अगोचर, निगमनि हू तैं न्यारी ।।९०।।

प्रीति के बस्य ये हैं मुरारी।
प्रीति के बस्य नटवर सुभेषहिं धरचौ, प्रीति बस करज गिरिराज धारी।
प्रीति के बस्य ब्रज भए माखन चोर, प्रीति बस्य दाँवरि बँधाई।
प्रीति के बस्य गोपी-रमन नाम प्रिय, प्रीति बस्य जमल तरु मोच्छदाई।
प्रीति-बस नंद-बंधन बरुन-गृह गए, प्रीति के बस्य बन-धाम कामी।
प्रीति के बस्य प्रभु सूर त्रिभुवन बिदित, प्रीति बस सदा राधिका स्वामी ।।६१।।

भ्रम

आजु सखी अरुनोदय मेरे, नैननि कौं धोख भयौ।
की हरि आजु पंथ गहिं गवने, स्याम जलद की उनयौ।
की बग पाँति भाँति, उर पर की, मुकुत-माल बहु मोल।
कीधौं मोर मुदित ह्वै नाचत, की बरह-मुकुट की डोल।
की घनघोर गम्भीर प्रात उठि, की ग्वालनि की टेरनि।
की दामिनी कौंधति चहुँ दिसि, की सुभग पीत पट फेरनि।
की बनमाल लाल-उर राजति, की सुरपति-धनु चारु।
सूरदास-प्रभु-रस भरि उमँगीं, राधा कहति बिचारु ।।६२।।

राधिका हृदय तै धोख टारौ।
नंद के लाल देखे प्रात-काल तैं, मेघ नहिं स्याम तनु-छबि बिचारौ।
इंद्र-धनु नहीं बन दाम बहु सुमन के, नहीं बग पाँति बर मोति माला।
सिखी वह नहीं सिर मुकुट सीखंड पछ, तड़ित नहिं पीत पट-छवि रसाला।
मंद गरजन नहीं चरन नूपुर-सबद, भोरही आजु हरि गबन कीन्हौ।
सूर-प्रभु भामिनी भवन करि गबन, मन रवन दुख के दवन जानि लीन्हौ ।।६३।।

एक निष्ठा

धन्य धन्य बृषभानु-कुमारी।
धनि माता, धनि पिता तिहारे, तोसी जाई बारी।
धन्य दिवस, धनि निसा तबहिं की, धन्य घरी, धनि जाम।
धन्य कान्ह तेरैं बस जे हैं, धनि कीन्हे बस स्याम।

धनि मति, धनि रति, धनि तेरौ हित, धन्य भक्ति, धनि भाउ।
सूर स्याम पति धन्य नारि तू, धनि-धनि एक सुभाउ ॥९४॥

तोहिँ स्याम हम कहाँ दिखावैं।
तुमतैं न्यारे रहत कहुँ न वै, नैकुं नहीं बिसरावैं।
एक जीव देही द्वै राची, यह कहि कहि जु सुनावैं।
उनकी पटतर तुमकौं दीजैं, तुम पटतर वै पावैं।
अमृत कहा अमृत-गुन प्रगटै, सो हम कहा बतावैं।
सूरदास गूँगे कौ गुर ज्यौं, बूझति कहा बुझावैं ॥९५॥

सुनि राधा यह कहा बिचारै।
वै तेरैं तू उनकैं रंग, अपनो मुख क्यौं न निहारै।
जो देखौ तौ छाँह आपनी, स्याम-हृदै ह्याँ छाया।
ऐसी दशा नंद-नंदन की, तुम दोउ निर्मल काया।
नीलांबर स्यामल तनु की छबि, तुम छबि पीत सुबास।
घन-भीतर दामिनी प्रकाशित, दामिनि घन-चहुँ पास।
सुन री सखी बिलख कहौं तोसौं, चाहति हरि कौ रूप।
सूर सुनहु तुम दोउ सम जोरी, एक स्वरूप अनूप ॥९६॥

पिय तेरैं बस यौं री माई।
ज्यौं संगहिं सँग छाँह देह-बस, प्रेम कह्यौ नहिँ जाई।
ज्यौं चकोर बस सरद चंद्र कैं, चक्रवात बस-भान।
जैसैं मधुकर कोमल कोस-बस, त्यौं बस स्याम सुजान।
ज्यौं चातक बस स्वाँति बूँद कैं, तन कैं बस ज्यौं जीय।
सूरदास-प्रभु अति बस तेरैं, समुझ देखि धौं हीय ॥९७॥

लघुमान लीला

मैं अपनैं जिय गर्व कियौ।
वै अंतरजामी सब जानत, देखत ही उन चरचि लियौ।
कासौं कहौं मिलावै को अब, नैंकु न धीरज धरत जियौ।
वै तौ निठुर भये या बुधि सौं, अहंकार फल यहै दियौ।
तब आपुन कौं निठुर करावति, प्रीति सुमिरि भरि लेति हियौ।
सूर स्याम प्रभु वै बहु नायक, मो सीं उनकैं कोटि तियौ ॥९८॥

महा बिरह-बन माँझ परी।
चकित भई ज्यौं चित्र-पूतरी, हरि मारग बिसरी।

सँग बटपार गर्व जब देख्यौ, साथी छोड़ि पराने।
स्याम-सहर-अँग-अंग-माधुरी, तहँ वै जाइ लुकाने।
यह बन माँझ अकेली ब्याकुल, सम्पति गर्व छँड़ायौ।
सूर स्याम-सुधि टरति न उर तैं, यह मनु जीव बचायौ ॥९९॥

राधा-भवन सखी मिलि आईं।
अति ब्याकुल सुधि-बुधि कछु नाहीं, देह दसा बिसराईं।
बाँह गही तिहिं बूझन लागीं, कहा भयौ री माई।
ऐसी बिबस भईं तू काहैं, कहौ न हमहिं सुनाई।
कालिहिं और बरन तोहिं देखी, आजु गई मुरझाई।
सूर स्याम देखे की बहुरौ, उनहिं ठगौरी लायी ॥१००॥

अब मैं तोसौं कहा दुराऊँ।
अपनी कथा, स्याम की करनी, तो आगैं कहि प्रगट सुनाऊँ।
मैं बैठी ही भवन आपनैं, आपुन द्वार दियौ दरसाऊं।
जानि लई मेरे जिय की उन, गर्व-प्रहारन उनकौं नाऊं।
तबहीं तैं ब्याकुल भई डोलति, चित्त न रहै कितनौ समुझाऊँ।
सुनहु सूर ग्रह बन भयो मोकौं, अब कैसें हरि दरसन पाऊँ ॥१०१॥

हमरी सुरति बिसारी बनवारी, हम सरबस दै हारी।
पै न भए अपने सनेह बस, सपने हूँ गिरधारी।
वै मोहन मधुकर समान सखि, अनबन बेली चारी।
ब्याकुल बिरह ब्यापी दिन-दिन हम, नीर जु नैननि ढारी।
हम तन मन दै हाथ बिकानी, वै अति निठुर मुरारी।
सूर स्याम बहु रमनि रमन, हम इक ब्रत, मदन-प्रजारी ॥१०२॥

मैं अपनीं सी बहुत करी री।
मोसौं कहा कहति तू माई, मन कैं सँग मैं बहुत लरी री।
राखौं हटकि, उतहिं कौ धावत, बाकी ऐसियै परनि परी री।
मोसौं बैर करै रति उनसौं, मोकौं राख्यौ द्वार खरी री।
अजहूँ मान करौं, मन पाऊँ, यह कहि इत-उत चितै डरी री।
सुनहु सूर पाँचनि मत एकै, मैं री मोही रही परी री ॥१०३॥

भूलि नहीं अब मान करौं री।
जातैं होइ अकाज आपनौ, काहैं बृथा मरौं री।

ऐसे तन मैं गर्व न राखौं, चिंतामनि बिसरौं री।
ऐसी बात कहै जो कोऊ, ताकैं संग लरौं री।
आरजपंथ चलैं कह सरिहै, स्यामहिं संग फिरौं री।
सूर स्याम जउ आपु, स्वारथी, दरसन नैन भरौं री ॥१०४॥

माई मेरौ मन पिय सौं यौं लाग्यौ, ज्यौं सँग लागी छाँहि।
मेरौ मन पिय जीव बसत हैं, पिय जिय मो मैं नाहि।
ज्यौं चकोर चंदा कौं निरखत, इत-उत दृष्टि न जाइ।
सूर स्याम बिनु छिन-छिन जुग सम, क्यों करि रैन बिहाइ ॥१०५॥

अद्भुत एक अनूपम बाग।
जुगल कमल पर गज बर क्रीड़त, तापर सिंह करत अनुराग।
हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर, गिर पर फूले कंज-पराग।
रुचिर कपोत बसत ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग।
फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, ता पर सुक, पिक, मृद मद काग।
खंजन, धनुष, चंद्रमा ऊपर, ता ऊपर एक मनिधर नाग।
अंग-अंग प्रति और-और छवि, उपमा ताकौं करत न त्याग।
सूरदास प्रभु पियौ सुधा-रस, मानौ अधरनिं के बड़ भाग ॥१०६॥

भुज भरि लई हिरदय लाइ।
बिरह ब्याकुल देखि बाला, नैन दोउ भरि आइ।
रैनि बासर बीच मैं, दोऊ गए मुरझाइ।
मनौ बृच्छ तमाल बेली, कनक सुधा सिंचाइ।
हरष डहडह मुसुकि फूले, प्रेम फलनि लगाइ।
काम मुरझनि बेली तरु की, तुरत ही बिसराइ।
देखि ललिता मिलन वह, आनंद उर न समाइ।
सूर के प्रभु स्याम स्यामा, त्रिबिध ताप नसाइ ॥१०७॥

ललिता प्रेम-बिबस भई भारी।
वह चितवनि, वह मिलनि परस्पर, अति सोभा वर नारी।
इकटक अंग-अंग अवलोकति, उत बस भए बिहारी।
वह आतुर छबि लेत देत वै, इक तैं इक अधिकारी।
ललिता संग सखिनि सों भाषति, देखौ छवि पिय-प्यारी।
सुनहु सूर ज्यौं होम अगिनि घृत, ताहूँ तै यह न्यारी ॥१०८॥

राधहिँ मिलेहुँ प्रतीति न आवति।
जदपि नाथ बिधु बदन बिलोकत, दरसन कौ सुख पावति।
भरि-भरि लोचन रूप-परम-निधि, उरमैं आनि दुरावति।
बिरह-बिकल मति दृष्टि दुहूँ दिसि, सँचि सरघा ज्यौं धावति।
चितवत चकित रहत चित अंतर, नैन निमेष न लावति।
सपनौ आहि कि सत्य ईस यह, बुद्धि वितर्क बनावति।
कबहुँक करति बिचार कौन हीं, को हरि कैं हिय भावति।
सूर प्रेम की बात अटपटी, मन तरंग उपजावति ॥१०९॥

स्याम भए राधा बस ऐसें।
चातक स्वाँति, चकोर चंद ज्यौं, चक्रवाक रवि जैसें।
नाद कुरंग, मीन जल की गति, ज्यौं तनु कैं बस छाया।
इकटक नैन अंग-छवि मोहे, थकित भए पति जाया।
उठैं उठत बैठैं बैठत हैं, चलैं चलत सुधि नाहीं।
सूरदास बड़भागिनि राधा, समुझि मनहिं मुसुकाहीं ॥११०॥

निरखि पिय-रूप तिय चकित भारी।
किधौं वै पुरुष मैं नारि,की वै नारि मैं ही हौं तन सुधि बिसारी।
आपु तन चितै सिर मुकुट कुंडल स्रवन, अधर मुरली, मालबन बिराजै।
उतहिं पिय-रूप सिर माँग वेनी सुभग, भाल बेंदी-बिंदु महा छाजै।
नागरी हठ तजौ, कृपा करि मोहिं भजौ, परी कह चूक सो कहौ प्यारी।
सूर नागरी प्रभु-बिरह-रस मगन भई, देखि छवि हँसत गिरिराजधारी ॥१११॥

कृष्ण गोपिका

नँद-नंदन तिय-छवि तनु काछे।
मनु गोरी साँवरी नारि दोउ, जाति सहज मै आछे।
स्याम अंग कुसुमी नई सारी, फल गुंजा की भाँति।
इत नागरि नीलांबर पहिरे, जनु दामिनी घन काँति।

आतुर चले जात बन धामहिँ, मन अति हरष बढ़ाए।
सूर स्याम वा छवि कौं नागरि, निरखति नैन चुराए ।।११२।।

स्याम स्यामा कुंज बन आवत।
भुज भुज कण्ठ परस्पर दीन्हें, यह छवि उनहीं पावत।
इततैं चन्द्रावली जाति ब्रज, उततैं ये दोउ आए।
दूरिहिं तैं चितवति उनहीं तन, इक टक नैन लगाए।
एक राधिका दूसरि को है, याकौं नहिं पहिचानौं।
ब्रज-बृषभानु-पुरा-जुवतिनि कौं, इक-इक करि मैं जानौं।
यह आई कहूँ और गाँव तैं, छवि साँवरी सलोनी।
सूर आजु यह नई वतानी, एकौ अँग न बिलोनी ।।११३।।

यह वृषभानु-सुता वह को है।
याकी सरि जुवती कोउ नाहीं, यह त्रिभुवन-मन मोहै।
अति आतुर देखन कौं आवति, निकट जाइ पहिचानौं।
ब्रज मैं रहति किधौं कहुँ औरै, बूझे तैं तब जानौं।
यह मोहिनी कहाँ तैं आई, परम सलोनी नारी।
सूर स्याम देखत मुसुक्यानी, करी चतुरई भारी ।।११४।।

कहि राधा ये को है री।
अति सुंदरी साँवरी सलोनी, त्रिभुवन-जन-मन-मोहै री।
और नारि इनकी सरि नाहीं, कहौ न हम-तन जोहै री।
काकी सुता, बधू है काकी, जुवती धौं है री।
जैसी तुम तैसी है येऊ, भली बनी तुमसौ री।
सुनहु सूर अति चतुर राधिका, येइ चतुरनि की गौ है री ।।११५।।

मथुरा तैं ये आई है।
कछु सम्बन्ध हमारौ इनसौं, तातैं इनहिं बुलाई है।
ललिता संग गई दधि बेंचन, उनही इनहिं चिन्हाई है।
उहै सनेह जानि री सजनी, आजु मिलन हम आई है।
तब ही की पहिचानि हमारी, ऐसी सहज सुभाई है।
सूरदास मोहिं आवत देखी, आपु संग उठि धाई है ।।११६।।

इनकौं ब्रजही क्यौं न बुलावहु।
की बृषभानु पुरा, की गोकुल, निकटहिँ आनि बसावहु।

येँऊ नवल नवल तुमहूँ हौ, मोहन कौं दोउ भावहु।
मोकौं देखि कियौ अति घूँघट, काहैं न लाज छुड़ावहु।
यह अचरज देख्यौ नहिँ कबहूँ, जुवतिहिँ जुहुति दुरावहू।
सूर सखी राधा सौं पुनि पुनि, कहति जु हमहिँ मिलावहू ।।११७।।

मथुरा मैं बस बास तुम्हारौ ?

राधा तैं उपकार भयौ यह, दुर्लभ दरसन भयौ तुम्हारौ।
बार-बार कर गहि निरखति, घूँघट-ओट करौ किन न्यारौ।
कबहुँक पर परसति कपोल छुइ, चुटकि लेति ह्या हमहिँ निहारौ।
कछु मैं हूँ पहिचानति तुमकौं, तुमहिँ मिलाऊँ नंद-दुलारौ।
काहें कौं तुम सकुचति हौ जू, कहौ काह है नाम तुम्हारौ।
ऐसो सखी मिली तोहिँ राधा, तौ हमकौं काहै न बिसारौ।
सूरदास दम्पति मन जान्यौ, यातैं कैसें होत उबारौ ।।११८।।

ऐसी कुँवरि कहाँ तुम पाई।

राधा हूँ तें नख-सिख सुंदरि, अब लौं कहाँ दुराई।
काकी नारि, कौन की बेटी, कौन गाउँ तैं आई।
देखी सुनी न ब्रज, वृन्दावन, सुधि-बुधि हरति पराई।
धन्य सुहाग भाग याकौ, यह जुवतिनि की मनभाई।
सूरदास-प्रभु हरिषि मिले हँसि, लै उर कंठ लगाई ।।११९।।

नँद-नंदन हँसे नागरी-मुख चितै, हरिषि चंद्रावलि कंठ लाई।
बाम भुज रवनि, दच्छिन भुज सखी पर, चले बन धाम सुख कहि न जाई।
मनौ बिबि दामिनि; बीच नव घन सुभग, देखि छवि काम रति-सहित लाजै।
किधौं कंचन-लता, बीच सुतमाल तरु, भामिनिनि बीच गिरिधर बिराजै।
गए गृहकुंज, अलिगुंज, सुमननि पुंज, देखि आनंद भरे सूर स्वामी।
राधिका-रवन, जुवती-रवन, मन-रवन निरखि छवि होत मन-काम कामी ।।१२०।।

मान लीला

मोहिँ छुवौ जनि दूर रहौ जू।

जाकौं हृदय लगाइ लयौ है, ताकी बाँह गहौ जू।

तुम सर्वज्ञ और सब मूरख, सो रानी अरु दासी।
मैं देखत हिरदय वह बैठी, हम तुमकौं भइ हाँसी।
बाँह गहत कछु सरम न आवति, सुख पावति मन माहीं।
सुनहु सूर मो तन यह इकटक, चितवति, डरपति नाहीं ।।१२१।।

कहा भई धनि बावरी, कहि तुमहिं सुनाऊँ।
तुम तैं को है भावती, जिहिं हृदय बसाऊँ।
तुमहिं स्रवन, तुम नैन हौ, तुम प्रान-अधारा।
बृथा क्रोध तिय क्यौं करौ, कहि बारम्बारा।
भुज गहि ताहि बतावहू, जेहि हृदय बतावति।
सूरज प्रभु कहै नागरी, तुम तैं को भावति ।।१२२।।

पियहिं निरखि प्यारी हँसि दीन्हौ।
रीझे स्याम अंग-अँग निरखत, हँसि नागरि उर लीन्हौ।
आलिगन दै अधर दसत खँडि, कर गहि चिबुक उठावत।
नासा सौं नासा लै जोरत, नैन नैन परसावत।
इहिं अंतर प्यारी उर निरख्यौ, झझकि भई तब न्यारी।
सूर स्याम मोकौं दिखरावत, उर ल्याए धरि प्यारी ।।१२३।।

मान करौ तुम और सवाई।
कोटि करौ एकै पुनि ह्वै हौ, तुम अरु मोहन माई।
मोहन सो सुनि नाम स्रवनहीं, मगन भई सुकुमारी।
मान गयौ, रिस गई तुरतहीं, लज्जित भई मन भारी।
धाइ मिली दूतिका कंठ सौं, धन्य-धन्य कहि बानी।
सूर स्याम बन धाम जानिकै, दरसन कौं अतुरानी ।।१२४।।

चलौ किन मानिनि कुंज-कुटीर।
तुव बिनु कुँवर कोटि बनिता तजि, सहत मदन की पीर।
गदगद स्वर संभ्रम अति आतुर, स्रवत सुलोचन नीर।
क्वासि क्वासि बृषभानु नंदिनी, बिलपत बिपिन अधीर।
बंसी बिसिष, माल ब्यालावलि, पंचानन पिक कीर।
मलयज गरल, हुतासन मारुत, साखामृगरिपु चीर।
हिय मैं हरषि प्रेम अति आतुर, चतुर चली पिय तीर।
सुनि भयभीत बज्र के पिंजर, सूर सुरति-रनधीर ।।१२५।।

स्याम नारि कैं बिरह भरे।
कबहुँक बैठत कुंज द्रुमनि तर, कबहुँक रहत खरे।
कबहुँक तनु की सुरति बिसारत, कबहुँक तनु सुधि आवत।
तब नागरि के गुनहिँ बिचारत, तेई गुन गनि गावत।
कहूँ मुकुट, कहुँ मुरलि रही गिरि, कहुँ कटि पीत पिछौरी।
सूर स्याम ऐसी गति भीतर, आइ दूतिका दौरी ।।१२६।।

धनि बृषभानु-सुता बड़ भागिनि।
कहा निहारति अंग-अंग-छबि, धन्य स्याम-अनुरागिनि।
और त्रिया नख-शिख सिँगार सजि, तेरैं सहज न पूरैं।
रति, रम्भा, उरबसी, रमा सो, तोहिँ निरखि मन झूरैं।
ये सब कंत सुहागिनि नाहीं, तू है कंत-पियारी।
सूर धन्य तेरी सुन्दरता, तोसी और न नारी ।।१२७।।

सँग राजति बृषभानु कुमारी।
कुंज सदन कुसुमनि सेज्या पर, दम्पति सोभा भारी।
आलस भरे मगन रस दोऊ, अंग-अंग प्रति जोहत।
मनहुँ गौर स्यामल ससि नव तन, बैठे संमुख सोहत।
कुंज भवन राधा-मनमोहन, चहूँ पास ब्रजनारी।
सूर रहीं लोचन इकटक करि, डारतिँ तन मन वारी ।।१२८।।

खण्डिता प्रकरण

काहे कौं कहि गए आइहैं, काहैं झूठी सौंहैं खाए।
ऐसे मैं नहिं जाने तुमकौं, जे गुन करि तुम प्रकट दिखाए।
भली करी यह दरसन दीन्हे, जनम जनम के ताप नसाए।
तब चितए हरि नैंकु तिया-तन, इतनैहिं सब अपराध छमाए।
सूरदास सुन्दरी सयानी, हँसि लीन्हे पिय अंकम लाए ।।१२९।।

धीर धरहु फल पावहुगे।
अपनेहीं सुख के पिय चाँड़े, कबहूँ तौ बस आवहुगे।
हम सौं कहत और की औरै, इन बातनि मन भावहुगे।
कबहुँ राधिका मान करैगी, अन्तर बिरह जनावहुगे।
तब चरित्र हमहीं देखैंगी, जैसैं नाच नचावहुगे।
सूर स्याम अति चतुर कहावत, चतुराई बिसरावहुगे ।।१३०।।

मैं हरि सौं हो मान कियौ री।
आवत देखि आन बनिता-रत, द्वार कपाट दियौ री।
अपनैं हीं कर साँकर सारी, संधिहिं सन्धि सियौ री।
जौ देखौं तो सेज सुमूरति, काँप्यौ रिसनि हियौ री।
जब झुकि चली भवन तैं बाहरि, तब हठि लौटि लियौ री।
कहा कहौं कछु कहत न आवै, तहँ गोविंद बियौ री।
बिसरि गई सब रोष, हरष मन, पुनि फिरि मदन जियौ री।
सूरदास प्रभु अति रति नागर, छलि मुख अमृत पियौ री ।।१३१।।

नंद-नंदन सुखदायक हैं।
नैन सैन दै हरत नारि मन, काम काम-तनु दायक हैं।
कबहूँ रैनि बसत काहू कैं, कबहुँ भोर उठि आवत हैं।
काहू कौ मन आपु चुरावत, काहू कैं मन भावत हैं।
काहू कै जागत सगरी निसि, काहूँ बिरह जगावत हैं।
सुनहु सूर जोइ जोइ मन भावै, सोइ सोइ रँग उपजावत हैं ।।१३२।।

नाना रँग उपजावत स्याम। कोउ रीझति कोउ खीझति बाम ।।
काहू कैं निसि बसत बनाइ। काहू मुख छ्वै आवत जाइ ।।
बहु नायक ह्वै बिलसत आपु। जाकौ सिव पावत नहिं जापु ।।
ताकौं ब्रजनारी पति जानैं। कोउ आदरैं, कोउ अपमानैं ।।
काहू सौं कहि आवन साँझ। रहत और नागरि घर माँझ ।।
कबहुँ रैन सब संग बिहात। सुनहु सूर ऐसे नँद-तात ।।१३३।।

अब जुवतिनि सौं प्रगटे स्याम।
अरस-परस सबहिनि यह जानी, हरि लुब्धे सबहिनि कैं धाम।
जा दिन जाकै भवन न आवत, सो मन मैं यह करति विचार।
आजु गए औरहिं काहू कैं, रिस पावति, कहि बड़े लबार।
यह लीला हरि कैं मन भावत, खंडित बचन कहत सुख होत।
साँझ बोल दै जात सूर-प्रभु, ताकैं आवत होत उदोत ।।१३४।।

राधिका गेह हरि-देह-बासी। और तिय घरनि घर तनु-प्रकासी ।।
ब्रह्म पूरन द्वितीय नहिं कोऊ। राधिका सबै हरि सबै वोऊ ।।
दीप सौं दीप जैसैं उजारी। तैसैं हौ ब्रह्म घर-घर बिहारी ।।
खंडिता बचन हित यह उपाई। कबहुँ कहुँ जात, कहुँ नहिं कन्हाई ।।

जन्म कौ सुफल हरि यहै पावैं। नारि रस-वचन स्रवननि सुनावैं ।।
सूर-प्रभु अनतहीं मगन कीन्हौ। तहाँ नहिं गए जहँ बचन दीन्हौ ।।१३५।।

मध्यम मान

स्याम पिया सन्मुख नहिं जोवत।
कबहुँ नैन की कोर निहारत, कबहुँ बदन पुनि गोवत।
मन-मन हँसत त्रसत तनु परगट, सुनत भावती बात।
खंडित वचन सुनत प्यारी के, पुलक होत सब गात।
यह सुख सूरदास कछु जानै, प्रभु अपने कौं भाव।
श्री राधा रिस करति, निरखि मुख, तिहिं छवि पर ललचाव ।।१३६।।

नैन चपलता कहाँ गँवाई।
मोसौं कहा दुरावत नागर, नागरि रैन जगाई।
ताही कैं रँग अरुन भए हैं, धनि यह सुन्दरताई।
मनौ अरुन अंबुज पर बैठे, मत्त भृंग रस पाई।
उड़ि न सकत ऐसे मतवारे, लागत पलक जम्हाई।
सुनहु सूर यह अंग माधुरी, आलस भरे कन्हाई ।।१३७।।

यह कहि कै तिय धाम गई।
रिसनि भरी नख-सिख लौं प्यारी, जोबन-गर्ब-भई।
सखी चलीं गृह देखि दसा यह, हठ करि बैठी जाइ।
बोलति नहीं मान करि हरि सौं, हरि अंतर रहे आइ।
इहिं अंतर जुबती सब आईं, जहाँ स्याम घर-द्वारैं।
प्रिया मान करि बैठि रही है, रिस करि क्रोध तुम्हारैं।
तुम आवत अतिहीं झहरानी, कहा करी चतुराई।
सुनत सूर यह बात चकित पिय, अतिहिं गए मुरझाई ।।१३८।।

नैंकु निकुंज कृपा करि आइयै।
अति रिस कृस ह्वै रही किसोरी, करि मनुहार मनाइयै।
कर कपोल अन्तर नहिं पावत, अति उसास तन ताइयै।
छूटे चिहुर बदन कुम्हिलानौ, सुहथ सँवारि बनाइयै।
इतनौ कहा गाँठि कौ लागत, जौ बातनि सुख पाइयै।
रूठेहिं आदर देत सयाने, यहै सूर जस गाइयै ।।१३९।।

बैठि मानिनी गहि मौन।
मनौ सिद्ध समाधि सेवत, सुरनि साधे पौन।

अचल आसन, पलक तारी, गुफा घूँघट-भौन।
रोषही कौ ध्यान धारै, टेक टारै कौन।
अबहिँ जाइ मनाइ लीजै, अबसि कीजै गौन।
सूर के प्रभु जाइ देखौ, चित्त चौंधी जौन ।।१४०।।

स्यामा तू अति स्यामहिँ भावै।
बैठत-उठत, चलत, गौ चारत, तेरौ लीला गावै।
पीत बरन लखि पीत बसन उर, पीत धातु अंग लावै।
चन्द्राननि सुनि, मोर चन्द्रिका, माथैं मुकुट बनावै।
अति अनुरागि सैनि संभ्रम मिलि, संग परम सुख पावै।
बिछुरत तोहिँ क्वासि राधा कहि, कुंज-कुंज प्रति धावै।
तेरौ चित्र लिखैं, अरु निरखैं, बासर-बिरह नसावै।
सूरदास रस-रासि-रसिक सौं, अन्तर क्यौं करि आवै ।।१४१।।

राधे हरि तेरौ नाम विचारैं।
तुम्हरेइ गुन ग्रन्थित करि माला, रसनाकर सौं टारैं।
लोचन-मूँदि ध्यान धरि, दृढ़ करि, पलकन नैंकु उघारैं।
अंग अंग प्रति रूप माधुरी, उर तैं नहीं बिसारैं।
ऐसो नेम तिहारे पिय कैं, कह जिय निठुर तिहारैं।
सूर स्याम मनकाम पुरावहु, उठि चलि कहैं हमारैं ।।१४२।।

कहा तुम इतनैंहि कौं गरबानी।
जीवन रूप दिवस दसही कौ, जल अँजुरी कौ जानी।
तृन की अगिनि, धूम कौ मंदिर, ज्यौं तुषार-कन-पानी।
रिसहीं जरति पतंग ज्योति ज्यौं, जानत लाभ न हानी।
नरि कछु ज्ञानऽभिमान जाव दै, हैऽब कौन मति ठानी।
तन धन जानि जाम जुग छाया, भूलति कहा अयानी।
नवसै नदी चलति मरजादा, सुधियै सिन्धु समानी।
सूर इतर ऊसर के बरषैं, थोरैंहि जल इतरानी ।।१४३।।

रहि री मानिनी मान न कीजै।
यह जोबन अँजुरी कौ जल है, ज्यौं गुपाल माँगै त्यौं दीजै।
छिनु छिनु घटति, बढ़ति नहिँ रजनी, ज्यौं ज्यौं कलाचंद्र की छीजै।
पूरब पुन्य सुकृत फल तेरौ, काहै न रूप नैन भरि पीजै।

सौँह करति तेरे पाँइनि की, ऐसी जियनि दसौ दिन जीजै।
सूर सु जीवन सफल जगत कौ, बैरी बाँधि बिबस करि लीजै ।।१४४।।

राधा सखी देखि हरषानी।
आतुर स्याम पठाई याकौं, अन्तरगत की जानी।
वह सोभा निरखत अँग-अँग की, रही निहारि निहारि।
चकित देखि नागरि मुख वाकौ, तुरत सिँगारनि सारि।
ताहि कह्यौ सुख दै चलि हरि कौं, मैं आवति हौं पाछैं।
वैसैंहि फिरी सूर के प्रभु पैं, जहाँ कुंज गृह काछैं ।।१४५।।

हरषि स्याम तिय बाँह गही।
अपनैं कर सारी अँग साजत, यह इक साध कही।
सकुचति नारि बदन मुसुकानी, उतकौं चितै रही।
कोक-कला परिपूरन दोऊ, त्रिभुवन और नही।
कुंज-भवन सँग मिलि दोउ बैठे, सोभा एक चही।
सूर स्याम स्यामा सिर बेनी, अपनैं करनि गुही ।।१४६।।

खंजन नैन सुरँग रस माते।
अतिसय चारु विमल, चंचल ये, पल पिंजरा न समाते।
बसे कहूँ सोइ बात सखी कहि, रहे इहाँ किहिं नातै ?
सोइ संज्ञा देखति औरासी, विकल उदास कला तैं।
चलि-चलि जात निकट स्रवननि के, सकि ताटंक फँदाते।
सूरदास अंजन गुन अटके, नतरु कबै उड़ि जाते ।।१४७।।

धन्य धन्य बृषभानु-कुमारी, गिरिवरधर, बस कीन्हे (री)।
जोइ जोइ साध करी पिय रस की, सो सब उनकौं दीन्हे (री)।
तोसी तिया और त्रिभुवन मैं, पुरुष स्याम से नाहीं (री)।
कोक-कला पूरन तुम दोऊ, अब न कहूँ हरि जाहीं (री)।
ऐसे बस तुम भए परस्पर, मोसौं प्रेम दुरावै (री)।
सूर सखी आनँद न सम्हारति, नागरि कंठ लगावै (री) ।।१४८।।

बड़ी मान लीला

राधेहिं स्याम देखी आइ।
महा मान दृढ़ाइ बैठी, चितै कापैं जाइ।
रिसहिं रिस भइ मगन सुन्दरि, स्याम अति अकुलात।
चकित ह्वै जकि रहे ठाढ़े, कहि न आवै बात।

देखि ब्याकुल नंद-नंदन, सखी करति बिचार।
सूर दोऊ मिलैं जैसैं, करौं सोइ उपचार ।।१४६।।

यह ऋतु रूसिबे की नाहीं।
बरषत मेघ मेदिनी कैं हित, प्रीतम हरषि मिलाहीं।
जेती बेलि ग्रीष्म ऋतु डाहीं, ते तरवर लपटाहीं।
जे जल बिनु सरिता ते पूरन, मिलन समुद्रहिं जाहीं।
जोबन धन है दिवस चारि कौ, ज्यौं, बदरी की छाहीं।
मैं, दंपति-रस-रीति कही है, समुझि चतुर मन माहीं।
यह चित धरि री सखी राधिका, दै दूती कौं बाहीं।
सूरदास उठि चलि री प्यारी, मेरैं सँग पिय पाहीं ।।१५०।।

तोहि किन रूठन सिखई प्यारी।
नवल बैस नव नागरि स्यामा, वे नागर गिरिधारी।
सिगरी रैनि मनावति बीती, हा हा करि हौं हारी।
एते पर हठ छाँड़ति नाहीं, तू बृषभानुदुलारी।
सरद-समय-ससि-दरस समरसर, लागै उन तन भारी।
मेटहु त्रास दिखाइ बदन-बिधु, सूर स्याम हितकारी ।।१५१।।

हरि-मुख राधा-राधा बानी।
धरिनी परे अचेत नहीं सुधि, सखी देखि अकुलानी।
बासर गयौ, रैनि इक बीती, बिनु भोजन बिनु पानी।
बाँह पकरि तब सखिनि जगायौ, धनि-धनि सारँगपानी।
ह्याँ तुम बिबस भए हौ ऐसे, ह्वाँ तौ वै बिबसानी।
सूर बने दोउ नारि पुरुष तुम, दुहुँ की अकथ कहानी ।।१५२।।

सुनि री सयानी तिय, रूसिबे कौ नेम लियौ, पावस दिननि
कोऊ ऐसौ है करत री।
दिसि-दिसि घटा उठी, मिलि री पिया सौं रूठी, निडर हियौ है
तेरौ नैंकु न डरत री।
चलिए री मेरी प्यारी, मोकौं मान देन हारी, प्रानहुँ तैं प्यारे पति
धीर न धरत री।
सूरदास प्रभु तोहिं, दियौ चाहै हित-बित, हँस क्यौं न मिलै तेरौ
नेम है टरत री ।।१५३।।

बेरस कीजै नाहिं भामिनी, रस मैं रिस की बात।
हौं पठई तोहिं लेन साँवरैं, तोहिं बिनु कछु न सुहात।
हा हा करि तेरे पाइँ परति हौं, छिनु छिनु निसि घटि जात।
सूर स्याम तेरौ मग जोवत, अति आतुर अकुलात ।।१५४।।
माधौ तहाँ बुलाई राधे, जमुना निकट सुसीतल छहियाँ।
आछी नीकी कुसुँभी सारी, गोरैं तन चलि हरि पिय पहियाँ।
दूती एक गई मोहिनि पै, जाइ कह्यौ यह प्यारी कहियाँ।
सूरदास सुनि चतुर राधिका, स्याम रैनि बृन्दावन महियाँ ।।१५५।।
झूँमक सारी तन गोरैं हो।
जगमग रह्यौ जराइ कौ टीकौ, छबि की उठतिं झकोरैं हो।
रत्न जटित कै सुभग तरचौना, मनहुँ जात रबि भोरैं हो।
दुलरी कंठ निरखि पिय इक टक, दृग भए रहैं चकोरैं हो।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन कौं, रीझि-रीझि तृन तोरैं हो ।।१५६।।
राधिका बस्य करि स्याम पाए।
बिरह गयौ दूरि, जिय हरष हरि कै भयौ, सहस मुख निगम जिहिं नेति गाए।
मान तजि मानिनी मैन कौ बल हरचौ, करत तनु कंत जो त्रास भारी।
कोक विद्या निपुन, स्याम स्यामा बिपुल, कुंज-गृह द्वार ठाढ़े मुरारी।
भक्त-हित-हेत अवतारि लीला करत, रहत प्रभु तहाँ निजु ध्यान जाकैं।
प्रगट प्रभु सूर ब्रजनारि कैं हित बँधे, देत मन-काम-फल संग ताकैं ।।१५७।।

वसंतोत्सव

झूलत स्याम स्यामा संग।
निरखि दंपति अंग सोभा, लजत कोटि अनंग।
मंद त्रिविध समीर सीतल, अंग अंग सुगंध।
मचत उड़त सुबास सँग, मन रहे मधुकर बंध।
तैसियै जमुना सुभग जहँ, रच्यौ रंग हिडोल।
तैसियै बृज-बधू बनि, हरि चितै लोचन कोर।

तैसोई बृन्दा-बिपिन-घन-कुंज-द्वार-बिहार।
बिपुल गोपी, बिपुल बन गृह, रवन नंदकुमार।
नित्य लीला, नित्य आनँद, नित्य मंगल गान्ह।
सूर सुर-मुनि मुखनि अस्तुति, धन्य गोपी कान्ह ॥१५८॥

नित्य धाम बृन्दावन स्याम। नित्य रूप राधा ब्रज-बाम ॥
नित्य रास, जल नित्य बिहार। नित्य मान, खंडिताऽभिसार ॥
ब्रह्म-रूप येई करतार। करन हरन त्रिभुवन येइ सार ॥
नित्य कुंज-सुख नित्य हिँडोर। नित्यहिं त्रिबिध-समीर झकोर ॥
सदा बसंत रहत जहँ बास। सदा हर्ष, जहँ नहीं उदास ॥
कोकिल कीर सदा तहँ रोर। सदा रूप मन्मथ चितचोर ॥
बिबिध सुमन बन फूले डार। उन्मत मधुकर भ्रमर अपार ॥
नव पल्लव बन सोभा एक। बिहरत हरि सँग सखी अनेक ॥
कुहू कुहू कोकिला सुनाई। सुनि सुनि नारि परम हरषाईं ॥
बार बार सो हरिहिं सुनावतिं। ऋतु बसंत आयौ समुझावतिं ॥
फाग-चरित रस साध हमारैं। खेलहिं सब मिलि संग तुम्हारैं ॥
सुनि सुनि सूर स्याम मुसुकाने। ऋतु बसंत आयौ हरषाने ॥१५९॥

पिय प्यारी खेलैं जमुन तीर। भरि केसरि कुमकुम अरु अबीर ॥
घसि मृगमद चंदन अरु गुलाल। रँग भीने अरगज वस्त्र माल ॥
कूजत कोकिल कल हंस मोर। ललितादिक स्यामा एक ओर ॥
बृन्दादिक मोहन लई जोर। बाजै ताल मृदंग रबाब घोर ॥
प्रभु हँसि कै गेँदुक दइ चलाइ। मुख पट दै राधा गइ बचाइ ॥
ललिता पट-मोहन गह्यौ धाइ। पीतांबर मुरली लइ छिँड़ाइ ॥
हौं सपथ करौं छाँड़ौं न तोहिं। स्यामा जू आज्ञा दई मोहिं ॥
इक निज सहचरि आई बसीठि। सुनी री ललिता तू भई ढीठि ॥
पट छाँड़ि दियौ तब नव किसोर। छबि रीझि सूर तृन दियौ तोर ॥१६०॥

तेरैं आवैंगे आजु सखी हरि, खेलन कौं फाग (री)।
सगुन सँदेसौ हौं सुन्यौं, तेरैं आँगन बोलै काग (री)।
मदनमोहन तेरैं बस माई, सुनि राधे बड़भाग (री)।
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ, का सोवै, उठि जाग (री)।
चोवा चंदन लै कुमकुम अरु, केसरि पैयाँ लाग (री)।
सूरदास-प्रभु तुम्हारे दरस कौं, राधा अचल सुहाग (री) ॥१६१॥

हरि सँग खेलति हैं सब फाग।
इहिँ मिस करति प्रगट गोपी, उर-अंतर कौ अनुराग।
सारी पहिरि सुरँग, कसि कंचुकि, काजर दै दै नैन।
बनि बनि निकसि-निकसि भईं ठाढ़ी, सुनि माधौ के बैन।
डफ, बाँसुरी रुंज अरु महुअरि, बाजत ताल मृदंग।
अति आनंद मनोहर बानी, गावत उठति तरंग।
एक कोध गोविंद ग्वाल सब, एक कोध ब्रज-नारि।
छाँड़ि सकुच सब देति परस्पर, अपनी भाई गारि।
मिलि दस पाँच अली कृष्णहिँ, गहि लावतिँ अचकाइ।
भरि अरगजा अबीर कनक-घट, देति सीस तैं नाइ।
छिरकतिँ सखी कुमकुमा केसरि, भुरकतिँ बंदन धूरि।
सोभित है तनु साँझ-समै-घन, आए हैं मनु पूरि।
दसहूँ दिसा भयौ परिपूरन, सूर सुरंग प्रमोद।
सुर-बिमान कौतूहल भूले, निरखत स्याम-बिनोद ॥१६२॥

नंद नँदन बृषभानु किसोरी, मोहन राधा खेलत होरी।
श्रीबृन्दावन अतिहिँ उजागर, बरद बरन नव दंपति भोरी।
एकनि कर है अगरु कुमकुमा, एकनि कर केसरि लै घोरी।
एक अर्थ सौं भाव दिखावति, नाचति तरुनि बाल बृध भोरी।
स्यामा उतहिँ सकल ब्रज-बनिता, इतहिँ स्याम रस रूप लहौ री।
कंचन की पिचकारी छूटति, छिरकत ज्यौं सचुपावैं गोरी।
अतिहिँ ग्वाल दधि गोरस माते, गारी देत कहौ न करौ री।
करत दुहाई नंदराइ की, लै जु गयौ कल बल छल जोरी।
झुंडनि जोरि रही चंद्रावलि, गोकुल मैं कछु खेल मच्चौ री।
सूरदास-प्रभु फगुआ दीजै, चिरजीवौ राधा बर जोरी ॥१६३॥

गोकुलनाथ बिराजत डोल।
संग लिये वृषभानु-नंदिनी, पहिरे नील निचोल।
कंचन खचित लालमनि मोती, हीरा जटित अमोल।
झुलवहिँ जूथ मिलै ब्रजसुंदरि, हरषित करतिँ कलोल।
खेलतिँ, हँसतिँ परस्पर गावतिँ, बोलतिँ मीठे बोल।
सूरदास स्वामी, पिय-प्यारी, झूलत हैं झकझोल ॥१६४॥

मथुरा गमन

अक्रूर ब्रज आगमन

कंस नृपति अक्रूर बुलाये।
बैठि इकंत मंत्र दृढ़ कीन्हौ, दोऊ बंधु मँगाये।
कहूँ मल्ल, कहुँ गज दै राखे, कहूँ धनुष कहुँ वीर।
नंद महर के बालक मेरैं, करषत रहत सरीर।
उनहिं बुलाइ बीच ही मारौं, नगर न आवन पावैं।
सूर सुनत अक्रूर कहत, नृप मन-मन मौज बढ़ावैं ॥१॥
उत नंदहिं सपनौ भयौ, हरि कहूँ हिराने।
बल-मोहन कोउ लै गयौ, सुनि कै बिलखाने।
ग्वाल सखा रोवत कहैं, हरि तौ कहुँ नाहीं।
संगहि सँग खेलत रहे, यह कहि पछिताहीं।
दूत एक सँग लै गयौ, बलराम कन्हाई।
कहा ठगौरी सी करी, मोहिनी लगाई।
वाही के दोउ ह्वै गए, हम देखत ठाढ़े।
सूरज प्रभु वै निठुर ह्वै, अतिहीं गए गाढ़े ॥२॥
सुफलक-सुत हरि दरसन पायौ।
रहि न सक्यौ रथ पर सुख-व्याकुल, भयौ वहै मन भायौ।
भू पर दौरि निकट हरि आयौ, चरननि चित्त लगायौ।
पुलक अंग, लोचन जल-धारा, श्रीपद सिर परसायौ।
कृपासिंधु करि कृपा मिले हँसि, लियौ भक्त उर लाइ।
सूरदास यह सुख सोइ जानै, कहौं कहा मैं गाइ ॥३॥
चलन चलन स्याम कहत, लैन कोउ आयौ।
नंद-भवन भनक सुनी, कंस कहि पठायौ।
ब्रज की नारि गृह बिसारि, ब्याकुल उठि धाईं।
समाचार बूझन कौं, आतुर ह्वै आईं।
प्रीति जानि, हेत मानि, बिलखि बदन ठाढ़ीं।
मानहु वै अति विचित्र, चित्र लिखी काढ़ीं।

ऐसी गति ठौर-ठौर, कहत न बनि आवै।
सूर स्याम बिछुरैं, दुख-बिरह काहि भावै ॥४॥
चलत जानि चितवहिं ब्रज-जुवती, मानहुँ लिखीं चितेरैं।
जहाँ सु तहाँ एकटक रहि गईं, फिरत न लोचन फेरैं।
बिसरि गईं गति भाँति देह की, सुनतिं न स्रवननि टेरैं।
मिलि जु गईं मानौ पै पानी, निबरहिं नहीं निबेरैं।
लागीं संग मतंग मत्त ज्यौं, घिरतिं न कैसेंहु घेरैं।
सूर प्रेम-आसा अंकुस जिय, वै नहिं इत-उत हेरैं ॥५॥
(मेरे) कमलनैन प्राननि तैं प्यारे।
इन्हैं कहा मधुपुरी पठाऊँ, राम कृष्न दोऊ जन बारे।
जसुदा कहै सुनौ सुफलक-सुत, मैं इन बहुत दुषनि सौं पारे।
ये कहा जानैं राज सभा कौं, ये गुरुजन बिप्रहुँ न जुहारे।
मथुरा असुर समूह बसत हैं, कर-कृपान, जोधा हत्यारे।
सूरदास ये लरिका दोऊ, इन कब देखे मल्ल-अखारे ॥६॥
जसुमति अति हीं भई बिहाल।
सुफलक सुत यह तुमहिं बूझियत, हरत हमारे बाल।
ये दोउ भैया जीवन हमरे, कहति रोहिनी रोइ।
धरनी गिरति, उठति अति ब्याकुल, कहि राखत नहिं कोइ।
निठुर भए जब तैं यह आयौ, घरहूँ आवत नाहिं।
सूर कहा नृप पास तुम्हारौ, हम तुम बिनु मरि जाहिं ॥७॥
सुने हैं स्याम मधुपुरी जात।
सकुचनि कहि न सकत काहू सौं, गुप्त हृदय की बात।
संकित बचन अनागत कोऊ, कहि जु गयौ अधरात।
नींद न परै, घटै नहिं रजनी, कब उठि देखौं प्रात।
नंद नँदन तौ ऐसे लागैं, ज्यौं जल पुरइनि पात।
सूर स्याम सँग तैं बिछुरत हैं, कब ऐहैं कुसलात ॥८॥

मथुरा प्रयाण

अब नँद गाइ लेहु सँभारि।
जो तुम्हारैं आनि बिलमे, दिन चराई चारि।
दूध दही खवाइ कीन्हे, बड़े अति प्रतिपारि।
ये तुम्हारे गुन हृदय तैं, डारिहौं न बिसारि।

मातु जसुदा द्वार ठाढ़ी, चलै आँसू ढारि।
कह्यौ रहियौ सुचित सौं, यह ज्ञान गुर उर धारि।
कौन सुत, को पिता-माता, देखि हृदै बिचारि।
सूर के प्रभु गवन कीन्हौ, कपट कागद फारि ।।९।।

जबहीं रथ अक्रूर चढ़े।
तब रसना हरि नाम भाषि कै, लोचन नीर बढ़े।
महरि पुत्र कहि सोर लगायौ, तरु ज्यौं धरनि लुटाइ।
देखतिं नारि चित्र सी ठाढ़ीं, चितये कुंवर कन्हाइ।
इतनैहि मैं सुख दियौ सबनि कौं, दीन्हीं अवधि बताइ।
तनक हँसे, हरि मन जुवतिन कौं, निठुर ठगौरी लाइ।
बोलतिं नहीं रहीं सब ठाढ़ी, स्याम-ठगीं ब्रज नारी।
सूर तुरत मधुबन पग धारे, धरनी के हितकारी ।।१०।।

रहीं जहाँ सो तहाँ सब ठाढ़ीं।
हरि के चलत देखियत ऐसी, मनहु चित्र लिखि काढ़ी।
सूखे बदन, स्रवति नैननि तैं, जल-धारा उर बाढ़ी।
कंधनि बाँह धरे चितवतिं मनु, द्रुमनि बेलि दव दाढ़ी।
नीरस करि छाँड़ी सुफलक सुत, जैसें दूध बिनु साढ़ी।
सूरदास अक्रूर कृपा तैं, सहीं बिपति तन गाढ़ी ।।११।।

बिछुरत श्री ब्रजराज आजु, इनि नैननि की परतीति गई।
उड़ि न गए हरि संग तबहिं तैं, ह्वै न गए सखि स्याममई।
रूप रसिक लालची कहावत, सो करनी कछुवै न भई।
साँचे क्रूर कुटिल ये लोचन, वृथा मीन-छवि छीन लई।
अब काहैं जल-मोचत, सोचत, समौ गए तैं सूल नई।
सूरदास याही तैं जड़ भए, पलकनिहूँ हठि दगा दई ।।१२।।

आजु रैनि नहिं नींद परी।
जागत गिनत गगन के तारे, रसना रटत गोबिंद हरी।
वह चितवनि, वह रथ की बैठनि, जब अक्रूर की बाँह गही।
चितवति रही ठगी सी ठाढ़ी, कहि न सकति कछु काम दही।
इते मान ब्याकुल भइ सजनी, आरज पंथहुं तैं बिडरी।
सूरदास-प्रभु जहाँ सिधारे, कितिक दूर मथुरा नगरी ।।१३।।

री मोहिँ भवन भयानक लागै, माई स्याम बिना।
काहि जाइ देखौं भरि लोचन, जसुमति कैं अँगना।
को संकट सहाइ करिबै कौं, मेटै बिघन घना।
लै गयौ क्रूर अक्रूर साँवरौ, ब्रज कौ प्रानधना।
काहि उठाइ गोद करि लीजै, करि करि मन मगना।
सूरदास मोहन दरसन बिनु, सुख सम्पति सपना ।।१४।।

कहा हौं ऐसे ही मरि जैहौं।
इहिँ आँगन गोपाल लाल कौ, कबहुँ कि कनिया लैहौं।
कब वह मुख बहुरौ देखौंगी, क वैसो सचुपैहौं।
कब मोपै माखन माँगैंगे, कब रोटी धरि दैहौं।
मिलन आस तन-प्रान रहत हैं, दिन दस मारग ज्वैहौं।
जौ न सूर अइहैं इते पर, जाइ जमुन धँसि लैहौं ।।१५।।

मथुरा प्रवेश तथा कंस-वध

बूझत हैं अक्रूरहिँ स्याम।
तरनि किरनि महलनि पर झाईं, इहै मधुपुरी नाम।
स्रवननि सुनत रहत है जाकौ, सो दरसन भए नैन।
कंचन कोटि कँगूरनि की छबि, मानो बैठे मैन।
उपवन बन्यौ चहूँधा पुर के, अतिहीं मोकौं भावत।
सूर स्याम बलरामहिँ पुनि पुनि, कर पल्लवनि दिखावत ।।१६।।

मथुरा हरषित आजु भई।
ज्यौं जुवती पति आवत सुनि कै, पुलकित अंग मई।
नवसत साजि सिँगार सुंदरी, आतुर पंथ निहारति।
उड़ति धुजा तनु सुरति बिसारे, अंचल नहीं सँभारति।
उरज प्रगट महलनि पर कलसा, लसति पास बन सारी।
ऊँचे अटनि छाज की सोभा, सीस उचाइ निहारी।
जालरंध्र इकटक मग जोवति, किंकिन कंचन दुर्ग।
बेनी लसति कहाँ छबि ऐसी, महलनि चित्रे उर्ग।
बाजत नगर बाजने जहँ तहँ, और बजत घरियार।
सूर स्याम बनिता ज्यौं चंचल, पग नूपुर झनकार ।।१७।।

मथुरा पुर मैं सोर पर्‌यौ।
गरजत कंस बंस सब साजे, मुख कौ नीर हर्‌यौ।

पीरो भयौ, फेफरी अधरनि, हिरदय अतिहि डरचौ।
नंद महर के सुत दोउ सुनि कै, नारिनि हर्ष भरचौ।
कोउ महलनि पर कोउ छज्जनि पर, कुल लज्जा न करचौ।
कोउ धाईं पुर गलिन गलिन ह्वै, काम-धाम बिसरचौ।
इंदु बदन नव जलद सुभग तनु, दोउ खग नयन करचौ।
सूर स्याम देखत पुर-नारी, उर-उर प्रेम भरचौ ॥१८॥

ढोटा नंद कौ यह री।
नाहिँ जानति बसत ब्रज मैं, प्रगट गोकुल री।
धरचौ गिरिवर बाम कर जिहिँ, सोइ है यह री।
दैत्य सब इनहीं सँहारे, आपु-भुज-बल री।
ब्रज-घरनि जो करत चोरी, खात माखन री।
नंद-घरनी जाहिँ बाँध्यौ, अजिर ऊखल री।
सुरभि-ठान लिये बन तैं आवत, सबहिँ गुन इन री।
सूर-प्रभु ये सबहि लायक, कंस डरै जिन री ॥१९॥

भए सखि नैन सनाथ हमारे।
मदनगोपाल देखतहिँ सजनी, सब दुख सोक बिसारे।
पठये हे सुफलक-सुत गोकुल, लैन सो इहाँ सिधारे।
मल्ल जुद्ध प्रति कंस कुटिल मति, छल करि इहाँ हँकारे।
मुष्टिक अरु चानूर सैल सम, सुनियत हैं अति भारे।
कोमल कमल समान देखियत, ये जसुमति के बारे।
होवे जीति विधाता इनकी, करहु सहाइ सवारे।
सूरदास चिर जियहु दुष्ट दलि, दोऊ नंद-दुलारे ॥२०॥

धनुषसाला चले नँदलाला।
सखा लिए संग प्रभु रंग नाना करत, देव नर कोउ न लखि सकत ख्याल।
नृपति के रजक सौं भेंट मग में भई, कह्यौ दै बसन हम पहिरि जाहों।
बसन ये नृपति के जासु की प्रजा तुम, ये बचन कहत मन डरत नाहीं।
एक ही मुष्टिका प्रान ताके गए, लए सब बसन कछु सखनि दीन्हे।
आइ दरजी गयौ बोलि ताकौं लयौ, सुभग अँग साजि उन विनय कीन्हे।

सुनि सुदामा कह्यौ गेह मम अति निकट, कृपा करि तहाँ हरि चरन धारे।
धोइ पद-कमल पुनि हार आगैं धरे, भक्ति दै, तासु सब काज सारे।
लिए चंदन बहुरि आनि कुबिजा मिली, स्याम अँग लेप कीन्हौ बनाई।
रीझि तिहिं रूप दियौ, अंग सूधौ कियौ, बचन सुभ भाषि निज गृह पठाई।
पुनि गए तहाँ जहँ धनुष, बोले सुभट, हौंस जनि मन करौ वन-विहारी।
सूर प्रभु छुवत धनु टूटि धरनी परयौ, सोर सुनि कंस भयौ भ्रमित भारी ।।२१।।

सुनिहि महावत बात हमारी।
बार-बार संकर्षन भाषत, लेत नाहिँ ह्याँ तैं गज टारी।
मेरौ कह्यौ मानि रे मूरख, गज समेत तोहिं डारौं मारी।
द्वारैं खरे रहे हैं कबके, जनि रे गर्व- करहि जिय भारी।
न्यारौ करि गयंद तू अजहूँ, जान देहि कै आपु सँभारी।
सूरदास प्रभु दुष्ट निकंदन, धरनी भार उतारनकारी ।।२२।।

तब रिस कियौ महावत भारि।
जौ नहिँ आज मारिहौं इनकौं, कंस डारिहै मारि।
आँकुस राखि कुम्भ पर करष्यौ, हलधर उठे हँकारि।
धायौ पवनहुँ तैं अति आतुर, धरनी दंत खँभारि।
तब हरि पूँछ गह्यौ दच्छिन कर, कँबुक फेरि सिर वारि।
पटक्यौ भूमि, फेरि नहिँ मटक्यौ, लीन्हौ दंत उपारि।
दुहुँ कर दुरद दसन इक इकछबि, सो निरखतिं पुरनारि।
सूरदास प्रभु सुर सुखदायक, मारयौ नाग पछारि ।।२३।।

एई सुत नंद अहीर के।
मारयौ रजक बसन सब लूटे, संग सखा बल बीर के।
काँधे धरि दोऊ जन आए, दंत कुबलयापीर के।
पसुपति मंडल मध्य मनौ, मनि छीरधि नीरधि नीर के।
उड़ि आए तजि हंस मात मनु, मानसरोवर तीर के।
सूरदास प्रभु ताप निवारन, हरन संत दुःख पीर के ।।२४।।

सुनौ हो बीर मुष्टिक चानूर सबै, हमहिं नृप पास नहिं जान दैहौ।
घरि राखे हमैं, नहीं बूझे तुम्हैं, जगत मैं कहा उपहास लैहौ।
सबै यहै कैहै भली मत तुम पै है, नंद के कुँवर दोउ मल्ल मारे।
यहै जस लेहुगे, जान नहिं देहुगे, खोजहीं परे अब तुम हमारे।

हम नहीं कहैं तुम मनहिं जौ यह बसी, कहत हौ कहा तौ करौ तैसी ।
सूर हम तन निरखि देखियै आपुकौं, बात तुम मनहिं यह बसी नैसी ।।२५।।
गह्यौ कर स्याम भुज मल्ल अपने धाइ, झटकि लीन्हौं तुरत पटकि धरनी ।
भटकि अति सब्द भयौ, खटक नृप के हियैं ,अटकि प्राननि परचौ चटक करनी ।
लटकि निरखन लग्यौ, मटक सब भूलि गइ, हटक करि देउँ इहै लागी ।
झटकि कुंडल निरखि, अटक ह्वै कै गयौ, गटकि सिल सौं रह्यौ मीच जागी ।
मल्ल जे जे रहे सबै मारे तुरत, असुर जोधा सबै तेउ सँहारे ।
धाइ दूतनि कह्यौ, मल्ल कोउ न रह्यो, सूर बलराम हरि सब पछारे ।।२६।।

नवल नंदनंदन रंगभूमि राजैं ।
स्याम तन, पीत पट मनौ घन मैं तड़ित, मोर के पंख माथैं बिराजैं ।
स्रवन कुंडल झलक मनौ चपला चमक, दृग अरुन कमल दल से बिसाला ।
भौंह सुंदर धनुष, बान सम सिर तिलक, केस कुंचित सोह भृंग माला ।
हृदय बनमाल, नूपुर चरन लाल, चलत गज चाल, अति बुधि बिराजै ।
हंस मानौ मानसर अरुन अंबुज सुभर, निरखि आनंद करि हरषि गाजैं ।
कुबलया मारि चानूर मुष्टिक पटकि, वीर दोउ कंध गज-दंत धारे ।
जाइ पहुँचे तहाँ कंस बैठ्यौ जहाँ, गए अवसान प्रभु के निहारे ।
ढाल तरवारि आगैं धरी रहि गई, महल कौ पंथ खोजत न पावत ।
लात कैं लगत सिर तैं गयौ मुकुट गिरि, केस गहि लै चले हरि खसावत ।
चारि भुजा धारि तेहिं चारु दरसन दियौ, चारि आयुध चहूँ हाथ लीन्हे ।
असुर तजि प्रान निरवान पद कौं गयौ, विमल मति भई प्रभु रूप चीन्हे ।
देखि यह पुहुप वर्षा करी सुरनि मिलि, सिद्ध गंधर्व जय धुनि सुनाई ।
सूर प्रभु अगम महिमा न कछु कहि परति, सुरनि की गति तुरत असुर पाई ।।२७।।

उग्रसेन कौं दियौ हरि राज ।
आनँद मगन सकल पुरबासी, चँवर डुलावत श्री ब्रजराज ।
जहाँ तहाँ तैं जादव आए, कंस डरनि जे गए पराइ ।
मागध सूत करत सब अस्तुति, जै जै जै श्री जादवराइ ।
जुग जुग बिरद यहै चलि आयौ, भए बलि के द्वारैं प्रतिहार ।
सूरदास प्रभु अज अविनासी, भक्तन हेत लेत अवतार ।।२८।।

तव बसुदेव हरषित गात ।
स्याम रामहिं कंठ लाए, हरषि देवै मात ।

अमर दिवि दुंदुभी दीन्हीं, भयौ जै जैकार।
दुष्ट दलि सुख दियौ संतनि, ये बसुदेव कुमार।
दुख गयौ बहि हर्ष पूरन, नगर के नर-नारि।
भयौ पूरब फल सँपूरन, लह्यौ सुत दैत्यारि।
तुरति बिप्रनि बोलि पठये, धेनु कोटि मँगाइ।
सूर के प्रभु ब्रह्मपूरन, पाइ हरषै राइ ॥२९॥

बसुद्यौ कुल-ब्यौहार बिचारि।
हरि हलधर कौं दियौ जनेऊ, करि षटरस ज्यौनारि।
जाके स्वास-उसाँस लेत मैं, प्रगट भये श्रुति चार।
तिंन गायत्री सुनी गर्ग सौं, प्रभु गति अगम अपार।
बिधि सौं धेनु दई बहु बिप्रनि, सहित सर्वऽलंकार।
जदकुल भयौ परम कौतूहल, जहँ तहँ गावतिं नार।
मातु देवकी परम मुदित ह्वै, देति निछावरि वारि।
सूरदास की यहै आसिषा, चिर जियौ नंदकुमार ॥३०॥

कुबरी पूरब तप करि राख्यौ।
आए स्याम भवन ताही कैं, नृपति महल सब नाख्यौ।
प्रथमहिं धनुष तोरि आवत हे, बीच मिली यह धाइ।
तिहिं अनुराग बस्य भए ताकैं, सो हित कह्यो न जाइ।
देव काज हरि आवन कहि गए, दीन्ही रूप अपार।
कृपा दृष्टि चितवतहीं श्री भइ, निगम न पावत पार।
हम तैं दूरि दीन के पाछैं, ऐसे दीनदयाल।
सूर सुरनि करि काज तुरतहीं, आवत तहाँ गोपाल ॥३१॥

कियौ सुर-काज गृह चले ताकैं।
पुरुष औ नारि कौ भेद भेदा नहीं, कुलिन अकुलीन अवतर्‌यौ काकैं।
दास दासी कौन, प्रभु निप्रभु कौन है, अखिल ब्रह्मांड इक रोम जाकैं।
भाव साँचौ हृदय जहाँ, हरि तहाँ हैं, कृपा प्रभु की माथ भाग वाकैं।
दास दासी स्याम भजनहु तैं जिये, रमा सम भई सो कृष्नदासी।
मिली वह सूर प्रभु प्रेम चंदन चरचि, कियौ जप कोटि,तप कोटि कासी ॥३२॥

मथुरा दिन-दिन अधिक बिराजै।
तेज प्रताप राइ केसौ कैं, तीनि लोक पर गाजै।

पग पग तीरथ कोटिक राजैं, मधि विश्रांति बिराजै।
करि अस्नान प्रात जमुना कौ, जनम मरन भय भाजै।
बिट्ठल बिपुल बिनोद बिहारन, ब्रज कौ बसिबौ छाजै।
सूरदास सेवक उनहीं कौ, कृपा सु गिरिधर राजै ।।३३।।

नन्द का ब्रज प्रत्यागमन

बेगि ब्रज कौं फिरिए नँदराइ।
हमहिं तुमहिं सुत तात कौ नातौ, ओर परचौ हैं आइ।
बहुत कियौ प्रतिपाल हमारौ, सो नहिं जी तैं जाइ।
जहाँ रहैं तहं तहाँ तुम्हारे, डारचौ जनि बिसराइ।
जननि जसोदा भेंटि सखा सब, मिलियौ कण्ठ लगाइ।
साधु समाज निगम जिनके गुन, मेरैं गनि न सिराइ।
माया मोह मिलन अरु बिछुरन, ऐसैं ही जग छाइ।
सूर स्याम के निठुर बचन सुनि, रहे नैन जल छाइ ।।३४।।

नंद बिदा होइ घोष सिधारौ।
बिछुरन मिलन रच्यौ बिधि ऐसौ, यह संकोच निवारौ।
कहियौ जाइ जसोदा आगैं, नैंन नीर जनि ढारौ।
सेवा करी जानि सुत अपनौ, कियौ प्रतिपाल हमारौ।
हमैं तुम्हैं अन्तर कछु नाहीं, तुम जिय ज्ञान बिचारौ।
सूरदास प्रभु यह बिनती है, उर जनि प्रीति बिसारौ ।।३५।।

गोपालराइ हौं न चरन तजि जैहौं।
तुमहिं छाँड़ि मधुबन मेरे मोहन, कहा जाइ ब्रज लैहौं।
कैहौं कहा जाइ जसुमति सौं, जब सन्मुख उठि ऐहै।
प्रात समय दधि मथत छाँड़ि कै, काहि कलेऊ दैहै।
बारह बरस दियौ हम ढीठौ, यह प्रताप बिनु जाने।
अब तुम प्रगट भए बसुद्यौ-सुत, गर्ग बचन परमाने।
रिपु हति काज सबै कत कीन्हौ, कत आपदा बिनासी।
डारि न दियौ कमल कर तैं गिरि, दबि मरते ब्रजवासी।
बासर संग सखा सब लीन्हे, टेरि न धेनु चरैहौ।
क्यौं रहिहैं मेरे प्रान दरस बिनु, जब संध्या नहिं ऐहौ।
ऊरध स्वाँस चरन गति थाकी, नैन नीर भरआइ।
सूर नंद बिछुरत की वेदनि, मो पै कही न जाइ ।।३६।।

(मेरे) मोहन तुमहिँ बिना नहिँ जैहौं।
महरि दौरि आगे जब ऐहै, कहा ताहि मैं कैहौं।
माखन मथि राख्यौ ह्वै है, तुम हेत, चलौ मेरे बारे।
निठुर भए मधुपुरी आइ कै, काहैं असुरनि मारे।
सुख पायौ बसुदेव देवकी, अरु सुख सुरनि दियौ।
यहै कहत नँद गोप सखा सब, बिदरन चहत हियौ।
तब माया जड़ता उपजाई, निठुर भए जदुराइ।
सूर नंद परमोधि पठाए, निठुर ठगौरी लाइ ।।३७।।

उठे कहि माधौ इतनी बात।
जिते मान सेवा तुम कीन्हौ, बदलौ दयौ न जात।
पुत्र हेत प्रतिपार कियौ तुम, जैसैं जननी तात।
गोकुल बसत हँसत खेलत मोहिँ, द्यौस न जान्यौ जात।
होहु बिदा घर जाहु गुसाईं, माने रहियौ नात।
ठाढ़ौं थक्यौ उतर नहिँ आवै, लोचन जल न समात।
भए बल-हीन खीन तन कंपित, ज्यौं बयारि बस पात।
धकधकात हिय बहुत सूर उठि, चले नंद पछितात ।।३८।।

बार-बार मग जोवति माता। व्याकुल बिनु मोहन बल-भ्राता।।
आवत देखि गोप नँद साथा। बिबि बालक बिनु भई अनाथा।।
धाई धेनु बच्छ ज्यौं ऐसैं। माखन बिना रहे घौं कैसैं।।
ब्रज-नारी हरषित सब धाईं। महरि जहाँ-तहँ आतुर आईं।।
हरषित मातु रोहिनी आई। उर भरि हलधर लेउँ कन्हाई।।
देखे नन्द गोप सब देखे। बल मोहन कौं तहाँ न पेखे।।
आतुर मिलन-काज ब्रज नारी। सूर मधुपुरी रहे मुरारी ।।३९।।

उलटि पग कैसैं दीन्हौ नंद।
छाँड़े कहाँ उभै सुत मोहन, धिक जीवन मतिमंद।
कै तुम धन-जोबन-मद माते, कै तुम छूटे बंद।
सुफलक-सुत बैरी भयो हमकौं, लै गयौ आनँदकंद।
राम कृष्न बिन कैसैं जीजै, कठिन प्रीति कै फंद।
सूरदास मैं भई अभागिन, तुम बिनु गोकुलकंद ।।४०।।

दोउ ढोटा गोकुल-नायक मेरे।
काहैं नंद छाँड़ि तुम आए, प्रान-जिवन सब केरे।

तिनकैं जात बहुत दुख पायौ, रोर परो इहिं खेरे।
गोसुत गाइ फिरत हैं दहुँ दिसि, वै न चरैं तृन घेरे।
प्रीति न करी राम दसरथ की, प्रान तजे बिनु हेरैं।
सूर नंद सौं कहति जसोदा, प्रबल पाप सब मेरैं ॥४१॥

नंद कहौ हो कहँ छाँड़े हरि।
लै जु गए जैसैं तुम ह्याँतैं, ल्याए किन वैसहिं आगैं धरि।
पालि पोषि मैं किए सयाने, जिन मारे गज मल्ल कंस अरि।
अब भए तात देवकी बसुद्यौ, बाँह पकरि ल्याये न न्याव करि।
देखौ दूध दही घृत माखन, मैं राखे सब वैसैं ही धरि।
अब को खाइ नंदनंदन बिनु, गोकुल मनि मथुरा जु गए हरि।
श्रीमुख देखन कौ ब्रजवासी, रहे ते घर आँगन मेरैं भरि।
सूरदास प्रभु के जु सँदेसे, कहे महर आँसू गदगद करि ॥४२॥

जसुदा कान्ह कान्ह कै बूझै।
फूटि न गईं तुम्हारी चारौं, कैसैं मारग सूझै।
इक तौ जरी जात बिनु देखैं, अब तुम दीन्हौ फूंकि।
यह छतिया मेरे कान्ह कुँवर बिनु, फटि न भई द्वै टूक।
धिक तुम धिक ये चरन अहौ पति, अध बोलत उठि धाए।
सूर स्याम बिछुरन की हम पै, दैन बधाई आए ॥४३॥

नंद हरि तुमसौं कहा कह्यौ।
सुनि सुनि निठुर बचन मोहन के, कैसैं हृदय रह्यौ।
छाँड़ि सनेह चले मंदिर कत, दौरि न चरन गह्यौ।
दरकि न गई बज्र की छाती, कत यह सूल सह्यौ।
सुरति करत मोहन की बातैं, नैननि नीर बह्यौ।
सुधि न रही अति गलित गात भयौ, मन डसि गयौ अह्यौ।
उन्हैं छाँड़ि गोकुल कत आए, चाखन दूध दह्यौ।
तजे न प्रान सूर दसरथ लौं, हुतौ जन्म निबह्यौ ॥४४॥

कहाँ रह्यौ मेरौ मनमोहन।
वह मूरति जिय तैं नहिं बिसरति, अंग अंग सब सोहन।
कान्ह बिना गौवैं सब ब्याकुल, को ल्यावै भरि दोहन।
माखन खात खवावत ग्वालनि, सखा लिए सब गोहन।

जब वै लीला सुरति करति हौं, चित चाहत उठि जोहन।
सूरदास-प्रभु के बिछुरे तैं, मरियत है अति छोहन ॥४५॥

गोपी वचन तथा ब्रज दशा

ग्वारनि कही ऐसी जाइ।
भए हरि मधुपुरी राजा, बड़े बंस कहाइ।
सूत मागध बदत बिरदनि, बरनि, बसुद्यौ तात।
राज-भूषन अंग भ्राजत, अहिर कहत लजात।
मातु पितु बसुदेव दैवै, नंद जसुमति नाहिं।
यह सुनत जल नैन ढारत, मींजि कर पछताहिं।
मिली कुबिजा मलै लै कै, सो भई अरधंग।
सूर प्रभु बस भए ताकैं, करत नाना रंग ॥४६॥

कैसैं री यह हरि करिहैं।
राधा कौं तजिहैं मनमोहन, कहा कंस दासी धरिहैं।
कहा कहति वह भइ पटरानी, वै राजा भए जाइ उहाँ।
मथुरा बसत लखत नहिं कोऊ, को आयौ को रहत कहाँ।
लाज बेंचि कूवरी बिसाही, संग न छाँड़त एक घरी।
सूर जाहि परतीति न काहू, मन सिहात यह करनि करी ॥४७॥

कुबिजा नहिं तुम देखी है।
दधि बेचन जब जाति मधुपुरी, मैं नीकैं करि पेषी है।
महल निकट माली की बेटी, देखत जिहिं नर-नारि हँसैं।
कोटि बार पीतरि जौ दाहौ, कोटि बार जो कहा कसैं।
सुनियत ताहि सुन्दरी कीन्ही, आपु भए ताकौं राजी।
सूर मिलै मन जाहि जाहि सौं, ताकौ कहा करै काजी ॥४८॥

कोटि करौ तनु प्रकृति न जाइ।
ए अहीर वह दासी पुर की, बिधिना जोरी भली मिलाइ।
ऐसेन कौं मुख नाउँ न लीजै, कहा करौं कहि आवत मोहिं।
स्यामहिं दोष किधौं कुबिजा कौ, यहै कहौ मैं बूझति तोहिं।
स्यामहिं दोष कहा कुबिजा कौ, चेरी चपल नगर उपहास।
टेढ़ी टेकि चलति पग धरनी, यह जानै दुख सूरजदास ॥४९॥

कंस बध्यौ कुबिजा कैं काज।
और नारि हरि कौं न मिली कहुँ, कहा गँवाई लाज।

जैसैं काग हंस की संगति, लहसुन संग कपूर।
जैसैं कंचन काँच बराबरि, गेरू काम सिंदूर।
भोजन साथ सूद्र बाम्हन के, तैसौ उनकौ साथ।
सुनहु सूर हरि गाइ चरैया, अब भए कुबिजानाथ ॥५०॥

वै कह जानैं पीर पराई।
सुंदर स्याम कमल-दल लोचन, हरि हलधर के भाई।
मुख मुरली सिर मोर पखौवा, बन बन धेनु चराई।
जे जमुना जल रंग रँगे हैं, अजहुँ न तजत कराई।
वहई देखि कूबरी भूले, हम सब गईं बिसराई।
सूरज चातक बूँद भई है, हेरत रहे हिराई ॥५१॥

तब तैं मिटे सब आनंद।
या ब्रज के सब भाग संपदा, लै जु गए नँदनंद।
विह्वल भई जसोदा डोलति, दुखित नंद उपनंद।
धेनु नहीं पय स्रवतिं रुचिर मुख, चरतिं नहीं तृण कंद।
विषम बियोग दहत उर सजनी, बाढ़ि रहे दुख दंद।
सीतल कौन करै री माई, नाहिं इहाँ ब्रजचंद।
रथ चढ़ि चले गहे नहिं काहू, चाहि रहीं मतिमंद।
सूरदास अब कौन छुड़ावै, परे बिरह कैं फंद ॥५२॥

इक दिन नंद चलाई बात।
कहत सुनत गुन राम कृष्न कै, ह्वै आयौ परभात।
वैसैंहि भोर भयौ जसुमति कौ, लोचन जल न समात।
सुमिरि सनेह बिहरि उर अंतर, ढरि आवत ढरि जात।
जद्यपि वै बसुदेव देवकी, हैं निज जननी तात।
बार एक मिलि जाहु सूर प्रभु, धाई हू कैं नात ॥५३॥

चूक परी हरि की सेवकाई।
यह अपराध कहाँ लौं बरनौं, कहि कहि नंद महर पछिताई।
कोमल चरन-कमल कंटक कुस, हम उन पै बन गाइ चराई।
रंचक दधि कै काज जसोदा, बाँधे कान्ह उलूषन लाई।
इंद्र-प्रकोप जानि ब्रज राखे, बरुन फाँस तैं मोहिं मुकराई।
अपने तन-धन-लोभ कंस-डर, आगैं कै दीन्हे दोउ भाई।

निकट बसत कबहुँ न मिलि आयौ, इते मान मेरी निठुराई।
सूर अजहुँ नातौ मानत हैं, प्रेम सहित करैं नंद-दुहाई ॥५४॥
लै आवहु गोकुल गोपालहिं।
पाइँनि परि क्यौं हूँ बिनती करि, छल बल बाहु बिसालहिं।
अब की बार नैंकु दिखरावहु, नंद आपने लालहिं।
गाइनि गनत ग्वार गोसुत सँग, सिखवत बैन रसालहिं।
जद्यपि महाराज सुख संपति, कौन गनै मनि लालहिं।
तदपि सूर वै छिन न तजत हैं, वा घुँघची की मालहिं ॥५५॥
हौं तौ माई मथुरा ही पै जैहौं।
दासी ह्वै बसुदेव राइ की, दरसन देखत रैहौं।
राखि राखि एते दिवसनि मोहिं, कहा कियौ तुम नीकौ।
सोऊ तौ अक्रूर गए लै, तनक खिलौना जी कौ।
मोहिं देखि कै लोग हसैंगे, अरु किन कान्ह हँसै।
सूर असीस जाई दैहौं, जनि न्हातहु बार खसै ॥५६॥
पंथी इतनी कहियौ बात।
तुम बिनु इहाँ कुँवर वर मेरे, होत जिते उतपात।
बकी अघासुर टरत न टारे, बालक बनहिं न जात।
ब्रज पिंजरी रुधि मानौ राखे, निकसन कौं अकुलात।
गोपी गाइ सकल लघु दीरघ, पीत बरन कृस गात।
परम अनाथ देखियत तुम बिनु, केहिं अवलंबै तात।
कान्ह कान्ह कै टेरत तब धौं, अब कैसैं जिय मानत।
यह व्यवहार आजु लौं है ब्रज, कपट नाट छल ठानत।
दसहूँ दिसि तैं उदित होत हैं, दावानल के कोट।
आखिनि मूँदि रहत सनमुख ह्वै, नाम-कवच दै ओट।
ए सब दुष्ट हते हरि जेते, भए एकहीं पेट।
सत्वर सूर सहाइ करौ अब, समुझि पुरातन हेट ॥५७॥
सँदेसौ देवकी सौं कहियौ।
हौं तौ धाइ तिहारे सुत की, मया करत ही रहियौ।
जदपि टेव तुम जानतिं उनकी, तऊ मोहिं कहि आवै।
प्रात होत मेरे लाल लड़ैतैं, माखन रोटी भावै।

तेल उबटनौ अरु तातौ जल, ताहि देखि भजि जाते।
जोइ जोइ माँगत सोइ सोइ देती, क्रम क्रम करि कै न्हाते।
सूर पथिक सुनि मोहिं रैनि दिन, बढ़्यौ रहत उर सोच।
मेरौ अलक लड़ैतौ मोहन, ह्वैहै करत सँकोच ॥५८॥
मेरे कुँवर कान्ह बिनु सब कुछ, वैसैहिं धर्‌यौ रहै।
को उठि प्रात होत लै माखन, को कर नेति गहै।
सूने भवन जसोदा सुत के, गुन गुनि सूल सहै।
दिन उठि घर घेरत ही ग्वारिनि, उरहन कोउ न कहै।
जो ब्रज मैं आनंद हुतौ, मुनि मनसा हू न गहै।
सूरदासी स्वामी बिनु गोकुल, कौड़ी हू न लहै ॥५९॥

गोपी विरह

चलत गुपाल के सब चले।
यह प्रीतम सौं प्रीति निरंतर, रहे न अर्ध पले।
धीरज पहिल करी चलिबैं की, जैसी करत भले।
धीर चलत मेरे नैननि देखे, तिहिं छिनि आँसु हले।
आँसु चलत मेरी बलयनि देखे, भए अंग सिथिले।
मन चलि रह्यौ हुतौ पहिलैं ही, चले सबै बिमले।
एक न चलै प्रान सूरज प्रभु, अस लेहु साल सले ॥६०॥
करि गए थोरे दिन की प्रीति।
कहँ वह प्रीति कहाँ यह बिछुरनि, कहँ मधुबन की रीति।
अब की बेर मिलौ मनमोहन, बहुत भई बिपरीति।
कैसैं प्रान रहत दरसन बिनु, मनहु गए जुग बीति।
कृपा करहु गिरिधर हम ऊपर, प्रेम रह्यौ तन जीति।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन बिनु, भईं भुस पर की भीति ॥६१॥
प्रीति करि दीन्ही गरैं छुरी।
जैसैं बधिक चुगाइ कपट-कन, पाछैं करत बुरी।
मुरली मधुर चेप काँपा करि, मोर चंद्र फँदवारि।
बंक बिलोकनि लगी, लोभ बस, सकी न पंख पसारि।
तरफत छाँड़ि गए मधुबन कौं, बहुरि न कीन्ही सार।
सूरदास प्रभु संग कल्पतरु, उलटि न बैठी डार ॥६२॥

नाथ अनाथनि की सुधि लीजै।
गोपी, ग्वाल, गाइ, गोसुत सब, दीन मलीन दिनहिं दिन छीजै।
नैननि जलधारा बाढ़ी अति, बूड़त ब्रज किन कर गहि लीजै।
इतनी बिनती सुनहु हमारी, बारक हूँ पतिया लिखि दीजै।
चरन कमल दरसन नव नवका, करुनासिंधु जगत जस लीजै।
सूरदास प्रभु आस मिलन की, एक बार आवन ब्रज कीजै।।६३।।

देखियत कालिंदी अति कारी।
अहो पथिक कहियौ उन हरि सौं, भयी बिरह जुर जारी।
गिरि-प्रजंक तैं गिरति धरनि धसि, तरँग तरफ तन भारी।
तट बारू उपचार चूर, जल-पूर प्रस्वेद पनारी।
बिगलित कच कुस काँस कुल पर, पंक जू काजल सारी।
भौंर भ्रमत अति फिरति भ्रमित गति, निसि दिन दीन दुखारी।
निसि दिन चकई पिय जु रटति है, भई मनौ अनुहारी।
सूरदास-प्रभु जो जमुना गति, सो गति भई हमारी।।६४।।

परेखौ कौन बोल कौ कीजै।
ना हरि जाति न पाँति हमारी, कहा मानि दुख लीजै।
नाहिंन मोर-चन्द्रिका माथैं, नाहिंन उर बनमाल।
नहिं सोभित पहुँपनि के भूषन, सुन्दर स्याम तमाल।
नंद-नँदन गोपी-जन-बल्लभ, अब नहिं कान्ह कहावत।
बासुदेव, जादवकुल-दीपक, बन्दी जन बरनावत।
बिसरचो सुख नातौ गोकुल कौ, और हमारे अंग।
सूर स्याम वह गई सगाई, वा मुरली कैं संग।।६५।।

अब वै बातैं उलटि गईं।
जिन बातनि लागत सुख आली, तेऊ दुसह भईं।
रजनी स्याम स्याम सुन्दर सँग, अरु पावस की गरजनि।
सुख समूह की अवधि माधुरी, पिय रस बस की तरजनि।
मोर पुकार गुंहार कोकिला, अलि गुंजार सुहाई।
अब लागति पुकार दादुर सम, बिनही कुँवर कन्हाई।
चन्दन चन्द समीर अगिन सम, तनहिं देत दव लाई।
कालिन्दी अरु कमल कुसुम सब, दरसन ही दुखदाई।

सरद बसंत सिसिर अरु ग्रीषम, हिम-रितु की अधिकाई।
पावस जरैं सूर के प्रभु बिनु, तरफत रैन बिहाई ॥६६॥

मिलि बिछुरन की बेद न न्यारी।
जाहि लगै सोई पै जानै, बिरह-पीर अति भारी।
जब यह रचना रची बिधाता, तबहीं क्यौं न सँभारी।
सूरदास-प्रभु काहैं जिवाई, जनमत ही किन मारी ॥६७॥

मधुबन तुम क्यौं रहत हरे।
बिरह बियोग स्याम सुन्दर के, ठाढ़े क्यौं न जरे।
मोहन बेनु बजावत द्रुम तर, साखा टेकि खरे।
मोहे थावर अरु जड़ जंगम, मुनि जन ध्यान टरे।
वह चितवनि तू मन न धरत है, फिरि फिरि पुहुप धरे।
सूरदास प्रभु बिरह दवानल, नख सिख लौं न जरे ॥६८॥

बहुरौ देखिवौ इहिं भाँति।
असन बाँटत खात बैठे, बालकन की पाँति।
एक दिन नवनीत चोरत, हौं रहौ दूरि जाइ।
निरखि मम छाया भजे, मैं दौरि पकरे धाइ।
पोंछि कर मुख लई कनियाँ, तब गई रिस भागि।
वह सुरति जिय जाति नाहीं, रहे छाती लागि।
जिन घरनि वह सुख बिलोक्यौ, ते लगत अब खान।
सूर बिनु ब्रजनाथ देखे, रहत पापी प्रान ॥६९॥

कब देखौं इहिं भाँति कन्हाई।
मोरनि के चँदवा माथे पर, काँध कामरी लकुट सुहाई।
बासर के बीतैं सुरभिन सँग, आवत एक महाछवि पाई।
कान अँगुरिया घालि निकट पुर, मोहन राग अहीरी गाई।
क्यौं हुं न रहत प्रान दरसन बिनु, अब कित जतन करै री माई।
सूरदास स्वामी नहिं आए, बदि जु गए अवध्यौऽब भराई ॥७०॥

गोपालहिं पावौं धौं किहिं देस।
सिंगी मुद्रा कर खप्पर लै, करिहौं जोगिनि भेस।
कंथा पहिरि बिभूति लगाऊँ, जटा बँधाऊँ केस।
हरि कारन गोरखहिं जगाऊँ, जैसैं स्वाँग महेस।

तन मन जारौं भस्म चढ़ाऊँ, बिरहा के उपदेस।
सूर स्याम बिनु हम हैं ऐसी, जैसैं मनि बिनु सेस ॥७१॥

फिरि ब्रज बसौ गोकुलनाथ।
अब न तुमहिं जगाइ पठवैं, गोधननि के साथ।
बरजैं न माखन खात कबहूँ, दह्यौ देत लुटाइ।
अब न देहिं उराहनौ, नँद-घरनि आगैं जाइ।
दौरि दावरि देहिं नहिं, लकुटी जसोदा पानि।
चोरी न देहिं उघारिककैं, औगुन न कहिहैं आनि।
कहिहैं न चरननि देन जावक, गुहन बेनी फूल।
कहिहैं न करन सिँगार कबहूँ, बसन जमुना कूल।
करिहैं न कबहूँ मान हम, हठिहैं न माँगत दान।
कहिहैं न मृदु मुरली बजावन, करन तुमसौं गान।
देहु दरसन नंद-नंदन, मिलन की जिय आस।
सूर हरि के रूप कारन, मरत लोचन प्यास ॥७२॥

काहैं पीठि दई हरि मोसौं।
तुमही पीठि भावते दीन्हौ, कौर कहा कहि कोसौं।
मिलि बिछुरे की पीर सखो री, राम सिया पहिचाने।
मिलि बिछुरे की पीर सखो री, पय पानी उर आने।
मिलि बिछुरे की पीर कठिन है, कहैं न कोऊ मानै।
मिलि बिछुरे की पीर सखी री, बिछुरचौ होइ सो जानै।
बिछुरे रामचंद्र औ दसरथ, प्रान तजे छिन माहीं।
बिछुरचौ पात गिरचौ तरुवर तैं, फिरि न लगै उहि ठाहीं।
बिछुरचौ हंस काय घटहूँ तैं, फिरि न आव घट माहीं।
मैं अपराधिनि जीवत बिछुरी, बिछुरचौ जीवत नाहीं।
नाद कुरंग मीन जल बिछुरे, होइ कीट जरि खेहा।
स्याम बियोगिनि अतिहिं सखी री, भई साँवरी देहा।
गरजि गरजि बादर उनये हैं, बूँदनि बरषत मेहा।
सूरदास कहु कैसैं निबहै, एक ओर कौ नेहा ॥७३॥

बारक जाइयौ मिलि माधौ।
को जानै तन छूट जाइगौ, सूल रहै जिय साधौ।

पहुनैहुँ नंद बबा के आवहु, देखि लेउँ पल आधौ।
मिलैं ही मैं विपरीत करी बिधि, होत दरस कौ बाधौ।
सो सुख शिव सनकादि न पावत, जो सुख गोपिन लाधौ।
सूरदास राधा बिलपति है, हरि कौ रूप अगाधौ।।७४।।

सखी इन नैननि तैं घन हारे।
बिनहीं रितु बरषत निसि बासर, सदा मलिन दोउ तारे।
ऊरध स्वास समीर तेज अति, सुख अनेक द्रुम डारे।
बदन सदन करि बसे बचन खग, दुख पावस के मारे।
दुरि दुरि बूँद परत कंचुकि पर, मिलि अंजन सौं कारे।
मानौ परनकुटी सिव कीन्ही, बिबि मूरति धरि न्यारे।
घुमरि घुमरि बरषत जल छाँड़त, डर लागत अँधियारे।
बूड़त ब्रजहिं सूर को राखै, बिनु गिरिवरधर प्यारे।।७५।।

निसि दिन बरषत नैन हमारे।
सदा रहति बरषा रितु हम पर, जब तैं स्याम सिधारे।
दृग अंजन न रहत निसि बासर, कर कपोल भए कारे।
कंचुकि-पट सूखत नहिं कबहूँ, उर बिच बहत पनारे।
आँसू सलिल सबै भइ काया, पल न जात रिस टारे।
सूरदास प्रभु यहै परेखौ, गोकुल काहैं बिसारे।।७६।।

हरि दरसन कौं तरसति अँखियाँ।
झाँकति झखतिं झरोखा बैठी, कर मीड़तिं ज्यौं मखियाँ।
बिछुरी बदन-सुधानिधि-रस तैं, लगतिं नहीं पल पँखियाँ।
इकटक चितवतिं उड़ि न सकतिं, जनु थकित भईं लखि सखियाँ।
बार-बार सिर धुनतिं बिसूरतिं, बिरह ग्राह जनु भखियाँ।
सूर सुरूप मिलैं तैं जीवहिं, काट किनारे नखियाँ।।७७।।

(मेरे) नैना बिरह की बेलि बई।
सींचत नैन-नीर के सजनी, मूल पताल गई।
बिगसित लता सुभाइ आपनैं, छाया सघन भई।
अब कैसैं निरवारौं सजनी, सब तन पसरि छई।
को जानै काहू के जिय की, छिन छिन होत नई।
सूरदास स्वामी के बिछुरैं, लागी प्रेम जई।।७८।।

ब्रज बसि काके बोल सहौं।
इन लोभी नैननि के काजैं, परबस भइ जो रहौं।
बिसरि लाज गइ सुधि नहिं तन की, अब धौं कहा कहौं।
मेरे जिय मैं ऐसी आवति, जमुना जाइ बहौं।
इक बन ढूँढ़ि सकल बन ढूँढ़ौं, कहूँ न स्याम लहौं।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस कौं, इहिं दुख अधिक दहौं ।।७९।।

हो, ता दिन कजरा मैं दैहौं।
जा दिन नंद-नँदन के नैननि, अपने नैन मिलैहौं।
सुनि री सखी यहै जिय मेरैं, भूलि न और चितैहौं।
अब हठ सूर यहै ब्रत मेरौ, कौंकिर खै मरि जैहौं ।।८०।।

देखि सखी उत है वह गाउँ।
जहाँ बसत नँदलाल हमारे, मोहन मथुरा नाउँ।
कालिंदी कैं कूल रहत हैं, परम मनोहर ठाउँ।
जौ तन पंख होइँ सुनि सजनी, अबहिं उहाँ उड़ि जाउँ।
होनी होइ होइ सो अबही, इहिं ब्रज अन्न न खाउँ।
सूर नंद-नंदन सौं हित करि, लोगनि कहा डराउँ ।।८१।।

लिखि नहिं पठवत हैं द्वै बोल।
द्वै कौड़ी के कागद मसि कौ, लागत है बहु मोल ?
हम इहि पार, स्याम पैले तट, बीच बिरह कौ जोर।
सूरदास प्रभु हमरे मिलन कौं, हिरदै कियौ कठोर ।।८२।।

सुपनैं हरि आए हौं किलकी।
नींद जु सौति भई रिपु हमकौं, सहि न सकी रति तिल की।
जौ जागौं तौ कोऊ नाहीं, रोके रहति न हिलकी।
तन फिरि जरनि भई नख सिख तैं, दिया बाति जनु मिलकी।
पहिली दसा पलटि लीन्ही है, त्वचा तचकि तनु पिलकी।
अब कैसैं सहि जाति हमारी, भई सूर गति सिल की ।।८३।।

पिय बिनु नागिनि कारी रात।
जौ कहुँ जामिनि उबति जुन्हैया, डसि उलटि ह्वै जात।
जंत्र न फुरत मंत्र नहिं लागत, प्रीति सिरानी जात।
सूर स्याम बिनु बिकल बिरहिनी, मुरि मुरि लहरैं खात ।।८४।।

मोकौं माई जमुना जम ह्वै रही।
कैसैं मिलौं स्यामसुंदर कौं, बैरिनि बीच बही।
कितकि बीच मथुरा अरु गोकुल, आवत हरि जु नहीं।
हम अबला कछु मरम न जान्यौ, चलत न फेंट गही।
अब पछितात‍ि प्रान दुख पावत, जाति न बात कही।
सूरदास प्रभु सुमिरि-सुमिरि गुन, दिन-दिन सूल सही ॥८५॥

नैन सलोने स्याम, बहुरि कब आवहिंगे।
वै जो देखत राते राते, फूलनि फूली डार।
हरि बिनु फूलझरी सी लागत, झरि झरि परत अँगार।
फूल बिनन नहिं जाउँ सखी री, हरि बिनु कैसे फूल।
सुनि री सखि मोहिं राम दुहाई, लागत फूल त्रिसूल।
जब मैं पनघट जाउँ सखी री, वा जमुना कैं तीर।
भरि-भरि जमुना उमड़ि चलति है, इन नैननि कैं नीर।
इन नैननि कैं नीर सखी री, सेज भई घरनाउँ।
चाहति हौं ताही पै चढ़ि कै, हरि जू कैं ढिग जाउँ।
लाल पियारे प्रान हमारे, रहे अधर पर आइ।
सूरदास प्रभु कुंज-बिहारी, मिलत नहीं ज्यौं धाइ ॥८६॥

प्रीति करि काहू सुख न लह्यौ।
प्रीति पतंग करी पावक सौं, आपै प्रान दह्यौ।
अलि-सुत प्रीति करी जल-सुत सौं, संपुट माँझ गह्यौ।
सारँग प्रीति करी जु नाद सौं, सन्मुख बान सह्यौ।
हम जौ प्रीति करी माधव सौं, चलत न कछू कह्यौ।
सूरदास प्रभु बिनु दुख पावत, नैननि नीर बह्यौ ॥८७॥

प्रीति तौ मरिबौऊ न बिचारै।
निरखि पतंग ज्योति-पावक ज्यौं, जरत न आपु सँभारै।
प्रीति कुरंग नाद मन मोहित, बधिक निकट ह्वै मारै।
प्रीति परेवा उड़त गगन तैं, गिनत न आपु सँभारै।
सावन मास पपीहा बोलत, पिय पिय करि जु पुकारै।
सूरदास-प्रभु दरसन कारन, ऐसो भाँति बिचारै ॥८८॥

जनि कोउ काहू कै बस होहि।
ज्यौं चकई दिनकर बस डोलत, मोहिं फिरावत मोहि।

हम तौ रीझि लट्टू भई लालन, महा प्रेम तिय जानि।
बंधन अवधि भ्रमतिं निसि-बासर, को सुरझावत आनि।
उरझे संग अंग अंगनि प्रति, बिरह बेलि की नाई।
मुकुलित कुसुम नैन निद्रा तजि, रूप सुधा सियराई।
अति आधीन-हीन-मति ब्याकुल, कहँ लौं कहौं बनाई।
ऐसी प्रीति-रीति रचना पर, सूरदास बलि जाई।।८९।।

हरि परदेस बहुत दिन लाए।
कारी घटा देखि बादर की, नैननि नीर भरि आए।
बीर बटाऊ पंथी हौ तुम, कौन देस तैं आए।
यह पाती हमरी लै दीजौ, जहाँ साँवरे छाए।
दादुर मोर पपीहा बोलत, सोवत मदन जगाए।
सूर स्याम गोकुल तैं बिछुरे, आपुन भए पराए।।९०।।

ये दिन रूसिबे के नाहीं।
कारौ घटा पौन झकझोरै, लता तरुन लपटाहीं।
दादुर मोर चकोर मधुप पिक, बोलत अंमृत बानी।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, बैरनि रितु नियरानी।।९१।।

अब बरषा कौ आगम आयौ।
ऐसे निठुर भए नँद-नंदन, संदेसौ न पठायौ।
बादर घेरि उठे चहूँ दिसि तैं, जलधर गरजि सुनायौ।
एकै सूल रही मेरैं जिय, बहुरि नहीं ब्रज छायौ।
दादुर मोर पपीहा बोलत, कोकिल सब्द सुनायौ।
सूरदास के प्रभु सौं कहियौ, नैननि है झर लायौ।।९२।।

सँदेसनि मधुबन कूप भरे।
अपने तौ पठवत नहिं मोहन, हमरे फिरि न फिरे।
जिते पथिक पठए मधुबन कौं, बहुरि न सोध करे।
कै वै स्याम सिखाइ प्रमोधे, कै कहुँ बीच मरे।
कागद गरे मेघ, मसि खूटी, सर दव लागि जरे।
सेवक सूर लिखन कौ आँधौ, पलक कपाट अरे।।९३।।

ब्रज पर बदरा आए गाजन।
मधुबन को पठए सुनि सजनी, फौज मदन लाग्यौ साजन।

ग्रीवा रंध्र नैन चातक जल, पिक मुख बाजे बाजन।
चहुँदिसि तैं तन बिरहा घेरयौ, कैसैं पावति भाजन।
कहियत हुते स्याम पर पीरक, आए संकट काजन।
सूरदास श्रीपति की महिमा, मथुरा लागे राजन।।६४।।

बहुरि हरि आवहिंगे किहि काम।
रितु बसंत अरु ग्रीषम बीते, बादर आए स्याम।
छिन मंदिर छिन द्वारैं ठाढ़ी, यौं सूखति हैं घाम।
तारै गनत गगन के सजनी, बीतैं चारौ जाम।
औरौ कथा सबै बिसराई, लेत तुम्हारौ नाम।
सूर स्याम ता दिन तैं बिछुरे, अस्थि रहै कै चाम।।६५।।

किधौं घन गरजत नहिं उन देसनि।
किधौं हरि हरषि इंद्र हठि बरजे, दादुर खाए सेषनि।
किधौं उहिं देस बगनि मग छाँड़े, घरनि न बूँद प्रबेसनि।
चातक मोर कोकिला उहिं बन, बधिकनि बधे बिसेषनि।
किधौं उहिं देस बाल नहिं झूलतिं, गावतिं सखि न सुदेसनि।
सूरदास प्रभु पथिक न चलहीं, कासौं कहौं सँदेसनि।।६६।।

आजु घन स्याम की अनुहारि।
आए उनइ साँवरे सजनी, देखि रूप की आरि।
इंद्र धनुष मनु पीत बसन छबि, दामिनि दसन बिचारि।
जनु बगपाँति माल मोतिनि की, चितवति चित्त निहारि।
गरजत गगन गिरा गोबिंद मनु, सुनत नयन भरे बारि।
सूरदास गुन सुमिरि स्याम के, बिकल भईं ब्रजनारि।।६७।।

हमारे माई मोरवा बैर परे।
घन घरजत बरज्यौ नहिं मानत, त्यौं त्यौं रटत खरे।
करि करि प्रगट पंख हरि इनके, लै लै सीस धरे।
याही तैं न बदत बिरहिनि कौं, मोहन ढीठ करे।
को जानै काहे तैं सजनी, हमसौं रहत अरे।
सूरदास परदेस बसे हरि, ये बन तैं न टरे।।६८।।

बहुरि पपीहा बोल्यौ माई।
नींद गई चिंता चित बाढ़ी, सुरति स्याम की आई।

सावन मास मेघ की बरषा, हौं उठि आँगन आई।
चहूँ दिसि गगन दामिनी कौंधति, तिहिँ जिय अधिक डराई।
काहूँ राग मलार अलाप्यौ, मुरलि मधुर सुर गाई।
सूरदास बिरहिनि भइ ब्याकुल, धरनि परी मुरझाई ॥९९॥

सखी री चातक मोहिँ जियावत।
जैसैंहि रैनि रटति हौं पिय पिय, तैसैंहि वह पुनि गावत।
अतिहिँ सुकंठ, दास प्रीतम कैं, तारू जीभ न लावत।
आपुन पियत सुधा-रस अंमृत, बोलि बिरहिनी प्यावत।
यह पंछी जु सहाइ न होतौ, प्रान महा दुख पावत।
जीवन सुफल सूर ताही कौ, काज पराए आवत ॥१००॥

कोकिल हरि कौ बोल सुनाउ।
मधुबन तैं उपटारि स्याम कौं, इहिं ब्रज कौं लै आउ।
जा जस कारन देत सयाने, तन मन धन सब साज।
सुजस बिकात बचन के बदलैं, क्यौं न बिसाहतु आज।
कीजै कछु उपकार परायौ, इहै सयानौ काज।
सूरदास पुनि कहँ यह अवसर, बिनु बसन्त रितुराज ॥१०१॥

अब यह बरषौ बीति गई।
जनि सोचहि, सुख मानि सयानी, भली रितु सरद भई।
फुल्ल सरोज सरोवर सुन्दर, नव बिधि नलिनि नई।
उदित चारु चन्द्रिका किरन, उर अंतर अंमृत मई।
घटी घटा अभिमान मोह मद, तमिता तेज हई।
सरिता संजम स्वच्छ सलिल सब, फाटी काम कई।
यहै सरद संदेस सूर सुनि, करुना कहि पठई।
यह सुनि सखी सयानी आईं, हरि-रति अवधि हई ॥१०२॥

सरद समै हू स्याम न आए।
को जानै काहे तैं सजनी, किहिँ बैरिनि बिरमाए।
अमल अकास कास कुसुमिति छिति, लच्छन स्वच्छ जनाए।
सर सरिता सागर जल-उज्ज्वल, अति कुल कमल सुहाए।
अहि मयंक, मकरंद कंज अलि, दाहक गरल जिवाए।
प्रीतम रंग संग मिलि सुंदरि, रचि सचि सींचि सिराए।

सूनी सेज तुषार जमत चिर, बिरह सिन्धु उपजाए।
अब गइ आस सूर मिलिबे की, भए ब्रजनाथ पराए ।।१०३।।
दूरि करहि बीना कर धरिबौ।
रथ थाक्यौ, मानौ मृग मोहे, नाहिँन होत चंद्र कौ ढरिबौ।
बीतै जाहि सोइ पै जानै, कठिन सु प्रेम पास कौ परिबौ।
प्राणनाथ संगहिँ तैँ बिछुरे, रहत न नैन नीर कौ झरिबौ।
सीतल चंद अगिन सम लागत,कहिए धीर कौन बिधि धरिबौ।
सूर सु कमलनयन के बिछुरैँ, झूठौ सब जतननि कौ करिबौ ।।१०४।।
कोउ माई बरजै री या चंदहिँ।
अहि हीँ क्रोध करत है हम पर, कुमुदिनि कुल आनन्दहिँ।
कहाँ कहौ बरषा रबि तमचुर, कमल बलाहक कारे।
चलत न चपल रहत थिर कै रथ, बिरहिनि के तन जारे।
निंदतिँ सैल उदधि पन्नग कौ, श्रीपति कमठ कठोरहिँ।
देतिँ असीस जरा देवी कौँ, राहु केतु किन जोरहिँ।
ज्यौँ जल-हीन मीन तन तलफतिँ, ऐसी गति ब्रजबालहिँ।
सूरदास अब आनि मिलावहु, मोहन मदन गुपालहिँ ।।१०५।।
माई मोकौँ चंद लग्यौ दुख दैन।
कहँ वै स्याम कहाँ वै बतियाँ, कहँ वै सुख की रैन।
तारे गनत गनत हौँ हारी, टपकन लागे नैन।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, बिरहिनि कौँ नहिँ चैन ।।१०६।।
अब या तनहिँ राखि कह कीजे।
सुनि री सखी स्याम सुंदर बिनु, बाँटि विषम विष पीजे।
कै गिरिऐ गिरि चढ़ि सुनि सजनी, सीस संकरहि दीजै।
कै दहिऐ दारुन दावानल, जाइ जमुन धँसि लीजै।
दुसह बियोग बिरह माधौ के, को दिन ही दिन छीजै।
सूर स्याम प्रीतम बिनु राधे, सोचि सोचि कर मीजे ।।१०७।।
काहे कौँ पिय पियहिँ रटति हौ, पिय कौ प्रेम तेरौ प्रान हरैगौ।
काहे कौँ लेति नयन जल भरि भरि, नैन भरै कैसैँ सूल टरैगौ।
काहे कौँ स्वास उसास लेति हौ, बैरी बिरह कौ दबा बरैगौ।
छार सुगंध सेज पुहुपावलि, हार छुवैँ, हिय हार जरैगौ।

वदन दुराइ बैठि मंदिर मैं, वहुरि निसापति उदय करैगौ।
सूर सखी अपने इन नैननि, चंद चितै जनि चंद जरैगौ ।।१०८।।

बिछुरे री मेरे बाल-सँघाती।
निकसि न जात प्रान ये पापी, फाटति नाहिंन छाती।
हौं अपराधिनि दही मथति ही, भरी जोबन मदमाती।
जो हौं जानति हरि कौ चलिबौ, लाज छाँड़ि सँग जाती।
ढरकत नीर नैन भरि सुंदरि, कछु न सोह दिन-राती।
सूरदास प्रभु दरसन कारन, सखियनि मिलि लिखि पाती ।।१०९।।

एक द्यौस कुंजनि मैं माई।
नाना कुसुम लेइ अपनैं कर, दिए मोहिं सो सुरति न जाई।
इतने मैं घन गरजि वृष्टि करी, तनु भीज्यौ मो भई जुड़ाई।
कंपत देखि उड़ाइ पीत पट, लै करुनामय कण्ठ लगाई।
कहँ वह प्रीति रीति मोहन की, कहँ अब धौ एती निठुराई।
अब बलबीर सूर प्रभु सखि री, मधुबन बसि सब रति बिसराई ।।११०।।

मेरे मन इतनी सूल रही।
ये बतियाँ छतियाँ लिखि राखी, जे नँदलाल कही।
एक द्यौस मेरैं गृह आए, हौं ही मथत दही।
रति माँगत मैं मान कियौ सखि, सो हरि गुसा गही।
सोचति अति पछितति राधिका, मुरछित धरनि ढही।
सूरदास प्रभु के बिछुरे तैं, बिथा न जाति सही ।।१११।।

हरि कौ मारग दिन प्रति जोवति।
चितवत रहत चकोर चंद ज्यौं, सुमिरि-सुमिरि गुन रोवति।
पतियाँ पठवति मसि नहिं खूँटति, लिखि-लिखि मानहु धोवति।
भूख न दिन निसि नींद हिरानी, एकौ पल नहिं सोवति।
जे जे बसन स्याम सँग पहिरे, ते अजहूँ नहिं धोवति।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, बृथा जनम सुख खोवति ।।११२।।

इहिं दुख तन तरफत मरि जैहैं।
कबहुँ न सखी स्याम-सुंदर घन, मिलिहैं आइ अंक भरि लैहैं ?
कबहुँ न बहुरि सखा सँग ललना, ललित त्रिभंगी छबिहिं दिखैहैं ?
कबहुँ न बेनु अधर धरि मोहन, यह मति लै लै नाम बुलैहैं ?

कबहुँ न कुंज भवन सँग जैहैं, कबहुँ न दूती लैन पठैहैं ?
कबहुँ न पकरि भुजा रस बस ह्वै, कबहुँ न पग परि मान मिटैहैं ?
याही तैं घट प्रान रहत हैं, कबहुँक फिरि दरसन हरि दैहैं ?
सूरदास परिहरत न यातैं, प्रान तजैं नहिं प्रिय ब्रज ऐहैं ।।११३।।

सबै सुख लै जु गए ब्रजनाथ ।
बिलखि बदन चितवतिं मधुबन तन, हम न गईं उठि साथ ।
वह मूरति चित तैं बिसरति नहिं, देखि साँवरे गात ।
मदन गोपाल ठगौरी मेली, कहत न आवै बात ।
नंद-नँदन जु बिदेस गवन कियौ, बैसी मींजतिं हाथ ।
सूरदास प्रभु तुम्हरैं बिछुरे, हम सब भईं अनाथ ।।११४।।

करिहौ मोहन कहूँ सँभारि, गोकुल-जन-सुखहारे ।
खग, मृग, तृन, बेली वृन्दावन, गैया ग्वाल बिसारे ।
नंद जसोदा मारग जोवैं, निसि दिन दीन दुखारे ।
छिन छिन सुरति करत चरननि की, बाल बिनोद तुम्हारे ।
दीन दुखी ब्रज रह्यौ न परि है, सुन्दर स्याम ललारे ।
दीनानाथ कृपा के सागर, सूरदास-प्रभु प्यारे ।।११५।।

उनकौं ब्रज बसिबौ नहिं भावै ।
ह्वाँ वै भूप भए त्रिभुवन के, ह्याँ कत ग्वाल कहावै ।
ह्वाँ वै छत्र सिँहासन राजत, को बछरनि सँग धावै ।
ह्वाँ तो बिबिध वस्त्र पाटंबर, को कमरी सचु पावै ।
नंद जसोदा हूँ कौ बिसर्यौ, हमरी कौन चलावै ।
सूरदास प्रभु निठुर भए री, पातिहु लिखि न पठावै ।।११६।।

———

उद्धव संदेश

उद्धव को ब्रज भेजना

अंतरजामी कुँवर कन्हाई।
गुरु गृह पढ़त हुते जहँ विद्या, तहँ ब्रज-बासिन की सुधि आई।
गुरु सौं कह्यौ जोरि कर दोऊ, दछिना कहौ सो देउँ मँगाई।
गुरु-पतनी कह्यौ पुत्र हमारे, मृतक भये सो देहु जिवाई।
आनि दिए गुरु-सुत जमपुर तैं, तब गुरुदेव असीस सुनाई।
सूरदास प्रभु आइ मधुपुरी, ऊधौ कौं ब्रज दियौ पठाई ।।१।।

जदुपति जानि उद्धव रीति।
जिहिं प्रगट निज सखा कहियत, करत भाव अनीति।
विरह दुख जहँ नाहिं-नैकहुँ, तहँ न उपजै प्रेम।
रेख, रूप न बरन जाकैं, इहिं धर्‌यौ वह नेम।
त्रिगुन तन करि लखत हमकौं, ब्रह्म मानत और।
बिना गुन क्यौं पुहुमि उधरै, यह करत मन डौर।
बिरस रस के मंत्र कहिऐ, क्यौं चलै संसार।
कछु कहत यह एक प्रगटत, अति भर्‌यौ अहँकार।
प्रेम भजन न नैंकु याकौं, जाइ क्यौं समुझाइ।
सूर प्रभु मन यहै आनी, ब्रजहिं देउ पठाइ ।।२।।

संग मिलि कहौं कासौं बात।
यह तौ कहत जोग की बातैं, जामैं रस जरि जात।
कहत कहा पितु मातु कौन के, पुरुष नारि कह नात।
कहाँ जसोदा सी है मैया, कहाँ नंद सम तात।
कहँ बृषभानु-सुता सँग कौ सुख, वह बासर वह प्रात।
सखी सखा सुख नहिं त्रिभुवन मैं, नहिं बैकुंठ सुहात।
वै बातैं कहिये किहिं आगैं, यह सुनि हरि पछितात।
सूरदास प्रभु ब्रज महिमा कहि, लिखी बदत बल भ्रात ।।३।।

तबहिं उपँग-सुत आइ गए।
सखा सखा कछु अंतर नाहीं, भरि भरि अंक लए।

अति सुन्दर तन स्याम सरीखो, देखत हरि पछिताने।
ऐसे वै वैसी बुधि होती, ब्रज पठऊँ मन आने।
या आगैं रस-कथा प्रकासौं, जोग-कथा प्रगटाऊँ।
सूर ज्ञान याकौ दृढ़ करिकै, जुवतिन्ह पास पठाऊँ ।।४।।

हरि गोकुल की प्रीति चलाई।
सुनहु उपँग-सुत मोहिं न बिसरत, ब्रज बासी सुखदाई।
यह चित होत जाउँ मैं अबहीं, इहाँ नहीं मन लागत।
गोपी ग्वाल गाइ बन चारन, अति दुख पायौ त्यागत।
कहँ माखन-रोटी, कहँ जसुमति, जेंवहु कहि-कहि प्रेम।
सूर स्याम के बचन हँसत सुनि, थापत अपनौ नेम ।।५।।

जदुपति लख्यौ तिहिं मुसुकात।
कहत हम मन रही जोई, भई सोई बात।
बचन परगट करन कारन, प्रेम कथा चलाइ।
सुनहु ऊधौ मोहिं ब्रज कौ, सुधि नहीं बिसराइ।
रैनि सोवत, दिवस जागत, नाहिंनै मन आन।
नंद-जसुमति, नारि-नर-ब्रज, तहाँ मेरौ प्रान।
कहत हरि सुनि उपँग सुत यह, कहत हौं रस रीति।
सूर चित तैं टरति नाहीं, राधिका की प्रीति ।।६।।

सखा सुनि एक मेरी बात।
वह लता गृह संग गोपिन, सुधि करत पछितात।
बिधि लिखी नहिं टरत क्यौं हूँ, यह कहत अकुलात।
हँसि उपँग-सुत बचन बोले, कहा हरि पछितात।
सदा हित यह रहत नाहीं, सकल मिथ्या जात।
सूरप्रभु एक यह सुनौ मोसौं, एक ही सौं नात ।।७।।

जब ऊधौ यह बात कही।
तब जदुपति अति ही सुख पायौ, मानी प्रगट सही।
श्री मुख कह्यौ जाहु तुम ब्रज कौं, मिलहु जाइ ब्रज-लोग।
मो बिन, बिरह भरीं ब्रजबाला, जाइ सुनावहु जोग।
प्रेम मिटाइ ज्ञान परबोधहु, तुम हौ पूरन ज्ञानी।
सूर उपँग-सुत मन हरषाने, यह महिमा इन जानी ।।८।।

ऊधौ तुम यह निश्चय जानौ।
मन, बच, क्रम मैं तुमहिं पठावत, ब्रज कौं तुरत पलानौ।
पूरन ब्रह्म अकल अबिनासी, ताके तुम हौ ज्ञाता।
रेख न रूप जाति कुल नाहीं, जाके नहिँ पितु माता।
यह मत दै गोपिनि कौं आवहु, बिरह नदी मैं भासत।
सूर तुरत तुम जाइ कहौ यह, ब्रह्म बिना नहिं आसत ।।९।।

ऊधौ मन अभिमान बढ़ायौ।
जदुपति जोग जानि जिय साँचौ, नैन अकास चढ़ायौ।
नारिनि पै मोकौं पठवत हैं, कहत सिखावन जोग।
मन ही मन अप करत प्रसंसा, यह मिथ्या सुख-भोग।
आयसु मानि लियौ सिर ऊपर, प्रभु आज्ञा परमान।
सूरदास प्रभु गोकुल पठवत, मैं क्यौं कहौं कि आन ।।१०।।

तुम पठवत गोकुल कौं जैहौं।
जौ मानिहैं ब्रह्म की बातैं, तौ उनसौं मैं कैहौं।
गदगद बचन कहत मन प्रफुलित, बार-बार समुझैहौं।
आजु नहीं जो करौं काज तुव, कौन काज पुनि लैहौं।
यह मिथ्या संसार सदाई, यह कहिकै उठि ऐहौं।
सूर दिना द्वै ब्रज-जन सुख दै, आइ चरन पुनि गैहौं ।।११।।

तुरत ब्रज जाहु उपँग-सुत आज।
ज्ञान बुझाइ खबरि दै आवहु, एक पंथ द्वै काज।
जब तैं मधुबन कौं हम आए, फेरि गयौ नहिँ कोइ।
जुबतिनि पै ताही कौं पठवौं, जो तुम लायक होइ।
इक प्रवीन अरु सखा हमारे, ज्ञानी तुम सरि कौन।
सोइ कीजौ जातैं ब्रज-बाला, साधन सीखैं पौन।
श्रीमुख स्याम कहत यह बानी, ऊधौ सुनत सिहात।
आयसु मानि सूर प्रभु जैहौं, नारि मानिहैं बात ।।१२।।

हलधर कहत प्रीति जसुमति की।
कहा रोहिनी इतनी पावै, वह बोलनि अति हित की।
एक दिवस हरि खेलत मो सँग, झगरौ कीन्हौ पेलि।
मोकौं दौरि गोद करि लीन्हौ, इनहिं दियौ कर ठेलि।

नंद बबा तब कान्ह गोद करि, खीझन लागे मोकौ ।
सूर स्याम नान्हौं तेरौ भैया, छोह न आवत तोकौं ।।१३।।

जसुमति करति मोकौं हेत ।
सुनौ ऊधौ कहत बनत न, नैन भरि-भरि लेत ।
दुहुँनि कौ कुसलात कहियौ, तुमहिँ भूलत नाहिँ ।
स्याम हलधर सुत तुम्हारे, और के न कहाहिँ ।
आइ तुमकौं धाइ मिलिहैं, कछुक कारज और ।
सूर हमकौं तुम बिना सुख, कौ नाहीं कहुँ ठौर ।।१४।।

तीन पाती तथा संदेश

स्याम कर पत्री लिखी बनाइ ।
नंद बाबा सौं बिनै, कर जोरि जसुदा माइ ।
गोप ग्वाल सखान कौं, हिल-मिलन कंठ लगाइ ।
और ब्रज-नर नारि जे हैं, तिनहिँ प्रीति जनाइ ।
गोपिकनि लिखि जोग पठयो, भाव जानि न जाइ ।
सूर प्रभु मन और यह कहि, प्रेम लेत दिढ़ाइ ।।१५।।

ऊधौ जात ब्रजहिँ सुने ।
देवकी बसुदेव सुनि कै, हृदै हेत गुने ।
आपु सौं पाती लिखी, कहि धन्य जसुमति नंद ।
सुत हमारे पालि पठए, अति दियौ आनंद ।
आइकै मिलि जात कबहुँ न, स्याम अरु बलराम ।
इहौ कहत पठाइहौं अब, तबहिँ तन बिस्राम ।
बाल-सुख सब तुमहिँ लूट्यौ, मोहिँ मिले कुमार ।
सूर यह उपकार तुम तैं, कहत बारंबार ।।१६।।

हम पर काहैं झुकतिं ब्रजनारी ।
साझे भाग नहीं काहू कौ, हरि की कृपा निनारी ।
कुबिजा लिख्यौ संदेस सबनि कौ, अरु कीन्ही मनुहारी ।
हौं तौ दासी कंसराइ की, देखौ मनहिँ बिचारी ।
फलनि माँझ ज्यौं करुइ तोमरी, रहत घुरे पर डारी ।
अब तौ हाथ परी जंत्री के, बाजत राग दुलारी ।
तनुतैं टेढ़ी सब कोउ जानत, परसि भई अधिकारी ।
सूरदास स्वामी करुनामय, अपने हाथ सँवारी ।।१७।।

सुनियत ऊधौ लए सँदेसौ, तुम गोकुल कौं जात।
पाछैं करि गोपनि सौं कहियौ, एक हमारी बात।
मातु पिता कौ नेह समुझि कै, स्याम मधुपुरी आए।
नाहिंन कान्ह तुम्हारे प्रीतम, ना जसुदा के जाए।
देखौ बूझि आपने जिय मैं, तुम धौं कौन सुख दीन्हे।
ये बालक तुम मत्त ग्वालिनी, सबै मूँड़ करि लीन्हे।
तनक दही माखन के कारन, जसुदा त्रास दिखावै।
तुम हँसि सब बाँधन कौं दौरी, काहू न दया न आवै।
जो वृषभानु-सुता उत कीन्ही, सो सब तुम जिय जानौ।
ताहीं जाल तज्यौ ब्रज मोहन, अब काहैं दुख मानौ।
सूरदास प्रभु सुनि-सुनि बातैं, रहे भूमि सिर नाए।
इत कुबिजा उत प्रेम गोपिकनि, कहत न कछु बनि आए ।।१८।।

तब ऊधौ हरि निकट बुलायौ।
लिखि पाती दोउ हाथ दई तिहिं, औ मुख बचन सुनायौ।
ब्रजवासी जावत नारी नर, जल थल द्रुम बन पात।
जो जिहिं बिधि तासौं तैसैंही, मिलि कहियौ कुसलात।
जो सुख स्याम तुमहिं तैं पावत, सो त्रिभुवन कहुँ नाहिं।
सूरदास प्रभु दइ सौंह आपुनी, समुझत हौ मन माहिं ।।१९।।

पहिलैं प्रनाम नंदराइ सौं।
ता पाछैं मेरौ पालागन, कहियौ जसुमति माइ सौं।
बार एक तुम बरसाने लौं, जाइ सबै सुधि लीजौ।
कहि वृषभानु महर सौं मेरौ, समाचार सब दीजौ।
श्रीदामाऽदि सकल ग्वालनि कौं, मेरौ कोतौ भेंटयौ।
सुख संदेस सुनाइ सबनि कौं, दिन दिन कौ दुख मेटयौ।
मित्र एक मन बसत हमारैं, ताहि मिलैं सुख पाइहौ।
करि करि समाधान नीकी बिधि, मोकौं माथौ नाइहौ।
डरपहु जनि तुम सबन कुंज मैं, हैं तहँ के तरु भारी।
वृन्दाबन मति रहति निरंतर, कबहुँ न होत निनारी।
ऊधौ सौं समुझाइ प्रगट करि, अपने मन की बीती।
सूरदास स्वामी सौं छल सौं, कही सकल ब्रज-प्रीती ।।२०।।

ऊधौ इतनी कहियो जाइ।
हम आवैंगे दोऊ भैया, मैया जनि अकुलाइ।
याकौ बिलग बहुत हम मान्यौ, जो कहि पठयौ धाइ।
वह गुन हमकौं कहा बिसरिहै, बड़े किए पय प्याइ।
अरु जब मिल्यौ नंद बाबा सौं, तब कहियो समुझाइ।
तौ लौं दुखी होन नहिं पावैं, धौंरी धूमरि गाइ।
जद्यपि इहाँ अनेक भाँति सुख, तदपि रह्यौ नहिं जाइ।
सूरदास देखौं ब्रजवासिनि, तबहीं हियौ सिराइ ।।२१।।

नीकैं रहियौ जसुमति मैया।
आवैंगे दिन चारि पाँच मैं, हम हलधर दोउ भैया।
नोई, बेंत, बिषान, बाँसुरी, द्वार अबेर सबेरैं।
लै जनि जाइ चुराइ राधिका, कछुक खिलौना मेरैं।
जा दिन तैं हम तुमतैं बिछुरे, कोउ न कहत कन्हैया।
उठि न सबेरे कियौ कलेऊ, साँझ न चाषी धैया।
कहिये कहा नन्द बाबा सौं, जितौ निठुर मन कीन्हौ।
सूरदास पहुँचाइ मधुपुरी, फेरि न सोधौ लीन्हौ ।।२२।।

गहरु जनि लावहु गोकुल जाइ।
तुमहिं बिना ब्याकुल हम ह्वै हैं, जदुपति करी चतुराइ।
अपनौ ही रथ तुरंत मँगायौ, दियौ तुरत पलनाइ।
अपने अंग अभूषन करि-करि, आपुन ही पहिराइ।
अपनौ मुकुट पितंबर अपनौ, देत सबै सुख पाइ।
सूर स्याम तदरूप उपँगसुत, भृगुपद एक बचाइ ।।२३।।

उद्धव ब्रज आगमन

जबहिं चले ऊधौ मधुबन तैं, गोपिनि मनहिं जनाइ गई।
बार-बार अलि लागे स्रवननि, कछु दुख कछु हिय हर्ष भई।
जहँ तहँ काग उड़ावन लागी, हरि आवत उड़ि जाहिं नहीं।
समाचार कहि जबहिं मनावतिं, उड़ि बैठत सुनि औचकहीं।
सखी परस्पर यह कही बातैं, आजु स्याम कै आवत हैं।
किधौ सूर कोऊ ब्रज पठयौ, आजु खबरि कै पावत हैं ।।२४।।

आजु कोउ नीकी बात सुनावै।
कै मधुबन तैं नन्द लाड़िलौ, कैऽब दूत कोउ आवै।

भौंर एक चहुँदिसि तैं उड़ि-उड़ि, कानन लगि-लगि गावै।
उत्तम भाषा ऊँचे चढ़ि-चढ़ि, अंग-अंग सगुनावै।
भामिनि एक सखी सौं बिनवै, नैन नीर भरि आवै।
सूरदास कोऊ ब्रज ऐसौ, जो ब्रजनाथ मिलावै।।२५।।

तौ तू उड़ि न जाइ रे काग।
जौ गुपाल गोकुल, कौं आवैं, तो ह्वै है बड़भाग।
दधि ओदन भरि दोनौ दैहौं, अरु अंचल की पाग।
मिलि हौं हृदय सिराइ स्रवन सुनि, मेटि बिरह के दाग।
जैसैं मातु पिता नहिं जानत, अंतर कौ अनुराग।
सूरदास प्रभु करैं कृपा जब, तब तैं देह सुहाग।।२६।।

है कोउ वैसी ही अनुहारि।
मधुबन तन तैं आवत सखि री, देखौ नैन निहारि।
वैसोइ मुकुट मनोहर कुंडल, पीत बसन रुचिकारि।
वैसैहिं बात कहत सारथि सौं, ब्रज तन बाहँ पसारि।
केतिक बीच कियौ हरि अंतर, मनु बीते जुग चारि।
सूर सकल आतुर अकुलानी, जैसैं मीन बिनु बारि।।२७।।

घर घर इहै सब्द पर्‌यौ।
सुनत जसुमति धाइ निकसी, हरष हियौ भर्‌यौ।
नन्द हरषित चले आगैं, सखा हरषित अंग।
झुंड झुंडनि नारि हरषित, चलीं उदधि तरंग।
गाइ हरषित ते स्रवतिं थन, चौंकरत गौ बाल।
उमँगि अंग न मात कोऊ, बिरध तरुनऽरु बाल।
कोउ कहत बलराम नाहीं, स्याम रथ पर एक।
कोउ कहत प्रभु सूर दोऊ, रचित बात अनेक।।२८।।

कोउ माई आवत है तनु स्याम।
वैसै पट वैसिय रथ बैठनि, वैसीयै उर दाम।
जो जैसैं तैसैं उठि धाईं, छाँड़ि सकल गृह काम।
पुलक रोम गदगद तेहीं छन, सोभित अंग अभिराम।
इतने बीच आइ गए ऊधौ, रहीं ठगी सब बाम।
सूरदास प्रभु ह्याँ कत आवैं, बँधे कुबिजा-रस दाम।।२९।।

जबहिं कह्यौ ये स्याम नहीं ।
परीं मुरछि धरनी ब्रजबाला, जो जहँ रही सु तहीं ।
सपने की रजधानी ह्वै गइ, जो जागीं कछु नाहीं ।
बार-बार रथ ओर निहारहिं, स्याम बिना अकुलाहीं ।
कहा आइ करिहैं ब्रज मोहन, मिली कूबरी नारी ।
सूर कहत सब ऊधौ आए, गईं काम-सर मारी ।।३०।।
भली भई हरि सुरति करी ।
उठौ महरि कुसलात बूझिए, आनँद उमँग भरी ।
भुजा गहे गोपी परबोधति, मानहु सुफल घरी ।
पाती लिखि कछु स्याम पठायौ, यह सुनि मनहिं ढरी ।
निकट उपँगसुत आई तुलाने, मानौ रूप हरी ।
सूर स्याम कौ सखा यहै री, स्रवननि सुनी परी ।।३१।।
निरखत ऊधौ कौं सुख पायौ ।
सुन्दर सुलज सुबंस देखियत, यातैं स्याम पठायौ ।
नीकैं हरि संदेस कहैगौ, स्रवन सुनत सुख पैहै ।
यह जानति हरि तुरत आइहैं, यह कहि हृदै सिरैहै ।
घेरि लिए रथ पास चहूँधा, नन्द गोप ब्रजनारी ।
महर लिवाइ गए निज मंदिर, हरषित लियौ उतारी ।
अरघ देत भीतर तिहिं लीन्हौ, धनि-धनि दिन कहि आज ।
धनि धनि सूर उपँगसुत आए, मुदित कहत ब्रजराज ।।३२।।
कबहुँ सुधि करत गुपाल हमारी ।
पूछत पिता नंद ऊधौ सौं, अरु जसुदा महतारी ।
बहुतै चूक परी अनजानत, कहा अबकैं पछिताने ।
बासुदेव घर भीतर आए, मैं अहीर करि जाने ।
पहिलैं गर्ग कह्यौ हुतौ हमसौं, संग दुःख गयौ भूल ।
सूरदास स्वामी के बिछुरैं, रति दिवस भयौ सूल ।।३३।।
कह्यौ कान्ह सुनि जसुदा मैया ।
आवहिंगें दिन चारि पाँच मैं, हम हलधर दोउ भैया ।
मुरली बेंत बिषान हमारौ, कहूँ अबेर सबेरौ ।
मति लै जाइ चुराइ राधिका, कछुक खिलौना मेरौ ।

जा दिन तैं हम तुम सौं बिछुरे, काहु न कह्यौ कन्हैया।
प्रात न कियौ कलेऊ कबहूँ, साँझ न पय पियौ घैया।
कहा कहौं कछु कहत न आवै, जननी जो दुख पायौ।
अब हमसौं बसुदेव देवकी, कहत आपनौ जायौ।
कहिऐ कहा नन्द बाबा सौं, बहुत निठुर मन कीन्हौ।
सूर हमहिं पहुँचाइ मधुपुरी, बहुरि न सोधौ लीन्हौ ।।३४।।

हमतैं कछु सेवा न भई।
धोखैं ही धोखैं जु रहे हम, जाने नाहिं त्रिलोकमई।
चरन पकरि कर बिनती करिबौ, सब अपराध क्षमा कीबै।
ऐसौ भाग होइगौ कबहूँ, स्याम गोद पुनि मैं लीबै।
कहै नन्द आगैं ऊधौ के, एक बेर दरसन दीबे।
सूरदास स्वामी मिलि अबकैं, सबै दोष निज गत कीबे ।।३५।।

ऊधौ कहौ साँची बात।
दधि, मह्यौ नवनीत माधव, कौन के घर खात।
किन सखा सँग संग लीन्हे, गहे लकुटी हाथ।
कौन की गैयाँ चरावत, जात को धौं साथ।
कौन गोपी कूल-जमुना, रहत गहि-गहि घाट।
दान हठ कै लेत कापै, रोक किनकी बाट।
कौन ग्वालनि साथ भोजन, करत किनतैं बात।
कौन कैं माखन चुरावन, जाति उठिकै प्रात।
इतौ बूझत माइ जसुमति, परी मुरछित गात।
सूरदास किसोर मिलवहु, मेटि हियं की तात ।।३६।।

उद्धव का गोपियों को पाती देना

ब्रज घर-घर सब होति बधाई।
कंचन कलस दूब दधि रोचन, लै वृन्दावन आई।
मिली ब्रजनारि तिलक सिर कीनौ, करि प्रदच्छिना तासु।
पूछत कुसल नारि-नर हरषत, आए सब ब्रज-बासु।
सकसकात तन धकंधकात उर, अकबकात सब ठाढ़े।
सूर उपँग-सुत बोलत नाहीं, अति हिरदै ह्वै गाढ़े ।।३७।।

ऊधौ कहौ हरि-कुसलात।
कह्यौ आवन किधौं नाहीं, बोलिऐ मुख बात।

एक छिन जुग जात हमकौं, बिनु सुने हरि प्रीति।
आपु आए कृपा कीन्ही, अब कहौ कछु नीति।
तब उपँग-सुत सबनि बोले, सुनौ श्रीमुख जोग।
सूर सुनि सब दौरि आईं, हटकि दीन्हौ लोग ।।३८।।

गोपी सुनहु हरि संदेस।
गए संग अक्रूर मधुबन, हत्यौ कंस नरेस।
रजक मारचौ बसन पहिरे, धनुष तोर्‌यौ जाइ।
कुवलया, चानूर, मुष्टिक, दिए धरनि गिराइ।
मातु पितु के बंद छोरे, बासुदेव कुमार।
राज दीन्हौ उग्रसेनहिं, चौंर निज कर ढार।
कह्यौ तुमकौं ब्रह्म ध्यावन, छाँड़ि विषय बिकार।
सूर पाती दई लिखि मोहिं, पढ़ौ गोप-कुमारि ।।३९।।

पाती मधुबन ही तैं आई।
सुन्दर स्याम आपु लिखिं पठई, आइ सुनौ री माई।
अपने अपने गृह तैं दौरीं, लै पाती उर लाई।
नैननि निरख निमेष न खंडित, प्रेम-तृषा न बुझाई।
कहा करौं सूनौ यह गोकुल, हरि बिनु कछु न सुहाई।
सूरदास ब्रज कौन चूक तैं, स्याम सुरति बिसराई ।।४०।।

निरखतिं अंक स्याम सुन्दर के, बार-बार लावतिं लै छाती।
लोचन जल कागद मसि मिलि कै, ह्वै गइ स्याम स्याम जू की पाती।
गोकुल बसत नंदनंदन के, कबहुँ बयारि न लागी ताती।
अरु हम उती कहा कहैं ऊधौ, जब सुनि बेनु नाद सँग जाती।
उनकैं लाड़ बदति नहिं काहू, निसि दिन रसिक-रास-रस राती।
प्रान-नाथ तुम कबहि, मिलौगे, सूरदास प्रभु बाल-सँघाती ।।४१।।

पाती मधुबन तैं आई।
ऊधौ हरि के परम सनेही, ताकैं हाथ पठाई।
कोउ पढ़ति, कोउ धरति नैन पर, काहूँ हृदै लगाई।
कोउ पूछति फिरि फिरि ऊधौ कौं, आपुन लिखी कन्हाई ?
बहुरौ दई फेरि ऊधौ कौं, तब उन बाँचि सुनाई।
मन मैं ध्यान हमारौ राख्यौ, सूर सदा सुखदाई ।।४२।।

लिखि आई ब्रजनाथ की छाप ।
ऊधौ बाँधे फिरत सीस पर, बाँचत आवैं ताप ।
उलटी रीति नंदनंदन की, घर-घर भयौ संताप ।
कहियौ जाइ जोग आराधैं, अविगत अकथ अमाप ।
हरि आगैं कुबिजा अधिकारिनि, को जीवै इहिं दाप ।
सूर सँदेस सुनावन लागे, कहौ कौन यह पाप ।।४३।।

कोउ ब्रज बाँचत नाहिंन पाती ।
कत लिखि-लिखि पठवत नँद-नंदन, कठिन बिरह की काँती ।
नैन सजल कागद अति कोमल, कर अँगुरी अति ताती ।
परसैं जरैं, बिलोकैं भीँजै, दुहूँ भाँति दुख छाती ।
को बाँचै ये अंक सूर प्रभु, कठिन मदन-सर-घाती ।
सब सुख लै गए स्याम मनोहर, हमकौं दुख दै थाती ।।४४।।

ऊधौ कहा करैं लै पाती ।
जौ लौं मदनगुपाल न देखैं, बिरह जरावत छाती ।
निमिष निमिष मोहिं बिसरत नाहीं, सरद सुहाई राती ।
पीर हमारी जानत नाहीं, तुम हौ स्याम सँघाती ।
यह पाती लै जाहु मधुपुरी, जहँ वै बसैं सुजाती ।
मन जु हमारे उहाँ लै गए, काम कठिन सर घाती ।
सूरदास प्रभु कहा चहत हैं, कोटिक बात सुहाती ।
एक बेर मुख बहुरि दिखावहु, रहैं चरन रज-राती ।।४५।।

भ्रमर गीत

इहिं अन्तर मधुकर इक आयौ ।
निज स्वभाव अनुसार निकट ह्वै, सुन्दर शब्द सुनायौ ।
पूछन लागीं ताहि गोपिका, कुबिजा तोहिं पठायौ ।
कीधौं सूर स्याम सुन्दर कौं, हमैं सँदेसौ लायौ ।।४६।।

(मधुप तुम) कहौ कहाँ तैं आए हौ ।
जानति हौं अनुमान आपनै, तुम जदुनाथ पठाए हौ ।
वैसेइ बसन, बरन तन सुंदर, वेइ भूषन सजि ल्याए हौ ।
लै सरबसु सँग स्याम सिधारे, अब का पर पहिराए हौ ।
अहो मधुप एकै मन सबकौ, सु तौ उहाँ लै छाए हौ ।
अब यह कौन सयान बहुरि ब्रज, ता कारन उठि धाए हौ ।

मधुबन की मानिनी मनोहर, तहीं जात जहँ भाए हौ।
सूर जहाँ लौं स्याम गात हैं, जानि भले करि पाए हौ ॥४७॥

रहु रे मधुकर मधु मतवारे।
कौन काज या निरगुन सौं, चिर जीवहु कान्ह हमारे।
लोटत पीत पराग कीच मैं, बीच न अंग सम्हारे।
बारम्बार सरक मदिरा की, अपरस रटत उघारे।
तुम जानत हौ वैसो ग्वारिनि, जैसे कुसुम तिहारे।
घरी पहर सबहिंनि बिरमावत, जेते आवत कारे।
सुंदर बदन कमल-दल लोचन, जसुमति नंद-दुलारे।
तन मन सूर अरपि रही स्यामहिं, का पै लेहिं उधारे ॥४८॥

मधुकर हम न होहिं वै बेलि।
जिन भजि तजि तुम फिरत और रँग, करन कुसुम-रस केलि।
बारे तैं बर बारि बढ़ी हैं, अरु पोषी पिय पानि।
बिनु पिय परस प्रात उठि फूलत, होति सदा हित हानि।
ये बेली बिरहीं बृंदावन, उरझी स्याम तमाल।
प्रेम-पुहुप-रस-बास हमारे, बिलसत मधुप गोपाल।
जोग समीर धीर नहिं डोलतिं, रूप डार दृढ़ लागीं।
सूर पराग न तजतिं हिए तैं, श्री गुपाल अनुरागीं ॥४९॥

उद्धव गोपी संवाद

पहला संवाद

सुनौ गोपी हरि कौ संदेस।
करि समाधि अंतरगति ध्यावहु, यह उनकौ उपदेस।
वै अविगत अविनासी पूरन, सब-घट रहे समाइ।
तत्व ज्ञान बिनु मुक्ति नहीं है, वेद पुराननि गाइ।
सगुन रूप तजि निरगुन ध्यावहु, इक चित इक मन लाइ।
वह उपाइ करि बिरह तरौ तुम, मिलै ब्रह्म तब आइ।
दुसह सँदेस सुनत माधौ कौ, गोपी जन बिलखानी।
सूर बिरह की कौन चलावै, बूड़तिं मनु बिनु पानी ॥५०॥

परी पुकार द्वार गृह-गृह तैं, सुनौ सखी इक जोगी आयौ।
पवन सधावन, भवन छुड़ावन, स्रवन-रसाल, गोपाल पठायौ।

आसन बाँधि, परम ऊरध चित, बनत न तिनिहिं कहा हित ल्यायौ।
कनक बेलि, कामिनी ब्रजबाला, जोग जगिनि दहिबे कौं धायौ।
भव-भय हरन, असुर मारन हित, कारन कान्ह मधुपुरी छायौ।
ब्रज मैं जादव एकौ नाहीं, काहैं उलटौ जस बिथरायौ।
सुथल जु स्याम धाम मैं बैठें, अबलनि प्रति अधिकार जनायौ।
सूर बिसारी प्रीति साँवरे, भली चतुरता जगत हँसायौ ।।५१।।

देन आए ऊधौ मत नीकौ।
आवहु री मिलि सुनहु सयानी, लेहु सुजस कौ टीकौ।
तजन कहत अंबर आभूषन, गेह नेह सुत ही कौ।
अंग भस्म करि सीस जटा धरि, सिखवत निरगुन फीकौ।
मेरे जान यहै जुवतिनि कौ, देत फिरत दुख पी कौ।
ता सराप तैं भयौ स्याम तन, तउ न गहत डर जी कौ।
जाकी प्रकृति परी जिय जैसी, सोच न भली बुरी कौ।
जैसैं सूर ब्याल रस चाखैं, मुख नहिं होत अमी कौ ।।५२।।

प्रकृति जो जाकैं अंग परी।
स्वान पूँछ कोउ कोटिक लागै, सूधी कहूँ न करी।
जैसैं काग भच्छ नहिं छाँड़ै, जनमत जौन घरी।
धोए रंग जात नहिं कैसेहुँ, ज्यौं कारी कमरी।
ज्यौं अहि डसत उदर नहिं पूरत, ऐसी धरनि धरी।
सूर होइ सो होइ सोच नहिं, तैसेइ एऊ री ।।५३।।

समुझि न परति तिहारी ऊधौ।
ज्यौं त्रिदोष उपजैं जक लागत, बोलत बचन न सूधौ।
आपुन कौ उपचार करौ अति, तब औरनि सिख देहु।
बड़ौ रोग उपज्यौ है तुमकौं, भवन सबारैं लेहु।
ह्वाँ भेषज नाना भाँतिन के, अरु मधु-रिपु से बैद।
हम कातर डरपतिं अपनैं सिर, यह कलंक है खेद।
साँची बात छाँड़ि अलि तेरी, झूठी को अब सुनिहै।
सूरदास मुक्ताहल भोगी, हंस ज्वारि क्यौं चुनिहै ।।५४।।

उधौ हम आजु भईं बड़ भागी।
जिन अंखियन तुम स्याम बिलोके, ते अँखिया हम लागीं।

जैसैं सुमन बास लै आवत, पवन मधुप अनुरागी।
अति आनंद होत है तैसैं, अंग-अंग सुख रागी।
ज्यौं दरपन मैं दरस देखियत, दृष्टि परम रुचि लागी।
तैसैं सूर मिले हरि हमकौं, बिरह-बिथा तन त्यागी ।।५५।।

(अलि हौं) कैसैं कहौं हरि के रूप रसहिं।
अपने तन मैं भेद बहुत बिधि, रसना जानै न नैन दसहिं।
जिन देखे ते आहिं बचन बिनु, जिनहिं बचन दरसन न तिसहिं।
बिनु बानी ये उमँगि प्रेम जल, सुमिरि-सुमिरि वा रूप जसहिं।
बार-बार पछितात यहै कहि, कहा करौं जो विधि न बसहिं।
सूर सकल अंगनि की यह गति, क्यौं समुझावैं छपद पसुहिं ।।५६।।

हम तौ सब बातनि सचु पायौ।
गोद खिलाइ पिवाइ देह पय, पुनि पालनै झुलायौ।
देखति रही फनिग की मनि ज्यौं, गुरुजन ज्यौं न भुलायौ।
अब नहिं समुझति कौन पाप तैं, बिधना सो उलटायौ।
बिनु देखैं पल-पल नहिं छन-छन, ये ही चित ही चायौ।
अबहिं कठोर भए ब्रजपति-सुत, रोवत मुँह न धुवायौ।
तब हम दूध दही के कारन, घर-घर बहुत खिझायौ।
सो अब सूर प्रगट ही लाग्यौ, योगऽरु ज्ञान पठायौ ।।५७।।

मधुकर कहिऐ काहि सुनाइ।
हरि बिछुरत हम जिते सहे दुख, जिते बिरह के घाइ।
बरु माधौ मधुबन ही रहते, कत जसुदा कैं आए।
कत प्रभु गोप-बेष ब्रज धरि कैं, कत ये सुख उपजाए।
कत गिरि धरचौ, इंद्र मद मेटचौ, कत बन रास बनाए।
अब कहा निठुर भए अबलनि कौं, लिखि लिखि जोग पठाए।
तुम परबीन सबै जानत हौ, तातैं यह कहि आई।
अपनी को चालै सुनि सूरज, पिता जननि बिसराई ।।५८।।

दूसरा संवाद

जानि करि बावरो जनि होहु।
तत्व भजे वैसो ह्वै जैहौ, पारस परसैं लोहु।
मेरौ बचन सत्य करि मानौ, छाँड़ौ सबकौ मोहु।
तौ लगि सब पानी की चुपरी, जौ लगि अस्थित दोहु।

अरे मधुप ! बातैं ये ऐसी, क्यौं कहि आवतिं तोह ।
सूर सुबस्ती छाड़ि परम सुख, हमैं बतावत खोह ।।५६।।
ऊधौ हरि गुन हम चकडोर ।
गुन सौं ज्यौं भावै त्यौं फेरौ, यहै बात कौ ओर ।
पैंड़ पैंड़ चलियै तो चलियै, ऊबट रपट पाइ ।
चकडोरी की रीति यहै फिरि, गुन हीं सौं लपटाइ ।
सूर सहज गुन ग्रन्थि हमारैं, दई स्याम उर माहिं ।
हरि के हाथ परै तौ छूटै, और जतन कछु नाहिं ।।६०।।
उलटी रीति तिहारी ऊधौ, सुनै सो ऐसी को है ।
अलप बयस अबला अहीरि सठ, तिनहिं जोग कत सोहै ।
बूची खुभी, आँधरी काजर, नकटी पहिरै बेसरि ।
मुड़ली पटिया पारौ चाहै, कोढ़ी लावै केसरि ।
बहिरी पति सौं मतौ करै तौ, तैसोइ उत्तर पावै ।
सो गति होइ सबै ताकी जो, ग्वारिनि जोग सिखावै ।
सिखई कहत स्याम की बतियाँ, तुमकौं नाहीं दोष ।
राज काज तुम तैं न सरैगो, काया अपनी पोष ।
जाते भूलि सवै मारग मैं, इहाँ आनि का कहते ।
भली भई सुधि रही सूर, नतु मोह धार मैं बहते ।।६१।।
अँखियाँ हरि दरसन की प्यासी ।
देख्यौ चाहतिं कमलनैन कौं, निसि-दिन रहतिं उदासी ।
आए ऊधौ फिरि गए आँगन, डारि गए गर फाँसी ।
केसरि तिलक मोतिनि की माला, बृन्दावन के बासी ।
काहू के मन की कोउ जानत, लोगनि के मन हाँसी ।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस कौं, करवट लैहौं कासी ।।६२।।
जब तैं सुंदर बदन निहार्‌यौ ।
ता दिन तैं मधुकर मन अटक्यौ, बहुत करी निकरै न निकारचौ ।
मातु, पिता, पति, बंधु, सुजन नहिं, तिनहूँ कौ कहिबौ सिर धारचौ ।
रही न लोक लाज मुख निरखत, दुसह क्रोध फीकौ करि डारचौ ।
ह्वैबौ होइ सु होइ कर्मबस, अब जी कौ, सब सोच निबारचौ ।
दासी भई जु सूरदास प्रभु, भलौ पोच अपनौ न बिचारचौ ।।६३।।

और सकल अंगनि तैं ऊधौ, अँखियाँ अधिक दुखारी।
अतिहिं पिरातिं सिरातिं न कबहूँ, बहुत जतन करि हारी।
मग जोवत पलकौ नहिं लावतिं, बिरह बिकल भईं भारी।
भरि गइ बिरह बयारि दरस बिनु, निसि दिन रहतिं उघारी।
ते अलि अब ये ज्ञान सलाकैं, क्यौं सहि सकतिं तिहारी।
सूर सु अंजन आँजि रूप रस, आरति हरहु हमारी ॥६४॥

उपमा नैन एक न रही।
कवि जन कहत कहत सब आये, सुधि कर नाहि कही।
कहि चकोर बिधु मुख बिनु जीवत, भ्रमर नहीं उड़ि ज़ात।
हरि-मुख कमल कोष बिछुरे तैं, ठाले कत ठहरात।
ऊधौ बधिक ब्याध ह्वै आए, मृग सम क्यौं न पलात।
भागि जाहिं बन सघन स्याम मैं, जहाँ न कोऊ घात।
खंजन मन-रंजन न होहिं ये, कबहुँ नहीं अकुलात।
पंख पसारि न होत चपल गति, हरि समीप मुकुलात।
प्रेम न होइ कौन बिधि कहियै, झूठैं हीं तन आड़त।
सूरदास मीनता कछू इक, जल भरि कबहुँ न छाँड़त ॥६५॥

ऊधौ अँखियाँ अति अनुरागी।
इकटक मग जोवतिं अरु रोवतिं, भूलेहुँ पलक न लागी।
बिनु पावस पावस करि राखी, देखत हौ बिदमान।
अब धौं कहा कियौ चाहत हौ, छाँड़ौ निरगुन ज्ञान।
तुम हौ सखा स्याम सुंदर के, जानत सकल सुभाइ।
जैसैं मिलैं सूर के स्वामी, सोई करहु उपाइ ॥६६॥

सब खोटे मधुबन के लोग।
जिनके संग स्याम सुंदर सखि, सीखे हैं अपजोग।
आए हैं ब्रज के हित ऊधौ, जुवतिनि कौं लै जोग।
आसन, ध्यान नैन मूँदे सखि, कैसैं कढ़ै बियोग।
हम अहीरि इतनी का जानैं, कुबिजा सौं संजोग।
सूर सुवैद कहा लै कीजै, कहैं न जानै रोग ॥६७॥

मधुबन लोगनि को पतियाइ।
मुख औरै अंतरगति औरै, पतियाँ लिखि पठवत जु बनाइ।

ज्यौं कोइल सुत-काग जियावै, भाव भगति भोजन जु खवाइ।
कुहुकि कुहुकि आऐं बसंत रितु, अंत मिलै अपने कुल जाइ।
ज्यौं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, बहुरि न बूझे बातैं आइ।
सूर जहाँ लगि स्याम गात हैं, तिनसौं कीजै कहा सगाइ ।।६८।।

आए जोग सिखावन पाँड़े।
परमारथी पुराननि लादे, ज्यौं बनजारे टाँड़े।
हमरे गति-पति कमल-नयन की, जोग सिखैं ते राँड़े।
कहौ मधुप कैसे समाहिंगे, एक म्यान दो खाँड़े।
कहु षट्पद कैसैं खैयतु है, हाथिन कै सँग गाँड़े।
काकी भूख गई बयारि भषि, बिना दूध घृत माँड़े।
काहै कौं झाला लै मिलवत, कौन चोर तुम डाँड़े।
सूरदास तीनौ नहिं उपजत, धनिया, धान कुम्हाँड़े ।।६९।।

तीसरा संवाद

ज्ञान बिना कहुँवै सुख नाहीं।
घट घट ब्यापक दारु अगिनि ज्यौं, सदा बसै उर माहीं।
निरगुन छाँड़ि सगुन कौं दौरतिं, सुधौं कहौ किहिं पाहीं।
तत्व भजौ जो निकट न छूटै, ज्यौं तनु तैं परछाहीं।
तिहि तैं कहौ कौंन सुख पायौ, जिहिं अब लौं अवगाहीं।
सूरदास ऐसैं करि लागत, ज्यौं कृषि कीन्हे पाहीं ।।७०।।

ऊधौ कही सु फेरि न कहिऐ।
जौ तुम हमैं जिवायौ चाहत, अनबोले ह्वै रहिऐ।
प्रान हमारे घात होत है, तुम्हरे भाऐं हाँसी।
या जीवन तैं मरल भलौ है, करवट लैहैं कासी।
पूरब प्रीति सँभारि हमारी, तुमकौं कहन पठायौ।
हम तौ जरि बरि भस्म भईं तुम, आनि मसान जगायौ।
कै हरि हमकौं आनि मिलावहु, कै लै चलिये साथैं।
सूर स्याम बिनु प्रान तजति हैं, दोष तुम्हारे माथैं ।।७१।।

घर ही के बाढ़े रावरे।
नाहिन मीत-वियोग बस परे, अनब्यौंगे अलि बाबरे।
बरु मरि जाइ चरैं नहिं तिनुका, सिंह को यहै स्वभाव रे।
स्रवन सुधा-मुरली के पोषे, जोग जहर न खवाब रे।

ऊधौ हमहिँ सीख कह दैहौ, हरि बिनु अनत न ठाँव रे।
सूरदास कहा लै कीजै, थाही नदिया नाव रे।।७२।।

हमकौं हरि की कथा सुनाउ।
ये आपनी ज्ञान गाथा अलि, मथुरा ही लै जाउ।
नागरि नारि भलैं समझैंगी, तेरौ बचन बनाउ।
पा लागौं ऐसी इन बातनि, उनही जाइ रिझाउ।
जौ सुचि सखा स्याम सुंदर कौ, अरु जिय मैं सति भाउ।
तौ बारक आतुर इन नैननि, हरि मुख आनि दिखाउ।
जौ कोउ कोटि करै कैसिहुँ बिधि, बल विद्या व्यवसाउ।
तउ सुनि सूर मीन कौं जल बिनु, नाहिँ न और उपाउ।।७३।।

ऊधौ बानी कौन ढरैगौ, तोसौं उत्तर कौन करैगौ।
या पाती के देखत हीं अब, जल सावन कौ नैन ढरैगौ।
बिरह-अगिनि तन जरत निसा-दिन, करहिँ छुवत तुव जोग जरैगौ।
नैन हमारे सजल हैं तारे, निरखत ही तेरौ ज्ञान गरैगौ।
हमहिँ वियोगऽरु सोग स्याम कौ, जोग रोग सौं कौन अरैगौ।
दिन दस रहौ जु गोकुल महियाँ, तब तेरौ सब ज्ञान मरैगौ।
सिंगी सेल्ही भसमऽरु कंथा, कहि अलि काके गरैं परैगौ।
जे ये लट हरि सुमननि गूंधी, सीस जटा अब कौन धरैगौ।
जोग सगुन लै जाहु मधुपुरी, ऐसे निरगुन कौन तरैगौ।
हमहिं ध्यान पल छिन मोहन कौं, बिन दरसन कछुवै न सरैगौ।
निसि दिन सुमिरन रहत स्याम कौ, जोग अगिनि मैं कौन जरैगौ।
कैसहुँ प्रेम नेम मोहन कौं, हित चित तैं हमरैं न टरैगौ।
नित उठि आवत जोग सिखावन, ऐसी बातनि कौन भरैगौ।
कथा तुम्हारी सुनत न कोऊ, ठाढ़े ही अब आप ररैगौ।
बादिहिँ रटत उठत अपने जिय, को तोसौं बेकाज लरैगौ।
हम अँग अंग स्याम रँग भीनी, को इन बातनि सूर डरैगौ।।७४।।

ऊधौ तुम ब्रज की दसा बिचारौ।
ता पाछैं यह सिद्ध आपनी, जोग कथा बिस्तारौ।
जा कारण तुम पठए माधौ, सो सोचौ जिय माहीं।
केतिक बीच बिरह परमारथ, जानत हौ किधौं नाहीं।

तुम परवीन चतुर कहियत हौ, संतत निकट रहत हौ।
जल बूड़त अवलंब फेन कौ, फिरि फिर कहा गहत हौ।
वह मुसकान मनोहर चितवनि, कैसैं उर तैं टारौं।
जोग जुक्ति अरु मुक्ति परम निधि, वा मुरली पर वारौं।
जिहिं उर कमल-नयन जु बसत हैं, तिहिं निरगुन क्यौं आवै।
सूरदास सो भजन बहाऊँ, जाहि दूसरौ भावै।।७५।।

ऊधौ हरि काहे के अंतरजामी।
अजहुँ न आइ मिलत इहिं अवसर, अवधि बतावत लामी।
अपनी चोप आइ उड़ि बैठत, अलि ज्यौं रस के कामी।
तिनकौ कौन परेखौ कीजै, जे हैं गरुड़ के गामी।
आई उघरि प्रीति कलई सी, जैसी खाटी आमी।
सूर इते पर अनखनि मरियत, ऊधौ पीवत मामी।।७६।।

निरगुन कौन देस कौ बासी ?
मधुकर कहि समुझाइ सौंह दै, बूझतिं साँचि न हाँसी।
को है जनक, कौन है जननी, कौन नारि, को दासी ?
कैसौ बरन भेष है कैसौ, किहिं रस मैं अभिलाषी ?
पावैगौ पुनि कियौ आपनौ, जो रे करैगौ गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यौ बावरौ, सूर सबै मति नासी।।७७।।

कहियौ ठकुराइति हम जानी।
अब दिन चारि चलहु गोकुल मैं, सेवहु आइ बहुरि रजधानी।
हमकौं हौंस बहुत देखन की, संग लियैं कुबिजा पटरानी।
पहुनाई ब्रज कौ दधि माखन, बड़ौ पलँग अरु तातौ पानी।
तुम जनि डरौ उखल तौ तोरयौ, दाँवरिहू अब भई पुरानी।
वह बल कहाँ जसोमति कैं कर, देह रावरैं सोच बुढ़ानी।
सुरभी बाँटि दई ग्वालनि कौं, मोर-चन्द्रिका सबै उड़ानी।
सूर नंद जू के पालागौं, देखहु आइ राधिका स्यानी।।७८।।

सुनि सुनि ऊधौ आवति हाँसी।
कहँ वै ब्रह्मादिक के ठाकुर, कहाँ कंस की दासी।
इंद्रादिक की कौन चलावै, संकर करत खवासी।
निगम आदि बंदीजन जाके, सेष सीस के बासी।

जाकैं रमा रहति चरननि तर, कौन गनै कुबिजा सी ।
सूरदास-प्रभु दृढ़ करि बाँधे, प्रेम-पुंज की पासी ।।७६।।

काहे कौं गोपीनाथ कहावत ।
जौ मधुकर वै स्याम हमारे, क्यौं न इहाँ लौं आवत ।
सपने कौ पहिचानि मानि जिय, हमहिं कलंक लगावत ।
जो पै कृष्न कूबरी रीझे, सोइ किन बिरद बुलावत ।
ज्यौं गजराज काज के औरै, औरै दसन दिखावत ।
ऐसैं हम कहिबे सुनिबे कौं, सूर अनत बिरमावत ।।८०।।

साँवरौ साँवरी रैनि कौ जायौ ।
आधी राति कंस के त्रासनि, बसुद्यौ गोकुल ल्यायौ ।
नंद पिता अरु मातु जसोदा, माखन मही खवायौ ।
हाथ लकुट कामरि काँधे पर, बछरुन साथ डुलायौ ।
कहा भयौ मधुपुरी अवतरे, गोपीनाथ कहायौ ।
ब्रज बधुअनि मिलि साँट कटीली, कपि ज्यौं नाच नचायौ ।
अब लौं कहाँ रहे हो ऊधौ, लिखि-लिखि जोग पठायौ ।
सूरदास हम यहै परेखौ, कुबरी हाथ बिकायौ ।।८१।।

जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै ।
मूरी के पातनि के बदलैं, को मुक्ताहल दैहै ।
यह ब्यौपार तुम्हारौ ऊधौ, ऐसैं ही धरचौ रैहै ।
जिन पै तैं लै आए ऊधौ, तिनहिं के पेट समैहै ।
दाख छाँड़ि कै कटुक निबौरी, को अपने मुख खैहै ।
गुन करि मोही सूर साँवरैं, को निरगुन निरबैहै ।।८२।।

मीठी बातनि मैं कहा लीजै ।
जौ पै वै हरि होहिं हमारे, करन कहैं सोइ कीजै ।
जिन मोहन अपनैं कर काननि, करनफूल पहिराए ।
तिन मोहन माटी के मुद्रा, मधुकर हाथ पठाए ।
एक दिवस बेनी बृन्दावन, रचि पचि बिबिध बनाइ ।
ते अब कहत जटा माथे पर, बदलौ नाम कन्हाइ ।
लाइ सुगन्ध बनाइ आभूषन, अरु कीन्हो अरधंग ।
सो वै अब कहि-कहि पठवत हैं, भसम चढ़ावन अंग ।

हम कहा करैं दूरि नँद-नंदन, तुम जु मधुप मधुपाती ।
सूर न होहिं स्याम के मुख की, जाहु न जारहु छाती ।।८३।।

ऊधौं तुम हौ निकट के बासी ।
यह निरगुन लै तिनहिं सुनावहु, जे मुड़िया बसैं कासी ।
मुरलीधरन सकल अंग सुन्दर, रूप सिंधु की रासी ।
जोग बटोरे लिए फिरत हौ, ब्रजवासिन की फाँसी ।
राजकुमार भलैं हम जाने, घर मैं कंस की दासी ।
सूरदास जदुकुलहिँ लजावत, ब्रज मैं होति है हाँसी ।।८४।।

जा दिन तैं गोपाल चले ।
ता दिन तैं ऊधौ या ब्रज के, सब स्वभाव बदले ।
घटे अहार बिहार हरष हित, सुख सोभा गुन गान ।
ओज तेज सब रहित सकल बिधि, आरति असम समान ।
बाढ़ी निसा, बलय आभूषन, उर-कंचुकी उसास ।
नैननि जल अंजन अंचल प्रति, आवन अवधि की आस ।
अब यह दसा प्रगट या तन की, कहियौ जाइ सुनाइ ।
सूरदास प्रभु सो कीजौ जिहिँ, बेगि मिलहिँ अब आइ ।।८५।।

हम तौ कान्ह केलि की भूखी ।
कहा करैं लै निगु'न तुम्हरौ, बिरहिनि बिरह बिदूषी ।
कहियै कहा यहै नहिँ जानत, कहौ जोग किहि जोग ।
पालगौं तुमहीं सेंवा पुर, बसत बावरे लोग ।
चंदन, अभरन, चीर चारु बर, नेकु आप तन कीजै ।
दंड, कमंडल, भसम, अधारी, तब जुवतिनि कौं दीजै ।
सूर देखि दृढ़ता गोपिन की, ऊधौ दृढ़ ब्रत पायौ ।
करी कृपा जदुनाथ मधुप कौं, प्रेमहिँ पढ़न पठायौ ।।८६।।

चौथा संवाद

गोपी सुनहु हरि संदेस ।
कह्यौ पूरन ब्रह्म ध्यावहु, त्रिगुन मिथ्या भेष ।
मैं कहौं सो सत्य मानहु, सगुन डारहु नाखि ।
पंच त्रय-गुन सकल देही, जगत ऐसौ भाषि ।

ज्ञान बिनु नर-मुक्ति नाहीं, यह विषय संसार।
रूप-रेख, न नाम जल-थल, बरन अबरन सार।
मातु-पितु कोउ नाहिं नारी, जगत मिथ्या लाइ।
सूर सुख-दुख नहीं जाकैं, भजो ताकौं जाइ ॥८७॥

ऐसी बात कहौ जनि ऊधौ।
कमलनैन की कानि करति हैं, आवत बचन न सूधौ।
बातनि ही उड़ि जाहिं और ज्यौं, त्यौं नाहीं हम काँची।
मन, बच, कर्म सोधि एकै मत, नंद-नँदन रँग राँची।
सो कछु जतन करौ पालागौं, मिटै हियै की सूल।
मुरलीधरहिं आनि दिखरावहु, ओढ़े पीत दुकूल।
इनहीं बातनि भए स्याम तनु, मिलवत हौ गढ़ि छोलि।
सूर बचन सुनि रह्यौ ठगौसौ, बहुरि न आयौ बोलि ॥८८॥

फिरि फिरि कहा बनावत बात।
प्रातकाल उठि खेलत ऊधौ, घर-घर माखन खात।
जिनकी बात कहत तुम हमसौं, सो है हमसौं दूरि।
ह्याँ हैं निकट जसोदा-नंदन, प्रान सजीवन मूरि।
बालक संग लिऐं दधि चोरत, खात खवावत डोलत।
सूर सीस नीचौ कत नावत, अब काहैं नहिं बोलत ॥८९॥

फिरि-फिरि कहा सिखावत मौन।
बचन दुसह लागत अलि तेरे, ज्यौं पजरे पर लौन।
सृंगी, मुद्रा, भस्म, त्वचा-मृग, अरु अवराधन पौन।
हम अबला अहीरि सठ मधुकर, धरि जानहिं कहिं कौन।
यह मत जाइ तिनहिं तुम सिखवहु, जिनहिं आजु सब सोहत।
सूरदास कहुँ सुनी न देखी, पोत सूतरी पोहत ॥९०॥

ऊधौ हमहिं न जोग सिखैयै।
जिहिं उपदेस मिलैं हरि हमकौं, सो ब्रत नेम बतैयै।
मुक्ति रहौ घर बैठि आपने, निर्गुन सुनि दुख पैयै।
जिहिं सिर केस कुसुम भरि गूँदे, कैसैं भस्म चढ़ैयै।
जानि जानि सब मगन भई हैं, आपुन आपु लखैयै।
सूरदास-प्रभु सुनहु नवौ निधि, बहुरि कि इहिं ब्रज अइयै ॥९१॥

मधुकर स्याम हमारे ईस ।
तिनकौ ध्यान धरैं निसि बासर, औरहिं नवै न सीस ।
जोगिनि जाइ जोग उपदेसहु, जिनके मन दस-बीस ।
एकै चित एकै वह मूरति, तिन चितवतिं दिन तीस ।
काहें निरगुन ग्यान आपनौ, जित कित डारत खीस ।
सूरदास प्रभु नंद-नँदन बिनु, हमरे को जगदीस ।।९२।।
सतगुरु चरन भजे बिनु विद्या, कह कैसैं कोउ पावै ।
उपदेसक हरि दूरि रहे तैं, क्यौं हमरे मन आवै ।
जो हित कियौ तौ अधिक करहिं किन, आपुन आनि सिखावैं ।
जोग बोझ तैं चलि न सकैं तौ, हमहीं क्यौं न बुलावैं ।
जोग ज्ञान मुनि नगर तजे बरु, सघन गहन बन धावैं ।
आसन मौन नेम मन संजम, बिपिन मध्य बनि आवैं ।
आपुन कहैं करैं कछु औरै, हम सबहिनि डहकावैं ।
सूरदास ऊधौ सौं स्यामा, अति संकेत जनावैं ।।९३।।
ऊधौ मन नहिं हाथ हमारे ।
रथ चढ़ाइ हरि संग गए लै, मथुरा जबहिं सिधारे ।
नातरु कहा जोग हम छाँड़हिं, अति रुचि कै तुम ल्याए ।
हम तौ झँखति स्याम की करनी, मन लै जोग पठाए ।
अजहूँ मन अपनौ हम पावैं, तुम तैं होइ तो होइ ।
सूर सपथ हमैं कोटि तिहारी, कही करैंगी सोइ ।।९४।।
ऊधौ मन न भए दस बीस ।
एक हुतौ सो गयौ स्याम सँग, को अवराधै ईस ।
इंद्री सिथिल भई केसव बिनु, ज्यौं देही बिनु सीस ।
आसा लागि रहति तन स्वासा, जीवहिं कोटि बरीस ।
तुम तौ सखा स्याम सुंदर कें, सकल जोग के ईस ।
सूर हमारैं नंद-नँदन बिनु, और नहीं जगदीस ।।९५।।
इहिं उर माखन चोर गड़े ।
अब कैसैं निकसत सुनि ऊधो, तिरछें ह्वै जु अड़े ।
जदपि अहीर जसोदा-नंदन, कैसैं जात छँड़े ।
ह्वाँ जादौपति प्रभु कहियत हैं, हमैं न लगत बड़े ।

को बसुदेव देवकी नंदन, को जानै को बूझै।
सूर नंद-नंदन के देखत, और न कोऊ सूझै ॥९६॥

मन मैं रह्यौ नाहिंन ठौर।
नंद-नंदन अछत कैसैं, आनियै उर और।
चलत चितवत दिवस जागत, स्वप्न सोवत राति।
हृदय तैं वह मदन मूरति, छिन न इत उत जाति।
कहत कथा अनेक ऊधौ, लोग लोभ दिखाइ।
कह करौं मन प्रेम पूरन, घट न सिंधु समाइ।
स्याम गात सरोज आनन, ललित मृदु मुख हास।
सूर इनकैं दरस कारन, मरत लोचन प्यास ॥९७॥

मधुकर स्याम हमारे चोर।
मन हरि लियौ तनक चितवनि मैं, चपल नैन की कोर।
पकरे हुते हृदय उर अंतर, प्रेम प्रीत कैं जोर।
गए छँड़ाइ तोरि सब बंधन, दै गए हँसनि अँकोर।
चौंकि परीं जागत निसि बीती, दूर मिल्यौ इक भौंर।
सूरदास प्रभु सरबस लूट्यौ, नागर नवल-किसोर ॥९८॥

सब दिन एकहिं से नहिं होतें।
तब अलि ससि सीरौ अब तातौ, भयो बिरह जरि मो तैं।
तब षट मास रास-रस-अंतर, एकहु निमिष न जाने।
अब औरै गति भई कान्ह बिनु, पल पूरन जुग माने।
कह मति जोग ज्ञान साखा श्रुति, ते किन कहे घनेरे।
अब कछु और सुहाइ सूर नहिं, सुमिरि स्याम गुनि केरे ॥९९॥

सखी री स्याम सबै इक सार।
मीठे बचन सुहाए बोलत, अंतर जारनहार।
भँवर कुरंग काक अरु कोकिल, कपटिन की चटसार।
कमलनैन मधुपुरी सिधारे, मिटि गयौ मङ्गलचार।
सुनहु सखी री दोष न काहू, जो बिधि लिख्यौ लिलार।
यह करतूति उनहिं की नाहीं, पूरब बिबिध बिचार।
कारी घटा देखि बादर की, सोभा देति अपार।
सूरदास सरिता सर पोषत, चातक करत पुकार ॥१००॥

बिलग जनि मानौ ऊधौ कारे ।
वह मथुरा काजर की ओबरि, जे आवैं ते कारे ।
तुम कारे सुफलक सुत कारे, कारे कुटिल सँवारे ।
कमलनैन की कौन चलावै, सबहिनि मैं मनियारे ।
मानौ नील माट तैं काढ़े, जमुना आइ पखारे ।
तातैं स्याम भई कालिंदी, सूर स्याम गुन न्यारे ।।१०१।।

ऊधौ भली भई ब्रज आए ।
बिधि कुलाल कीन्हे काँचे घट, ते तुम आनि पकाए ।
रँग दीन्हौ हो कान्ह साँवरैं, अँग-अँग चित्र बनाए ।
यातैं गरे न नैन नेह तैं, अवधि अटा पर छाए ।
ब्रज करि अँवा जोग ईंधन करि, सुरति आनि सुलगाए ।
फूँक उसास बिरह प्रजरनि सँग, ध्यान दरस सियराए ।
भरे सँपूरन सकल प्रेम-जल, छुवन न काहू पाए ।
राज काज तैं गए सूर प्रभु, नंद-नँदन कर लाए ।।१०२।।

जौ पै हिरदै माँझ हरी ।
तौ कहि इती अवज्ञा उनपै, कैसैं सही परी ।
तब दावानल दहन न पायौ, अब इहिं बिरह जरी ।
तब तैं निकसि नंद-नंदन हम, सीतल क्यौं न करी ।
दिन प्रति नैन इंद्र जल बरषत, घटत न एक घरी ।
अति ही सीत भीत तन भींजत, गिरि अंचल न धरी ।
कर-कंकन दरपन लै देखौ, इहिं अति अनख मरी ।
क्यौं अब जियहिं जोग सुनि सूरज, बिरहिनि बिरह भरी ।।१०३।।

ऐसौ जोग न हम पै होइ ।
आँखि मूँदि कह पावैं ढूँढ़े, अँधरे ज्यौं टकटोइ ।
भसम लगावन कहत जु हमकौ, अंग कुंकमा धोइ ।
सुनि कै बचन तुम्हारे ऊधौ, नैना आवत रोइ ।
कुंतल कुटिल मुकुट कुंडल छबि, रही जु चित मैं पोइ ।
सूरज प्रभु बिनु प्रान रहैं नहिं, कोटि करौ किन कोइ ।।१०४।।

हमसौं उनसौं कौन सगाई ।
हम अहीर अबला ब्रजवासी, वै जदुपति जदुराई ।

कहा भयौ जु भए जदुनंदन, अब यह पदवी पाई।
सकुच न आवत घोष बसत की, तजि ब्रज गए पराई।
ऐसे भए उहाँ जादौपति, गए गोप बिसराई।
सूरदास यह ब्रज कौ नातौ, भूलि गए बलभाई।।१०५।।

तौ हम मानैं बात तुम्हारी।
अपनौ ब्रह्म दिखावहु ऊधौ, मुकुट पितांबर धारी।
मनिहैं तब ताकौ सब गोपी, सहि रहिहैं बरु गारी।
भूत समान बतावत हमकौं, डारहु स्याम बिसारी।
जे मुख सदा सुधा अँचवत हैं, ते विष क्यौं अधिकारी।
सूरदास-प्रभु एक अंग पर, रीझि रहीं ब्रजनारी।।१०६।।

ऊधौ जोग बिसरि जनि जाहु।
बाँधौ गाँठि छूटि परिहै कहुँ, फिरि पाछैं पछितहु।
ऐसौ बहुत अनूपम मधुकर, मरम न जानै और।
ब्रज वनितनि के नहीं काम की, है तुम्हरेई ठौर।
जौ हित करि पठयौ मनमोहन, सो हम तुमकौं दीनौ।
सूरदास ज्यौं बिप्र नारियर, करहीं बंदन कीनौ।।१०७।।

ऊधौ काहे कौं भक्त कहावत।
जु पै जोग लिखि पठयौ हमकौ, तुमहुँ न भस्म चढ़ावत।
शृङ्गी मुद्रा भस्म अधारी, हमहीं कहा सिखावत।
कुबिजा अधिक स्याम की प्यारी, ताहिं नहीं पहिरावत।
यह तौ हमकौं तबहिं न सिखयौ, जब तैं गाइ चरावत।
सूरदास प्रभु कौं कहियौ अब, लिखि-लिखि कहा पठावत।।१०८।।

(ऊधौ) ना हम बिरहिनि ना तुम दास।
कहत सुनत घट प्रान रहत हैं, हरि तजि भजहु अकास।
बिरही मीन मरै जल बिछुरैं, छाँड़ि जियन की आस।
दास भाव नहिं तजत पपीहा, बरषत मरत पियास।
पंकज परम कमल मैं बिहरत, बिधि कियौ नीर निरास।
राजिव रवि कौ दोष न मानत, ससि सौं सहज उदास।
प्रगट प्रीति दसरथ प्रतिपाली, प्रीतम कैं बनवास।
सूर स्याम सौं दृढ़ ब्रत राख्यौ, मेटि जगत उपहास।।१०९।।

ऊधौ लै चल लै चल।
जहँ वै सुन्दर स्याम बिहारी, हमकौं तहँ लै चल।
आवन-आवन कहि गए ऊधौ, करि गए हमसौं छल।
हृदय की प्रीति स्याम जू जानत, कितिक दूरि गोकुल।
आपुन जाइ मधुपुरी छाए, उहाँ रहे हिलि मिल।
सूरदास स्वामी के बिछुरैं, नैननि नीर प्रबल ।।११०।।
गुप्त मते की बात कहौं, जो कहौ न काहू आगैं।
कै हम जानैं कै हरि तुमहूँ, इतनी पावहिं माँगैं।
एक बेर खेलत बृन्दावन, कंटक चुभि गयौ पाइ।
कंटक सौं कंटक लै काढ़्यौ, अपनैं हाथ सुभाइ।
एक दिवस बिहरत बन भीतर, मैं जु सुनाई भूख।
पाके फल वै देखि मनोहर, चढ़े कृपा करि रूख।
ऐसी प्रीति हमारी उनकी, बसतैं गोकुल बास।
सूरदास प्रभु सब बिसराई, मधुबन कियौ निवास ।।१११।।
ऊधौ जौ हरि हितू तुम्हारे।
तौ तुम कहियौ जाइ कृपा करि, ए दुख सबै हमारे।
तन तरिवर उर स्वास पवन मैं, बिरह दवा अति जारे।
नहिं सिरात नहिं जात छार ह्वै, सुलगि-सुलगि भए कारे।
जद्यपि प्रेम उमँगि जल सींचे, बरषि-बरषि घन हारे।
जौ सींचे इहिं भाँति जतन करि, तौ एतैं प्रतिपारे।
कीर कपोत कोकिला चातक, बधिक बियोग बिडारे।
क्यौं जीवैं इहिं भाँति सूर प्रभु, ब्रज के लोग बिचारे ।।११२।।
बिलग हम मानैं ऊधौ काकौ।
तरसत रहे बसुदेव देवकी, नहिँ हित मातु पिता कौ।
काके मातु पिता को काकौ, दूध पियौ हरि जाकौ।
नंद जसोदा लाड़ लड़ायौ, नाहिँ भयौ हरि ताकौ।
कहियौ जाइ बनाइ बात यह, को हित है अबला कौ।
सूरदास प्रभु प्रीति है कासौं, कुटिल मीत कुबिजा कौ ।।११३।।
जीवन मुख देखे कौ नीकौ।
दरस, परस दिन राति पाइयत, स्याम पियारे पी कौ।

सूनौ जोग कहा लै कीजै, जहाँ ज्यान है जी कौ।
नैननि मूँदि मूँदि कह देखौं, बँधौ ज्ञान पोथी कौ।
आछे सुन्दर स्याम हमारे, और जगत सब फीकौ।
खाटे मही कहा रुचि मानै, सूर खवैया घी कौ ।।११४।।

अपने सगुन गोपालहिं माई, इहिं बिधि काहैं देति।
ऊधौ की इन मीठी बातनि, निर्गुन कैसैं लेति।
धर्म, अर्थ, कामना सुनावत, सब सुख मुक्ति समेति।
काकी भूख गई मन लाड़ू, सो देखहु चित चेति।
जाकौ मोक्ष बिचारत बरनत, निगम कहत हैं नेति।
सूर स्याम तजि को भुस फटकै, मधुप तुम्हारे हेति ।।११५।।

पाँचवाँ संवाद

वे हरि सकल ठौर के बासी।
पूरन ब्रह्म अखंडित मंडित, पंडित मुनिन बिलासी।
सप्त पताल ऊरध अध पृथ्वी, तल नभ बरुन बयारी।
अभ्यंतर दृष्टी देखन कौं, कारन रूप मुरारी।
मन, बुधि, चित, अहँकार दसेंद्रिय, प्रेरक थंभनकारी।
ताकैं काज वियोग बिचारत, ये अबला-ब्रजनारी।
जाकौं जैसौ रूप मन रुचै, सो अपबस करि लीजै।
आसन बैसन ध्यान धारना, मन आरोहन कीजै।
षट दल अठ द्वादस दल निरमल, अजपा जाप जपाली।
त्रिकुटी संगम ब्रह्म द्वार भिदि, यौं मिलिहैं बनमाली।
एकादस गीता श्रुति साखी, जिहिं बिधि मुनि समुझाए।
ते संदेस श्रीमुख गोपिनि कौ, सूर सु मधुप सुनाए ।।११६।।

ऊधौ हमरी सौं तुम जाहु।
यह गोकुल पूनौ कौ चंदा, तुम ह्वै आए राहु।
ग्रह के ग्रसे गुसा परगास्यौ, अब लौं करि निरबाहु।
सब रस लै नँदलाल सिधारे, तुम पठए बड़ साहु।
जोग बेचि कै तंदुल लीजै, बीच बसेरे खाहु।
सूरदास जबहीं उठि जैहौ, मिटिहै मन कौ दाहु ।।११७।।

ऊधौ मौन साधि रहे।
जोग कहि पछितात मन-मन, बहुरि कछु न कहे।
स्याम कौं यह नहीं बूझै, अतिहि रहे खिसाइ।
कहा मैं कहि-कहि लजानौ, नार रह्यौ नवाइ।
प्रथम ही कहि बचन एकै, रह्यौ गुरु करि मानि।
सूर प्रभु मोकौं पठायौ, यहै कारन जानि।।११८।।

मधुकर भली करी तुम आए।
वै बातैं कहि कहि या दुख मैं, व्रज के लोग हँसाए।
मोर मुकुट मुरली पीतांबर, पठवहु सौंज हमारी।
आपुन जटाजूट, मुद्रा धरि, लीजै भस्म अधारी।
कौन काज बृन्दावन कौ सुख, दही भात की छाक।
अब वै स्याम कूबरी दोऊ, बने एक ही ताक।
वै प्रभु बड़े सखा तुम उनके, जिनकैं सुगम अनीति।
या जमुना जल कौ सुभाव यह, सूर बिरह की प्रीति।।११९।।

कांहे कौं रोकत मारग सूधौ।
सुनहु मधुप निरगुन कंटक तैं, राजपंथ क्यौं रूँधौ।
कै तुम सिखि पठए हौ कुबिजा, कह्यौ स्याम घनहूँ धौं।
वेद पुरान सुमृति सब ढूंढ़ौ, जुवतिनि जोग कहूँ धौं।
ताकौ कहा परेखौ कीजै, जानै छाँछ न दूधौ।
सूर मूर अक्रूर गयौ लै, ब्याज निबेरत ऊधौ।।१२०।।

ऊधौ कोउ नाहिंन अधिकारी।
लै न जाहु यह जोग आपनौ, कत तुम होत दुखारी।
यह तौ बेद उपनिषद मत है, महा पुरुष व्रतधारी।
हम अबला अहीरि व्रज-बासिनि, नाहीं परत सँभारी।
को है सुनत कहत हौ कासौं, कौन कथा बिस्तारी।
सूर स्याम कैं संग गयौ मन, अहि काँचुली उतारी।।१२१।।

वै बातें जमुना-तीर की।
कबहुँक सुरति करत हैं मधुकर, हरन हमारे चीर की।
लीन्हे बसन देखि ऊंचे द्रुम, रबकि चढ़न बलबीर की।
देखि-देखि सब सखी पुकारतिं, अधिक जुड़ाई नीर की।

दोऊ हाथ जोरि करि माँगैं, ध्वाई नंद अहीर की ।
सूरदास प्रभु सब सुख दाता, जानत हैं पर पीर की ।।१२२।।

प्रेम न रुकत हमारे बूतें ।
किहिं गयंद बाँध्यौ सुनि मधुकर, पदुम नाल के काँचे सूतैं ?
सोवत मनसिज आनि जगायौ, पठै सँदेस स्याम के दूतैं ।
बिरह-समुद्र सुखाइ कौन बिधि, रंचक जोग अगिनि के लूतैं ।
सुफलक सुत अरु तुम दोऊ मिलि, लीजै मुकुति हमारे हूतैं ।
चाहतिं मिलन सूर के प्रभु कौं, क्यौं पतियाहिं तुम्हारे धूतैं ।।१२३।।

ऊधौ सुनहु नैकु जो बात ।
अबलनि कौं तुम जोग सिखावत, कहत नहीं पछितात ।
ज्यौं ससि बिना मलीन कुमुदिनी, रवि बिनुहीं जलजात ।
त्यौं हम कमलनैन बिनु देखे, तलफि-तलफि मुरझात ।
जिन स्रवननि मुरली सुर आँचयौ, मुद्रा सुनत डरात ।
जिन अधरनि अमृत फल चाख्यौ, ते क्यौं कटु फल खात ।
कुंकुम चंदन घसि तन लावतिं, तिहिं न बिभूति सुहात ।
सूरदास प्रभु बिनु हम यौं हैं, ज्यौं तरु जीरन पात ।।१२४।।

ऊधौ जोग जोग हम नाहीं ।
अबला सार-ज्ञान कह जानैं, कैसैं ध्यान धराहीं ।
तेई मूँदन नैन कहत हौ, हरि मूरति जिन माहीं ।
ऐसी कथा कपट की मधुकर, हमतैं सुनी न जाहीं ।
स्रवन चीरि सिर जटा बँधावहु, ये दुख कौन समाहीं ।
चंदन तजि अँग भस्म बतावत, बिरह-अनल अति दाहीं ।
जोगी भ्रमत जाहि लगि भूले, सो तौ है अप माहीं ।
सूरस्याम तैं न्यारी न पल छिन, ज्यौं घट तैं परछाहीं ।।१२५।।

हम तौ नंद-घोष के बासी ।
नाम गुपाल जाति कुल गोपक, गोप गुपाल उपासी ।
गिरिवर धारी गोधन चारी, बृन्दावन अभिलाषी ।
राजा नंद जसोदा रानी, सजल नदी जमुना सी ।
मीत हमारे परम मनोहर, कमलनैन सुख रासी ।
सूरदास-प्रभु कहौं कहाँ लौं, अष्ट महा-सिधि दासी ।।१२६।।

यह गोकुल गोपाल उपासी।
जे गाहक निगुंन के ऊधौ, ते सब बसत ईस-पुर कासी।
जद्यपि हरि हम तजि अनाथ करि, तदपि रहतिं चरननि रस रासी।
अपनी सीतलता नहिँ छाँड़त, जद्यपि बिधु भयौ राहु-गरासी।
किहिँ अपराध जोग लिखि पठवत, प्रेम भगत तैँ करत उदासी।
सूरदास ऐसी को बिरहिनि, माँगि मुक्तिं छाँड़ै गुन रासी ॥१२७॥
ऐसौं सुनियत द्वै बैसाख।
देखति नहीं ब्यौंत जीवे कौ, जतन करौ कोउ लाख।
मृगमद मलय कपूर कुमकुमा, केसर मलियै साख।
जरत अगिनि मैं ज्यौं घृत नायौ, तन जरि ह्वै है राख।
ता ऊपर लिखि जोग पठावत, खाहु नीम, तजि दाख।
सूरदास ऊधौ की बतियाँ, सब उड़ि बैठीं ताख ॥१२८॥
इहिँ विधि पावस सदा हमारैं।
पूरब पवन स्वास उर ऊरध, आनि मिले इकठारैं।
बादर स्याम सेत नैननि मैं, बरसि आँसु जल ढारैं।
अरुन प्रकास पलक दुति दामिनि, गरजनि नाम पियारैं।
चातक दादुर मोर प्रकट ब्रज, बसत निरंतर धारैं।
ऊधव ये तब तैं अटके ब्रज, स्याम रहे हित टारैं।
कहिऐ काहि सुनै कत कोऊ, या ब्रज के ब्यौहारैं।
तुमही सौं कहि-कहि पछितानी, सूर बिरह के धारैं ॥१२९॥
ऊधौ कोकिल कूजत कानन।
तुम हमकौं उपदेश करत हौ, भस्म लगावन आनन।
औरौ सिखी सखा सँग लै लै, टेरत चढ़े पखानन।
बहुरौ आइ पपीहा कैं मिस, मदन हनत निज बानन।
हमतौ निपट अहीरि बावरी, जोग दीजिऐ जानन।
कहा कथत मौसी के आगैं, जानत नानी नानन।
तुम तौ हमैं सिखावन आए, जोग होइ निरवानन।
सूर मुक्ति कैसें पूजति है, वा मुरली के तानन ॥१३०॥
हमतैं हरि कबहूँ न उदास।
रास खिलाइ पिलाइ अधर रस, क्यौं बिसरत ब्रज बास।

तुमसौं प्रेम कथा कौं कहिबौ, मनौ काटिबौ घास।
बहिरौ तान-स्वाद कह जानै, गूँगौ बात मिठास।
सुनि री सखी बहुरि हरि ऐहैं, वह सुख वहै बिलास।
सूरदास ऊधौ अब हमकौं, भए तेरहौं मास ।।१३१।।

आयौ घोष बड़ौ ब्यौपारी।
खेप लादि गुरु ज्ञान जोग की, ब्रज मैं आनि उतारी।
फाटक दै कै हाटक माँगत, भोरौ निपट सुधारी।
धुरही तैं खोटौ खायौ है, लिये फिरत सिर भारी।
इनकै कहे कौन डहकावै, ऐसी कौन अनारी।
अपनौ दूध छाँड़ि को पीवै, खारे कूप कौ बारी।
ऊधौ जाहु सबारैं ह्याँ तैं, बेगि गहरु जनि लावहु।
मुख माँगौ पैहौ सूरज प्रभु, साहुहिं आनि दिखावहु ।।१३२।।

ऊधौ जोग कहा है कीजतु।
ओढ़ियत है कि बिछैयत है,किधौं खैयत है किधौं पीजत।
कीधौं कछू खिलौना सुंदर, की कछु भूषन नीकौ।
हमरे नंद-नँदन जो चहियतु, मोहन जीवन जी कौ।
तुम जु कहत हरि निगुन निरंतर, निगम नेति है रीति।
प्रकट रूप की रासि मनोहर, क्यौं छाँड़े परतीति।
गाइ चरावन गए घोष तैं, अबहीं हैं फिरि आवत।
सोई सूर सहाइ हमारे, बेनु रसाल बजावत ।।१३३।।

अपने स्वारथ के सब कोऊ।
चुप करि रहौ मधुप रस-लंपट, तुम देखे अरु ओऊ।
जो कछु कह्यौ कह्यौ चाहत हौ, कहि निरवारौ सोऊ।
अब मेरैं मन ऐसियै षटपद, होनी होउ सु होऊ।
तब कत रास रच्यौ बृन्दावन, जौ पै ज्ञान हुतोऊ।
लीन्हे जोग फिरत जुवतिनि मैं, बड़े सुपत तुम दोऊ।
छुटि गयौ मान परेखौ रे अलि, हृदै हुतौ वह जोऊ।
सूरदास प्रभु गोकुल बिसरयौ, चित चिंतामनि खोऊ ।।१३४।।

मधुकर प्रीति किये पछितानी।
हम जानी ऐसैहिं निबहैगी, उन कछु औरै ठानी।

वा मोहन कौं कौन पतीजै, बोलत मधुरी बानी।
हमकौं लिखि लिखि जोग पठावत, आपु करत रजधानी।
सूनी सेज सुहाइ न हरि बिनु, जागति रैनि बिहानी।
जब तैं गवन कियौ मधुबन कौं, नैननि बरषत पानी।
कहियौ जाइ स्याम सुंदर कौ, अन्तरगत की जानी।
सूरदास प्रभु मिलि कै बिछुरे, तातैं भईं दिवानी ।।१३५।।

हमारैं हरि हारिल की लकरी।
मनक्रम बचन नंद-नंदन उर, यह दृढ़ करि पकरी।
जागत सोवत स्वप्न दिवस-निसि, कान्ह-कान्ह जकरी।
सुनत जोग लागत है ऐसौ, ज्यौं करुई ककरी।
सु तौ ब्याधि हमकौं लै आए, देखी सुनी न करी।
यह तौ सर तिनहिं लै सौंपौ, जिनके मन चकरी ।।१३६।।

कहा होत जो हरि हित चित धरि, एक बार ब्रज आवते।
तरसत ब्रज के लोग दरस कौं, निरखि निरखि सुख पावते।
मुरली सब्द सुनाहत सबहिनि, हरते तन की पीर।
मधुरे बचन बोलि अमृत मुख, बिरहिनि देते धीर।
सब मिलि जग जस गावत उनकौ, हरष मानि उर आनत।
नासत चिन्ता ब्रज बनितनि की, जनम सुफल करि जानत।
दुरी दुरा कौ खेल न कोऊ, खेलत है ब्रज महियाँ।
बाल दसा लपटाइ गहत हे, हँसि-हँसि हमरी बहियाँ।
हम दासी बिनु मोल की उनकी, हमहिं जु चित्त बिसारी।
इत तैं उन हरि रमि रहे अब तौ, कुबिजा भई पियारी।
हिय मैं बातैं समुझि-समुझि कै, लोचन भरि-भरि आए।
सूर सनेही स्याम प्रीति के, ते अब भए पराए ।।१३७।।

मधुकर आपुन होहिं बिराने।
बाहर हेतु हितू कहवावत, भीतर काज सयाने।
ज्यौं सुक पिंजर माहिं उचारत, ज्यौं ज्यौं कहत बखाने।
छूटत हीं उड़ि मिलै अपुन कुल, प्रीति न पल ठहराने।
जद्यपि मन नहिं तजत मनोहर, तद्यपि कपटी जाने।
सूरदास प्रभु कौन काज कौं, माखी मधु लपटाने ।।१३८।।

हरि तैं भलौ सुपति सीता कौ।
जाकैं बिरह जतन ए कीन्हे, सिंधु कियौ बीता कौ।
लंका जारि सकल रिपु मारे, देख्यौ मुख पुनि ताकौ।
दूत हाथ उन लिखि जु पठायौ, ज्ञान कह्यौ गीता कौ।
तिनकौ कहा परेखौ कीजै, कुबिजा के मीता कौ।
चढ़े सेज सातौं सुधि बिसरी, ज्यौं पीता चीता कौ।
करि अति कृपा जोग लिखि पठयौ, देखि डराईं ताकौ।
सूरजदास प्रीति कह जानैं, लोभी नवनीता कौ ।।१३९।।

ऊधौ क्यौं बिसरत वह नेह।
हमरैं हृदय आनि नँद-नंदन, रचि रचि कीन्हे गेह।
एक दिवस गईं गाइ दुहावन, वहाँ जु बरष्यौ मेह।
लिए उढ़ाइ कामरी मोहन, निज करि मानी देह।
जब हमकौं लिखि-लिखि पठवत हैं, जोग जुगुति तुम लेहु।
सूरदास बिरहिनि क्यौं जीवैं, कौन सयानप एहु ।।१४०।।

ऊधौ मन माने की बात।
दाख छुहारा छाँड़ि अमृत-फल, बिषकीरा बिष खात।
ज्यौं चकोर कौं देइ कपूर कोउ, तजि अंगार अघात।
मधुप करत घर कोरि काठ मैं, बँधत कमल के पात।
ज्यौं पतंग हित जानि आपनौ, दीपक सौं लपटात।
सूरदास जाकौ मन जासौं, सोई ताहि सुहात ।।१४१।।

इहिं डर बहुरि न गोकुल आए।
सुनि री सखी हमारी करनी, समुझि मधुपुरी छाए।
अधरातक तैं उठि सब बालक, मोहिं टेरैंगे आइ।
मातु पिता मोकौं पठवैंगे, बनहिं चरावन गाइ।
सूने भवन आइ रोकैंगी, दधि चोरत नवनीत।
पकरि जसोदा पै लै जैहैं, नाचहु गावहु गीत।
ग्वारिनि मोहिं बहुरि बाँधैंगी, कै तव बचन सुनाइ।
वै दुख सूर सुमिरि मन ही मन, बहुरि सहै को जाइ ।।१४२।।

जौ कोउ बिरहिनि कौ दुख जानै।
तौ तजि सगुन साँवरी मूरति, कत उपदेसै ज्ञानै।

कुमुद चकोर मुदित बिधु निरखत, कहा करै लै भानै।
चातक सदा स्वांति कौ सेवक, दुखित होत बिनु पानै।
भौंर, कुरंग, काग, कोइल कौं, कबिजन कपट बखानैं।
सूरदास जौ सरबस दीजै, कारे कृतहि न मानैं ॥१४३॥

ऊधौ सुधि नाहीं या तन की।
जाइ कहौ तुम कित हौ भूले, हमऽब भईं बन-बन की।
इक बन ढूँढ़ि सकल बन ढूँढ़े, बन बेली मधुबन की।
हारि परीं बृन्दावन ढूँढ़त, सुधि न मिली मोहन की।
किए विचार उपचार न लागत, कठिन बिथा भई मन की।
सूरदास कोउ कहै स्याम सौं, सुरति करैं गोपिनि की ॥१४४॥

लरिकाईं कौ प्रेम कहौ अलि कैसैं छूटत।
कहा कहौं ब्रजनाथ चरित, अंतरगति लूटत।
वह चितवनि वह चाल मनोहर, वह मुसकानि मंद-धुनि गावनि।
नटवर-भेष नंद-नंदन कौ, वह विनोद, वह बन तैं आवनि।
चरन कमल की सौहं करति हौं, यह सँदेस मोहिं विषसौं लागत।
सूरदास पल मोहिं न बिसरति, मोहन मूरति सोवत जागत ॥१४५॥

उद्धव हृदय परिवर्तन तथा गोपी संदेश

मैं ब्रजबासिन की बलिहारी।
जिनके संग सदा क्रीड़त हैं, श्री गोबरधन-धारी।
किनहूँ कैं घर माखन चोरत, किनहूँ कैं संग दानी।
किनहूँ कैं सँग धेनु चरावत, हरि की अकथ कहानी।
किनहूँ कैं सँग जमुना कैं तट, बंसी टेरि सुनावत।
सूरदास बलि-बलि चरननि की, यह सुख मोहिं नित भावत ॥१४६॥

हौं इन मोरनि की बलिहारी।
जिनकी सुभग चंद्रिका माथै, धरति गोबरधनधारी।
बलिहारी वा बाँस-बंस की, बंसी सी सुकुमारी।
सदा रहति है कर जु स्याम कैं, नैकहुँ होति न न्यारी।
बलिहारी वा गुंज-जाति की, उपजी जगत उज्यारी।
सुन्दर हृदय रहत मोहन कैं, कबहूँ टरत न टारी।
बलिहारी कुल सैल सरित जिहिं, कहत कलिंद-दुलारी।
निसि-दिन कान्ह अंग आलिंगन, आपुनहूँ भई कारी।

बलिहारी बृन्दावन भूमिहिं, सुतौ भाग की सारी।
सूरदास प्रभु नाँगे पाइनि, दिन प्रति गैया चारी ।।१४७।।

हम पर हेत किये रहिबौ।
या ब्रज को ब्यौहार सखा तुम, हरि सौं सब कहिबौ।
देखे जात आपनी अँखियनि, या तन को दहिबौ।
तन की बिथा कहा कहौं तुमसौं, यह हमकौं सहिबौ।
तब न कियौ प्रहार प्राननि कौ, फिरि फिरि क्यौं चहिबौ।
अब न देह जरि जाइ सूर इनि, नैननि कौ बहिबौ ।।१४८।।

स्वामी पहिलौ प्रेम सँभारौ।
ऊधो जाइ चरन गहि कहियँ, जी तैं हित न उतारौ।
जो तुम मधुबन राज काज भए, गोकुल हम न अधारौ।
कमल नयन सो चैन न देखौ, नित उठि गोधन चारौ।
ये ब्रज लोग मया के सेवक, तिनसौं क्यौं न बिहारौ।
सूरदास प्रभु एक बार मिलि, सकल बिरह दुख टारौ ।।१४९।।

इतनी बात अलि कहियौ हरि सौं, कब लगि यह मन दुख मैं गारैं।
पथ जोहत तन कोकिल बरन भईं,निसि न नींद पिय पियहिं पुकारैं।
जा दिन तैं बिछुरे नँद-नंदन, अति दुख दारुन क्यौं निरबारैं।
सूरदास प्रभु बिनु यह बिपदा, काकौ दरसन देखि बिसारैं ।।१५०।।

ऊधौ जू, कहियौ तुम हरि सौं, जाइ हमारे हिय कौ दरद।
दिन नहिं चैन, रैनि नहिं सोवति, पावक भई जुन्हाई सरद।
जबतैं लै अक्रूर गए हैं, भई बिरह तन बाइ छरद।
काम प्रबल जाके अति ऊधौ, सोचत भइ जस पीत-हरद।
सखा प्रबीन निरंतर हरि के, तातैं कहति हैं खोलि परद।
ध्यावतिं रूप दरस तजि हरि कौ, सूर मूरि बिनु होतिं मुरद।।१५१।।

ऊधौ इक पतिया हमरौ लीजै।
चरन लागि गोबिंद सौं कहियौ, लिखौ हमारौ दीजै।
हम तौ कौन रूप गुन आगरि, जिहिं गुपाल जू रीझैं।
निरखत नैन-नीर भरि आए, अरु कंचुकि पट भीजैं।
तलफत रहतिं मीन चातक ज्यौं, जल बिनु तृषा न छीजै।
अति ब्याकुल अकुलातिं बिरहिनी, सुरति हमारी कीजै।

अँखियाँ खरी निहारतिँ मधुबन, हरि-बिनु ब्रज बिष पीजै।
सूरदास-प्रभु कबहिँ मिलैंगे, देखि देखि मुख जीजै ॥१५२॥
हम मति हीन कहा कछु जानैं, ब्रजबासिनी अहीर।
वै जु किसोर नवल नागर तन, बहुत भूप की भीर।
बचन की लाज सुरति करि राखौ, तुम अलि इतनी कहियौ।
भली भई जौ दूत पठायौ, इतनी बोल निबहियौ।
एक बार तौ मिलौ कृपा करि, जौ अपनो ब्रज जानौ।
यहै रीति संसार सबनि की, कहा रंक कह रानौ।
हम अनाथ तुम नाथ गुसाईं, राखौ, क्यौं नहिं सोई।
षट रितु ब्रज पै आनि पुकारैं, सूरदास अब कोई ॥१५३॥

नंद-नँदन सौं इतनी कहियौ।
जद्यपि ब्रज अनाथ करि डार्‌यौ, तद्यपि सुरति किये चित रहियौ।
तिनका तोर करहु जनि हम सौं, एक बास की लाज निबहियौ।
गुन औगुननि दोष नहिं कीजतु, हम दासिनि की इतनी सहियौ।
तुम बिनु प्रान कहा हम करिहैं, यह अवलंब न सुपनेहु लहियौ।
सूरदास पाती लिखि पठई, जहाँ प्रीति तहँ ओर निबहियौ ॥१५४॥

बिनु गुपाल बैरिन भईं कुंजैं।
तब वै लता लगति तन सीतल, अब भईं विषम ज्वाल की पुंजैं।
बृथा बहति जमुना, खग बोलत, बृथा कमल-फूलनि अलि गुंजैं।
पवन, पान, घनसार, सजीवन, दधि-सुत किरनि भानु भईं भुंजैं।
यह ऊधौ कहियौ माधौ सौं, मदन मारि कीन्हीं हम लुंजैं।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं, मग-जोवत अँखियाँ भईं घुंजैं ॥१५५॥

ऊधौ इतनी कहियौ बात।
मदन गुपाल बिना या ब्रज मैं, होन लगे उतपात।
तृनावर्त, बक, बकी, अघासुर, धेनुक फिरि-फिर जात।
ब्योम, प्रलंब, कंस केसी इत, करत जिअनि की घात।
काली काल-रूप दिखियत है, जमुना जलहिं अन्हात।
बरुन फाँस फाँस्यौ चाहत है, सुनियत अति मुरझात।
इंद्र आपने परिहँस कारन, बार-बार अनखात।
गोपी, गाइ, गोप, गोसुत सब, थर-थर काँपत गात।

अंचल फारति जननि जसोदा, पाग लिये कर तात।
लागौ बेगि गुहारि सूर प्रभु, गोकुल बैरिनि घात ।।१५६।।

ऊधौ इतनी कहियौ जाइ।
अति कृसगात भईं ये तुम बिनु, परम दुखारी गाइ।
जल समूह बरषतिं दोउ अंखियाँ, हूँकति लीन्हैं नाउँ।
जहाँ जहाँ गो दोहन कीन्हो, सूँघतिं सोई ठाउँ।
परतिं पछार खाइ छिन ही छिन, अति आतुर ह्वै दीन।
मानहु सूर काढ़ि डारी हैं, बारि मध्य तैं मीन ।।१५७।।

अति मलीन बृषभानु-कुमारी।
हरि स्रम-जल भींज्यौ उर-अंचल, तिहिं लालच न धुवावति सारी।
अध मुख रहति अनत नहिं चितवति, ज्यौं गथ हारे थकित जुवारी।
छूटे चिकुर बदन कुम्हिलाने, ज्यों नलिनी हिमकर की मारी।
हरि सँदेस सुनि सहज मृतक भइ, इक बिरहिनि, दूजे अलि जारी।
सूरदास कैसैं करि जीवैं, ब्रज बनिता बिन स्याम दुखारी ।।१५८।।

ऊधौ तिहारे पा लागति हौं, बहुरिहुँ इहिं ब्रज करबी भाँवरी।
निसि न नींद भोजन नहिं भावै, चितवत मग भइ दृष्टि झाँवरी।
वहै बृन्दाबन, वहै कुंज-घन, वहै जमुना, वहै सुभग साँवरी।
एक स्याम बिनु कछू न भावै, रटति फिरतिं ज्यौं बकति बावरी।
चलि न सकति मग डुलत धरत-पग, आवति बैठत उठत ताँवरी।
सूरदास-प्रभु आनि मिलावहु, जग मैं कीरति होइ रावरी ।।१५९।।

पूर्ण परिवर्तन तथा यशोदा संदेश

अब अति चकितवंत मन मेरौ।
आयौ हौं निरगुन उपदेसन, भयौ सगुन कौ चेरौ।
जो मैं ज्ञान कह्यौ गीता कौ, तुमहिं न परस्यौ नेरौ।
अति अज्ञान कछु कहत न आवै, दूत भयौ हरि केरौ।
निज जन जानि मानि जतननि तुम, कीन्हौ नेह घनेरौ।
सूर मधुप उठि चले मधुपुरी, बोरि जोग कौ बेरौ ।।१६०।।

ऊधौ पा लागति हौं कहियौ, स्यामहिं इतनी बात।
इतनी दूर बसत क्यौं बिसरे, अपने जननी-तात।
जा दिन तैं मधुपुरी सिधारे, स्याम मनोहर गात।
ता दिन तैं मेरे नैन पपीहा, दरस प्यास अकुलात।

जहँ खेलन के ठौर तुम्हारे, नन्द देखि मुरझात।
जौ कबहूँ उठि जात खरिक लौं, गाइ दुहावन प्रात।
दुहत देखि औरनि के लरिका, प्रान निकसि नहिं जात।
सूरदास बहुरो कब देखौं, कोमल कर दधि-खात ।।१६१।।

तब तुम मेरैं काहे कौं आए।
मथुरा क्यौं न रहे जदुनंदन, जौ पै कान्ह देवकी जाए।
दूध, दही काहे कौं चोरचौ, काहे कौं बन बच्छ चराए।
अघ अरिष्ट, काली फनि काढ़चौ, बिष जलतैं सब सखा जिवाए।
पय पीवत हरे प्रान पूतना, सदा किए जसुमति के भाए।
सूरदास लोगनि के भुरए, काहैं कान्ह, अब होत पराए ।।१६२।।

(मोहन) अपनी गैयाँ घेरि लै।
बिडरी जातिं काहु नहिं मानतिं, नैंकु मुरलि की टेर दै।
धौरी, धूमरि, पीरी, काजरि, बन-बन फिरती पीय।
अपनी जानि कै आनि सँभारहु, धरौ चेत अब जीय।
तुम हौ जग जीवनि प्रतिपालक, निठुराई नहिं कीजै।
ग्वालऽरु बाल बच्छ गो बिलखत, सूर सु दरसन दीजै ।।१६३।।

तब तैं छीन सरीर सुबाहु।
आधौ भोजन सुबल करत हैं, सब ग्वालनि उर दाहु।
नंद गोप पिछवारे डोलत, नैननि नीर प्रवाहु।
आनँद मिट्यौ मिटी सब लीला, काहू मन न उछाहु।
एक बेर बहुरौ ब्रज आवहु, दूध पतूखी खाहु।
सूर सपथ गोकुल जौ पैठहु, उलटि मधुपुरी जाहु ।।१६४।।

कहियौ जसुमति की आसीस।
जहाँ रहौ तहँ नंद लाड़िलौ, जीवौ कोटि बरीस।
मुरली दई दोहनी घृत भरि, ऊधौ धरि लइ सीस।
यह तौ घृत उनही सुरभिनि कौ, जे प्यारी जगदीस।
ऊधौ चलत सखा मिलि आए, ग्वाल बाल दस-बीस।
अबकैं यह ब्रज फेरि बसावहु, सूरदास के ईस ।।१६५।।

उद्धव मथुरा प्रत्यागमन तथा कृष्ण उद्धव संवाद

ऊधौ जब ब्रज पहुँचे जाइ।
तबकी कथा कृपा करि कहियै, हम सुनिहैं मन लाइ।

बाबा नंद, जसोदा मैया, मिले कौन हित आइ ?
कबहूँ सुरति करत माखन की, किधौं रहे बिसराइ।
गोप सखा दधि-भात खात बन, अरु चाखते चखाइ।
गऊ बच्छ मुरली सुनि उमड़त, अब जु रहत किहिं भाइ।
गोपिन गृह ब्यवहार बिसारे, मुख सन्मुख सुख पाइ।
पलट ओट निमि पर अनखातीं, यह दुख कहाँ समाइ।
एक सखी उनमैं जो राधा, लेति मनहिं जु चुराइ।
सूर स्याम यह बार बार कहि, मनहीं मन पछिताइ ।।१६६।।

जब मैं इहाँ तैं जु गयौ।
तब ब्रजराज सकल गोपी जन, आगैं होइ लयौ।
उतरे जाइ नंद बाबा कैं, सबहीं सोध लह्यौ।
मेरी सौं मोसौं साँची कहि, मैया कहा कह्यौ ?
बारंबार कुसल पूछी मोहिं, लै लै तुम्हरौ नाम।
ज्यौं जल तृषा बढ़ी चातक चित, कृष्न-कृष्न बलराम।
सुन्दर परम बिचित्र मनोहर, यह मुरली दै घाली।
लई उठाइ सुख मानि सूर प्रभु, प्रीति आनि उर साली ।।१६७।।

सुनियै ब्रज की दसा गुसाईं।
रथ की धुजा पीत-पट भूषन, देखत ही उठि धाईं।
जो तुम कही जोग की बातैं, सो हम सबै बताईं।
श्रवन मूँदि गुन-कर्म तुम्हारे, प्रेम मगन मन गाईं।
औरौ कछू सँदेस सखी इक, कहत दूरि लौं आई।
हुतौ कछू हमहूँ सौं नातौ, निपट कहा बिसराई।
सूरदास प्रभु बन बिनोद करि, जे तुम गाइ चराई।
ते गाई अब ग्वाल न घेरत, मानौ भईं पराई ।।१६८।।

ब्रज के बिरही लोग दुखारे।
बिन गोपाल ठगे से ठाढ़े, अति दुर्बल तन कारे।
नंद जसोदा मारग जोवति, निसि-दिन साँझ सकारे।
चहुँ-दिसि कान्ह-कान्ह कहि टेरत, अँसुवन बहत पनारे।
गोपी, ग्वाल, गाइ, गो सुत सब, अतिहीं दीन बिचारे।
सूरदास-प्रभु बिनु यौं देखियत, चंद बिना ज्यौं तारे ।।१६९।।

सुनहु स्याम वै सब ब्रज-बनिता, बिरह तुम्हारैं भईं बावरी ।
नाहीं बात और कहि आवति, छाँड़ि जहाँ लगि कथा रावरी ।
कबहुँ कहतिं हरि माखन खायौ, कौन बसै या कठिन गाँव री ।
कबहुँ कहतिं हरि ऊखल बाँधे, घर-घर ते लै चलौ दाँवरी ।
कबहुँ कहतिं ब्रजनाथ बन गए, जोवत-मग भई दृष्टि झाँवरी ।
कबहुँ कहतिं वा मुरली महियाँ, लै-लै बोलत हमरौ नाँवरी ।
कबहुँ कहतिं ब्रजनाथ साथ तैं, चंद उयौ है इहै ठाँवरी ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, अब वह मूरति भई साँवरी ।।१७०।।

फिरि ब्रज बसौ नंदकुमार ।
हरि तिहारे बिरह राधा, भई तन जरि छार ।
बिनु अभूषन मैं जु देखी, परी है बिकरार ।
एकई रट रटत भामिनि, पीव पीव पुकार ।
सजल लोचन चुअत उनकैं, बहति जमुना धार ।
बिरह अगिनि प्रचंड उनकैं, जरे हाथ लुहार ।
दूसरी गति और नाहीं, रटति बारंबार ।
सूर प्रभु कौ नाम उनकैं, लकुट अंध अधार ।।१७१।।

ब्रज तैं द्वै रितु पै न गई ।
ग्रीषम अरु पावस प्रवीन हरि, तुम बिनु अधिक भई ।
ऊर्ध उसास समीर नैन घन, सब जल जोग जुरे ।
बरषि प्रगट-कीन्हे दुख दादुर, हुते जो दूरि दुरे ।
बिषम बियोग जु बृष दिनकर सम, हित अति उदौ करै ।
हरि-पद बिमुख भए सुनि सूरज, को तन ताप हरै ।।१७२।।

दिन दस घोष चलहु गोपाल ।
गाइनि की अवसेरि मिटावहु, मिलहु आपने ग्वाल ।
नाचत नहीं मोर ता दिन तैं, रटत न बरषा-काल ।
मृग दुबरे तुम्हरे दरसन बिनु, सुनत न बेनु रसाल ।
बृन्दावन हरयौ होत न भावत, देख्यौ स्याम तमाल ।
सूरदास मैया अनाथ है, घर चलियै नँदलाल ।।१७३।।

ऊधौ भलौ ज्ञान समुझायौ ।
तुम मोसौं अब कहा कहत हौ, मैं कहि कहा पठायौ ।

कहवावत हौ बड़े चतुर पै, उहाँ न कछु कहि आयौ।
सूरदास ब्रजबासिन कौ हित, हरि हिय माहँ दुरायौ ॥१७४॥

मैं समुझाई अति अपनौ सौ।
तदपि उन्हैं परतीति न उपजी, सबै लख्यौ सपनौ सौ।
कही तुम्हारी सबै कही मैं, और कही कछु अपनी।
स्रवननि बचन सुनत भइ उनकैं, ज्यौं घृत नाएँ अगनी।
कोऊ कही बनाइ पचासक, उनकी बात जु एक।
धन्य-धन्य ब्रजनारि बापुरी, जिनकी और न टेक।
देखत उमग्यौ प्रेम इहाँ कौ, धरे रहे सब ऊलौ।
सूर स्याम हौं रह्यौ थक्यौ सौ, ज्यौं मृग चौका भूलौ ॥१७५॥

बातैं सुनहु तौ स्याम सुनाऊँ।
जुबतिनि सौं कहि कथा जोग की, क्यौं न इतौ दुख पाऊँ।
हौं पचि एक कहौं निरगुन की, ताहू मैं अटकाऊँ।
वै उमड़ैं बारिधि के जल ज्यौं, क्यौं हूँ थाह न पाऊँ।
कौन कौन कौ उत्तर दीजै, तातैं भज्यौ अगाऊँ।
वै मेरे सिर पटिया पारैं, कंथा काहि उढ़ाऊँ।
एक आँधरौ, हिय की फूटो, दौरत पहिरि खराऊँ।
सूर सकल षट दरसन वै, हौं बारहखरी पढ़ाऊँ ॥१७६॥

कहिबे मैं न कछू सक राखी।
बुद्धि बिबेक अनुमान आपनैं, मुख आई सो भाषी।
हौं मरि एक कहौं पहरक मैं, वै पल माहिँ अनेक।
हारि मानि उठि चल्यौ दीन ह्वै, छाँड़ि आपनी टेक।
हौं पठयौ कतहीं बे काजैं, सठ मूरख जु अयानौं।
तुमहिं बूझ वहुतै बातनि की, उहाँ जाहु तौ जानौं।
श्री मुख के सिखए ग्रंथादिक, ते सब भए कहानी।
एक होइ तौ उत्तर दीजै, सूर सु मठी उफानी ॥१७७॥

कोऊ सुनत न बात हमारी।
मानैं कहा जोग जादवपति, प्रगट प्रेम ब्रजनारी।
कोऊ कहतिं हरि गए कुंज बन, सैन धाम वै देत।
कोऊ कहतिं इन्द्र बरषा तकि, गिरि गोबर्धन लेत।

कोऊ कहतिं नाग काली सुनि, हरि गए जमुना तीर।
कोऊ कहतिं अघासुर मारन, गए संग बलबीर।
कोऊ कहतिं ग्वाल बालनि सँग, खेलत बनहिं लुकाने।
सूर सुमिरि गुन नाथ तुम्हारे, कोऊ कह्यौ न माने ।।१७८।।

माधौ जू कहा कहौं उनकी गति।
देखत बनै कहत नहिं आवै, अति प्रतीति तुम तैं रति।
जद्यपि हौं षट मास रह्यो ढिग, लही नहीं उनकी मति।
तासौं कहौं सबै एकै बुधि, परमोधी नहिं मानति।
तुम कृपालु करुनामय कहियत, तातैं मिलत कहा छति।
सूरदास प्रभु सोई कीजै, जातैं तुम पावहु पति ।।१७९।।

ब्रज मैं एकै धरम रह्यौ।
स्रुति सुमृति औ वेद पुराननि, सबै गोविंद कह्यो।
बालक वृद्ध तरुन अबलनि कौ, एक प्रेम निबह्यौ।
सूरदास प्रभु छाँड़ि जमुन जल, हरि की सरन गह्यो।१८०।।

तब तैं इन सबहिंनि सचु पायो।
जब तैं हरि संदेस तुम्हारो, सुनत ताँवरो आयौ।
फूले ब्याल दुरे ते प्रगटे, पवन पेट भरि खायौ।
खोले मृगनि चौक चरननि के, हुतो जु जिय बिसरायौ।
ऊँचे बैठि बिहंग सभा मैं, सुक बनराइ कहायौ।
किलकि-किलकि कुल सहित आपनैं, कोकिल मंगल गायौ।
निकसि कंदराहू तैं केहरि, पूँछ मूड़ पर ल्यायो।
गहवर तैं गजराज आइकै, अंगहिं गर्व बढ़ायौ।
अब जनि गहरु करहु हो मोहन, जौ चाहत हौ ज्यायौ।
सूर बहुरि ह्वै है राधा कौं, सब बैरिनि कौ भायौ ।।१८१।।

माधौ जू मैं अतिही सचु पायौ।
अपनौ जानि सँदेस ब्याज करि, ब्रज जन मिलन पठायौ।
छमा करौ तौ करौं बीनती, उनहिं देखि जौ आयौ।
श्रीमुख ग्यान पंथ जो उचरचौ, सो पै कछु न सुहायौ।
सकल निगम सिद्धांत जन्म क्रम, स्यामा सहज सुनायौ।
नहिं स्रुति, सेष, महेस प्रजापति, जो रस गोपिनि गायौ।

कटुक-कथा लागी मोहिं मेरी, वह रस सिंधु उम्हायौ।
उत तुम देखे और भाँति मैं, सकल तृषा जु बुझायौ।
तुम्हरी अकथ कथा तुम जानौ, हम जन नाहिं बसायौ।
सूर स्याम सुन्दर यह सुनि कै, नैननि नीर बहायौ ॥१८२॥

ब्रज मैं संभ्रम मोहिं भयौ।
तुम्हरौ ज्ञान सँदेसौ प्रभु जू, सबै जू भूलि गयौ।
तुमहीं सौं बालक किसोर बपु, मैं घर-घर प्रति देख्यौ।
मुरलीधर घनस्याम मनोहर, अद्भुत नटवर पेख्यौ।
कौतुक रूप ग्वाल बृंदनि सँग, गाइ चरावन जात।
सांझ प्रभातहिं गो दोहन मिस, चोरीं माखन खात।
नँद-नंदन अनेक लीला करि, गोपिनि चित्त चुरावत।
वह सुख देखि जु नैन हमारे, ब्रह्म न देख्यौ भावत।
करि करुना उन दरसन दीन्हौं, मैं पचि जोग बह्यौ।
छन मानहु षट्मास सूर प्रभु, देखत भूलि रह्यौ ॥१८३॥

ब्रज मैं एक अचंभौ देख्यौ।
मोर मुकुट पीतांबर धारे, तुम गाइनि सँग पेख्यौ।
गोप बाल सँग धावत तुम्हरें, तुम घर घर प्रति जात।
दूध दहीऽरु मही लै डारत, चोरी माखन खात।
गोपी सब मिलि पकरतिं तुमकौं, तुम छुड़ाइ कर भागत।
सूर स्याम नित प्रति यह लीला, देखि देखि मन लागत ॥१८४॥

श्रीकृष्ण वचन

सुनि ऊधौ मोहिं नैकु न बिसरत, वै ब्रजबासी लोग।
तुम उनकौं कछु भली न कीन्ही, निसि दिन दियौ वियोग।
जउ बसुदेव-देवकी मथुरा, सकल राज-सुख भोग।
तद्यपि मनहिं बसत बंसी बट, बन जमुना संजोग।
वै उत रहत प्रेम अवलंबन, इत तें पठयौ जोग।
सूर उसाँस छाँड़ि भरि लोचन, बढ़यौ बिरह ज्वर सोग ॥१८५॥

ऊधौ मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
बृन्दावन गोकुल बन उपवन, सघन कुंज की छाहीं।
प्रात समय माता जसुमति अरु, नंद देखि सुख पावत।

माखन रोटी दह्यौ सजायौ, अति हित साथ खवावत ।
गोपी ग्वाल बाल सँग खेलत, सब दिन हँसत सिरात ।
सूरदास धनि-धनि ब्रजबासी, जिनसौं हित जदुनाथ ।।१८६।।

ऊधौ मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं ।
हंस सुता की सुंदर कगरी, अरु कुंजनि की छाहीं ।
वै सुरभी, वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं ।
ग्वाल-बाल मिलि करत कुलाहल, नाचत गहि गहि बाहीं ।
यह मथुरा कंचन की नगरी, मनि मुक्ताहल जाहीं ।
जबहिं सुरति आवति वा सुख की, जिय उमगत तन नाहीं ।
अनगन भाँति करी बहु लीला, जसुदा नंद निबाहीं ।
सूरदास प्रभु रहै मौन ह्वै, यह कहि कहि पछिताहीं ।।१८७।।

जो जन ऊधौ मोहिं न बिसारत, तिहिं न बिसारौं एक घरी ।
मेटौं जनम जनम के संकट, राखौं सुख आनंद भरी ।
जो मोहिं भजै भजौं मैं ताकौं, यह परिमिति मेरे पाइँ परी ।
सदा सहाइ करौं वा जन की, गुप्त हुती सो प्रगट करी ।
ज्यौं भारत भरुही के अंडा, राखे गज के घंट तरी ।
सूरजदास ताहि डर काकौ, निसि बासर जो जपत हरी ।।१८८।।

———

द्वारिका चरित

द्वारिका प्रयाण

बार सत्तरह जरासंध, मथुरा चढ़ि आयौ।
गयौ सो सब दिन हारि, जात घर बहुत लजायौ।
तब खिस्याइ कै कालजवन, अपनैं सँग ल्यायौ।
हरि जु कियौ बिचार, सिंधु तट नगर बसायौ।
उग्रसेन सब लै कुटुंब, ता ठौर सिधायौ।
अमर पुरी तैं अधिक, तहाँ सुख लोगनि पायौ।
कालजवन मुचुकुंदहिं सौं, हरि भसम करायौ।
बहुरि आइ भरमाइ, अचल रिपु ताहि जरायौ।
जरासिंधु हू ह्याँ तैं पुनि, निज देस सिधायौ।
गए द्वारिका स्याम राम, जस सूरज गायौ ॥१॥

रुक्मिणी परिणय

हरि हरि हरि सुमिरन करौ। हरि चरनार्बिद उर धरौ।
हरि सुमिरन जब रुकमिनि कर्‌यौ। हरि करि कृपा ताहि तब बर्‌यौ।
कहौं सो कथा सुनौ चित लाइ। कहै सुनै सो रहै सुख पाइ।
कुंडिनपुर को भीषम राइ। बिश्नु भक्ति कौ तिहिं चित चाइ।
रुक्म आदि ताके सुत पाँच। रुकमिनि पुत्री हरि रँग राँच।
नृपति रुक्म सौं कह्यौ बनाइ। कुँवरि जोग बर श्री जदुराइ।
रुक्म रिसाइ पिता सौं कह्यौ। जदुपति ब्रज जो चोरत मह्यौ।
रुक्मनि कौं सिसुपालहिं दीजै। करि विवाह जग मैं जस लीजै।
यह सुनि नृप नारी सौं कह्यौ। सुनि ताकौं अंतरगत दह्यौ।
रुक्म चँदेरी बिप्र पठायौ। ब्याह काज सिसुपाल बुलायौ।
सो बारात जोरि तहँ आयौ। श्री रुकमिनि के मन नहिं भायौ।
कह्यौ मेरे पति श्री भगवान। उनहिं बरौं कै तजौं परान।
यह निहचै करि पत्री लिखी। बोल्यौ बिप्र सहज इक सखी।
पाती दै कह्यौ बचन सुनाइ। हरि को दै कहियौ या भाइ।
भीषम सुता रुकमिनो बाम। सूर जपति निसि दिन तुव नाम ॥२॥

द्विज पाती दै कहियौ स्यामहिं ।
कुंडिनपुर की कुँवरि रुकमिनी, जपति तिहारे नामहिं ।
पालागौं तुम जाहु द्वारिका, नंद-नँदन के धामहिं ।
कंचन, चीर-पटंबर दैहौं, कर कंचन जु इनामहिं ।
यह सिसुपाल असुचि अज्ञानी, हरत पराई बामहिं ।
सूर स्याम प्रभु तुम्हरौ भरोसौ, लाज करौ किन नामहिं ।।३।।

द्विज कहियौ जदुपति सौं बात ।
बेद बिरुद्ध होत कुंडिनपुर, हंस के अंस काग नियरात ।
जनि हमरे अपराध बिचारहु, कन्या लिख्यौ मेटि गुरु तात ।
तन आतमा समरप्यौ तुमकौं, उपजि परी तातैं यह बात ।
कृपा करहु उठि बेगि चढ़हु रथ, लगन समै आवहु परभात ।
कृष्न सिंह बलि धरी तुम्हारी, लैबे कौं जंबुक अकुलात ।
तातैं मैं द्विज बेगि पठायौ, नेम धरम मरजादा जात ।
सूरदास सिसुपाल पानि गहै पावक रचौं करौं अपघात ।।४।।

सुनत हरि रुक्मिनि कौ संदेश ।
चढ़ि रथ चले बिप्र कौं सँग लै, कियौ न गेह प्रवेस ।
बारंबार बिप्र कौं पूछत, कुँवरि बचन सो सुनावत ।
दीनबंधु करुना निधान सुनि, नैन नीर भरि आवत ।
कह्यौ हलधर सौं आवहु दल लै, मैं पहुँचत हौं धाइ ।
सूरज प्रभु, कुंडिनपुर आए, बिप्र सो जाइ सुनाइ ।।५।।

रुक्मिनि देवी-मंदिर आई ।
धूप दीप पूजा-सामग्री, अली संग सब ल्याई ।
रखवारी कौं बहुत महाभट, दीन्हे रुक्म पठाई ।
ते सब सावधान भए चहुँ दिसि, पंछी तहाँ न जाई ।
कुँवरि पूजि गौरी बिनती करी, वर देउ जादवराई ।
मैं पूजा कीन्ही इहिं कारन, गौरी सुनि मुसकाई ।
पाइ प्रसाद अंबिका-मंदिर, रुकमिनि बाहर आई ।
सुभट देखि सुन्दरता मोहे, धरनि गिरे मुरझाई ।
इहिं अंतर जादौपति आए, रुकमिनि रथ बैठाई ।
सूरज प्रभु पहुँचे दल अपनैं, तब सुभटनि सुधि पाई ।।६।।

आवहु री मिलि मंगल गावहु।
हरि रुकमिनी लिए आवत हैं, यह आनँद जदुकुलहिं सुनावहु।
बाँधहु बन्दनवार मनोहर, कनक कलस भरि नीर धरावहु।
दधि अच्छत फल फूल परम रुचि, आँगन चंदन चौक पुरावहु।
कदली जूथ अनूप किसल दल, सुरँग सुमन लै मंडल छावहु।
हरद दूब केसर मग छिरकहु, भेरी मृदंग निसान बजावहु।
जरासंध सिसुपाल नृपति तैं, जीते हैं उठि अरघ चढ़ावहु।
बल समेत तन कुसल सूर प्रभु, आए हैं आरती बनावहु ॥७॥

बलभद्र व्रज यात्रा

स्याम राम के गुन नित गाऊँ। स्याम राम ही सौं चित लाऊँ।
एक बार हरि निज पुर छए। हलधर जी बृन्दाबन गए।
रथ देखत लोगनि सुख पाए। जान्यौ स्याम राम दोउ आए।
नन्द जसोमति जब सुधि पाई। देह गेह की सुरति भुलाई।
आगैं ह्वै लैबे कौं धाए। हलधर दौरि चरन लपटाए।
बल कौं हित करि गरैं लगाए। दै असीस बोले या भाए।
तुम तौ भली करी बलराम। कहाँ रहे मन मोहन स्याम।
देखौ कान्हर की निठुराई। कबहूँ पाती हू न पठाई।
आपु जाइ ह्वाँ राजा भए। हमकौं बिछुरि बहुत दुख दए।
कहौ कबहुँ हमरी सुधि करत। हम तौ उन बिनु बहु दुख भरत।
कहा करैं ह्वाँ कोउ न जात। उन बिनु पल पल जुग सम जात।
इहिं अन्तर आए सब ग्वार। भेंटे सबनि जथा ब्यौहार।
नमस्कार काहूँ को कियौ। काहू कौं अंकम भरि लियौ।
पुनि गोपी जुरि मिलि सब आईं। तिन हित साथ असीस सुनाईं।
हरि सुधि करि सुधि बुधि बिसराई। तिनकौ प्रेम कह्यौ नहिं जाई।
कोउ कहै हरि ब्याही बहु नार। तिनकौ बढ़्यौ बहुत परिवार।
उनकौं यह हम देतिं असीस। सुख सौं जीवैं कोटि बरीस।
कोउ कहै हरि नाहीं हम चीन्हौ। बिनु चीन्हैं उनकौं मन दीन्हौ।
निसि दिन रोवत हमैं बिहाइ। कहौ करैं अब कहा उपाइ।
कोउ कहै इहाँ चरावत गाइ। राजा भए द्वारिका जाइ।
काहे कौं वै आवैं इहाँ। भोग बिलास करत नित उहाँ।
कोउ कहै हरि रिपु छै किए। अरु मित्रनि कौ बहु सुख दिए।

बिरह हमारौ कहँ रहि गयौ। जिन हमकौं अति हीं दुख दयौ।
कोउ कहै जे हरि की रानी। कौन भाँति हरि कौं पतियानी।
कोऊ चतुर नारि जो होइ। करै नहीं पतिआरौ सोइ।
कोउ कहै हम तुम कत पतियाईं। उनकैं हित कुल लाज गवाईं।
हरि कछु ऐसौ टोना जानत। सबकौं मन अपनैं बस आनत।
कोउ कहै हरि हम सब बिसराईं। कहा कहैं कछु कह्यौ न जाई।
हरिकौं सुमिरि नयन जल ढारैं। नैंकु नहीं मन धीरज धारैं।
यह सुनि हलधर धीरज धारि। कह्यौ आइहैं हरि निरधारि।
जब बल यह संदेस सुनायौ। तब कछु इक मन धीरज आयौ।
बल तहँ बहुरि रहे द्वै मास। ब्रज बासिनि सौं करत बिलास।
सब सौं मिलि पुनि निजपुर आए। सूरदास हरि के गुन गाए ॥८॥

सुदामा चरित

कंत सिधारौ मधुसूदन पै, सुनियत हैं वे मीत तुम्हारे।
बाल-सखा अरु बिपति बिभंजन, संकट हरन मुकुंद मुरारे।
और जु अतिसय प्रीति देखियै, निज तन मन की प्रीति बिसारे।
सरबस रीझि देत भक्तनि कौं, रंक नृपति काहू न बिचारे।
जद्यपि तुम संतोष भजत हौ, दरसन सुख तैं होत जु न्यारे।
सूरदास प्रभु मिले सुदामा, सब सुख दै पुनि अटल न टारे ॥९॥

सुदामा सोचत पंथ चले।
कैसें करि मिलिहैं मोहिं श्रीपति, भए तब सगुन भले।
पहुँच्यौ जाइ राजद्वारे पर, काहूँ नहिँ अटकायौ।
इत उत चितै धँस्यौ मंदिर मैं, हरि कौ दरसन पायौ।
मन मैं अति आनंद कियौ हरि, बाल-मीत पहिचान।
धाए मिलन नगन पग आतुर, सूरज प्रभु भगवान ॥१०॥

दूरहिं तैं देख्यौ बलवीर।
अपने बालसखा जु सुदामा, मलिन बसन अरु छीन सरीर।
पौढ़े हे परजंक परम रुचि, रुक्मिनि चौंर डुलावति तीर।
उठि अकुलाइ अगमने लीन्हे, मिलत नैन भरि आए नीर।
निज आसन बैठारि स्याम-घन, पूछी कुसल कह्यौ मति धीर।
ल्याए हौ सु देहु किन हमकौं, कहा दुरावन लागे चीर।

दरस परस हम भए सभागे, रही न मन मैं एकहु पीर।
सूर सुमति तंदुल चाबत हीं, कर पकरयौ कमला भई धीर ।।११।।
ऐसी प्रीति की बलि जाउँ।
सिंहासन तजि चले मिलन कौं, सुनत सुदामा नाउँ।
कर जोरे हरि बिप्र जानि कै, हित करि चरन पखारे।
अंकमाल दै मिले सुदामा, अर्धासन बैठारे।
अर्धंगी पूछति मोहन सौं, कैसे हितू तुम्हारे।
तन अति छीन मलीन देखियत, पाउँ कहाँ तैं धारे।
संदीपन कैं हमऽरु सुदामा, पढ़े एक चटसार।
सूर स्याम की कौन चलावै, भक्तनि कृपा अपार ।।१२।।
गुरु-गृह हम जब बन कौं जात।
जोरत हमरे बदलैं लकरी, सहि सब दुख निज गात।
एक दिवस बरषा भई बन मैं, रहि गए ताहीं ठौर।
इनकी कृपा भयौ नहिँ मोहिँ श्रम, गुरु आए भऐं भोर।
सो दिन मोहिँ बिसरत न सुदामा, जौ कीन्हौ उपकार।
प्रति उपकार कहा करौं सूरज, भाषत आप मुरार ।।१३।।
सुदामा गृह कौं गमन कियौ।
प्रगट बिप्र कौं कछु न जनायौ, मन मैं बहुत दियौ।
वेई चीर कुचील वहै विधि, मोकौं कहा भयौ।
धरिहौं कहा जाय तिय आगैं, भरि भरि लेत हियौ।
सो संतोष मानि मन हीं मन, आदर बहुत लियौ।
सूरदास कीन्हे करनी बिनु, को पतियाइ बियौ ।।१४।।
सुदामा मंदिर देखि डरयौ।
इहाँ हुती मेरी तनक मड़ैया, को नृप आनि छरयौ।
सीस धुनै दोऊ कर मीँड़ै, अंतर सोच परयौ।
ठाढ़ी तिया जु मारग जोवै, ऊँचै चरन धरयौ।
तोहिँ आदरयौ त्रिभुवन कौ नायक, अब क्यौं जात फिरयौ।
सूरदास प्रभु की यह लीला, दारिद दुःख हरयौ ।।१५।।
हौं फिरि बहुरि द्वारिका आयौ।
समुझि न परी मोहिँ मारग की, कोउ बूझौ न बतायौ।

कहिहैं स्याम सत्त इन छाँड़्यौ, उतौ राँक ललचायौ।
तृन की छाहँ मिटी निधि माँगत, कौन दुखनि सौं छायौ।
सागर नहीं समीप कुमति कैं, बिधि कह अंत भ्रमायौ।
चितवत चित्त बिचारत मेरौ, मन सपनैं डर छायौ।
सुरतरु, दासी, दास, अस्व, गज, बिभौ बिनोद बनायौ।
सूरज प्रभु नँद-सुवन मित्र ह्वै, भक्तनि लाड़ लड़ायौ ॥१६॥

कहा भयौ मेरौ गृह माटी कौ।
हौं तौ गयौ गुपालहिं भेंटन, और खरच तंदुल गाँठी कौ।
बिनु ग्रीवा कल सुभग न आन्यौ, हुतौ कमंडल दृढ़ काठी कौ।
घुनौ बाँस जुत बुनो खटोला, काहु कौ पलँग कनक पाटी कौ।
नूतन छीरोदक जुवती पै, भूषन हुतौ न लोह माटी कौ।
सूरदास प्रभु कहा निहोरौ, मानत रंक त्रास टाटी कौ ॥१७॥

भूलौ द्विज देखत अपनौ घर।
औरहिं भाँति रची रचना रुचि, देखतही उपज्यौ हिरदै डर।
कै वह ठौर छुड़ाइ लियौ किहुँ, कोऊ आइ बस्यौ समरथ नर।
कै हौं भूलि अनतहीं आयौ, यह कैलास जहाँ सुनियत हर।
बुध-जन कहत द्रुबल घातक बिधि, सो हम आज लही या पटतर।
ज्यौं नलिनी बन छाँड़ि बसै जल, दाहै हेम जहाँ पानी-सर।
पाछै तैं तिय उतरि कह्यौ पति, चलिए द्वार गह्यौ कर सौं कर।
सूरदास यह सब हित हरि कौ, द्वारैं आइ भयौ जु कलपतर ॥१८॥

कैसैं मिले पिय स्याम सँघाती।
कहियै कंत कौन बिधि परसे, बसन कुचील छीन अति गाती।
उठिकै दौरि अंक भरि लीन्हौ, मिलि पूछी इत-उत कुसलाती।
पटतैं छोरि लिए कर तंदुल, हरि समीप रुकमिनी जहाँ ती।
देखि सकल तिय स्याम-सुंदर गुन, पट दै ओट सबै मुसक्यातीं।
सूरदास प्रभु नवनिधि दीन्ही, देते और जो तिय न रिसातीं ॥१९॥

हरि बिनु कौन दरिद्र हरै।
कहत सुदामा सुनि सुन्दरि, हरि मिलन न मन बिसरै।
और मित्र ऐसी गति देखत, को पहिचान करै।
बिपति परैं कुसलात न बूझै, बात नहीं बिचरै।

उठि भेटे हरि तंदुल लीन्हे, मोहिं न बचन फुरै।
सूरदास लछि दई कृपा करि, टारी निधि न टरै।।२०।।

ब्रजनारी पथिक संवाद

तब तैं बहुरि न कोऊ आयौ।
वहै जु एक बेर ऊधौ सौं, कछु संदेसौ पायौ।
छिन-छिन सुरति करत जदुपति की, परत न मन समुझायौ।
गोकुलनाथ हमारैं हित लगि, लिखि हूँ क्यौं न पठायौ।
यहै बिचार करौं धौं सजनी, इती गहरु क्यौं लायौ।
सूर स्याम अब बेगि न मिलहू, मेघनि अम्बर छायौ।।२१।।

बहुरौ हो ब्रज बात न चाली।
वहै सु एक बेर ऊधौ कर, कमल नयन पाती दै घाली।
पथिक तिहारे पा लागति हौं, मथुरा जाहु जहाँ बनमाली।
कहियौ प्रगट पुकारि द्वार ह्वै, कालिंदी फिरि आयौ काली।
तब वह कृपा हुती नँदनंदन, रुचि रुचि रसिक प्रीति प्रतिपाली।
माँगत कुसुम देखि ऊँचे द्रुम, लेत उछंग गोद करि आली।
जब वह सुरति होति उर अंतर, लागत काम बान की भाली।
सूरदास प्रभु प्रीति पुरातन, सुमिरत दुसह सूर उर साली।।२२।।

तुम्हरे देस कागद मसि खूटी।
भूख प्यास अरु नींद गई सब, बिरह लरौ तन लूटी।
दादुर मोर पपीहा बोले, अवधि भई सब झूठी।
पाछैं आइ तुम कहा करौगे, जब तन जैहै छूटी।
राधा कहति सँदेश स्याम सौं, भई प्रीति की टूटी।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन बिनु, सखी करति हैं कूटी।।२३।।

पथिक कह्यौ ब्रज जाइ, सुने हरि जात सिंधु तट।
सुनि सब अँग भए सिथिल, गयौ नहिं बज्र हियौ फट।
नर नारी घर-घरनि सबै, यह करति बिचारा।
मिलिहैं कैसी भाँति हमैं, अब नन्द कुमारा।
निकट बसत हुती आस, कियौ अब दूरि पयाना।
बिना कृपा भगवान, उपाइ न सूरज आना।।२४।।

नैना भए अनाथ हमारे।
मदनगुपाल उहाँ तैं सजनी, सुनियत दूरि सिधारे।

वै समुद्र हम मीन बापुरी, कैसैं जीवैं न्यारे।
हम चातक वै जलद-स्याम-घन, पियतिं सुधा-रस प्यारे।
मथुरा बसत आस दरसन की, जोइ नैन मग हारे।
सूरदास हमकौं उलटी बिधि, मृतकहूँ, तैं पुनि मारे ॥२५॥

उती दूर तैं को आवै री।
जासौं कहि संदेस पठाऊँ, सो कहि कहन कहा पावै री।
सिंधु कूल इक देस बसत है, देख्यौ सुन्यौ न मन धावै री।
तहँ नव-नगर जु रच्यौ नंद-सुत, द्वारावति पुरी कहावै री।
कंचन के बहु भवन मनोहर, रंक तहाँ नहिं त्रन छावै री।
ह्वाँ के बासी लोगनि कौं क्यौं, ब्रज कौ बसिबौ मन भावै री।
बहु बिधि करतिं बिलाप बिरहिनी, बहुत उपायनि चित लावैं री।
कहा करौं कहँ जाउँ सूर प्रभु, को हरि पिय पै पहुँचावै री ॥२६॥

हौं कैसौं कै दरसन पाऊँ।
सुनहु पथिक उहिं देस द्वारिका, जौ तुम्हरैं सँग जाऊँ।
बाहर भीर बहुत भूपनि की, बूझत बदन दुराऊँ।
भीतर भीर भोग भामिनि की, तिहिं ठाँ काहि पठाऊँ।
बुधि बल जुक्ति जतन करि उहिं पुर, हरि पिय पै पहुँचाऊँ।
अब बन बसि निसि कुंज रसिक बिनु, कौनैं दसा सुनाऊँ।
श्रम कै सूर जाउँ प्रभु पासहिं, मन मैं भलैं मनाऊँ।
नव-किसोर मुख मुरलि बिना, इन नैननि कहा दिखाऊँ ॥२७॥

तातैं अति मरियत अपसोसनि।
मथुराहू तैं गए सखी री, अब हरि कारे कोसनि।
यह अचरज सु बड़ौ मेरैं जिय, यह छाँड़नि, वह पोषनि।
निपट निकाम जानि हम छाँड़ी, ज्यौं कमान बिन गोसनि।
इक हरि के दरसन बिनु मरियत, अरु कुबिजा के ठोसनि।
सूर सु जरनि कहा उपजी जो, दूरि होति करि ओसनि ॥२८॥

माई री कैसैं बनै हरि कौ ब्रज आवन।
कहियत है मधुबन तैं सजनी, कियौ स्याम कहुँ अनत गवन।
अगम जु पंथ दूरि दच्छिन दिसि, तहँ सुनियत सखि सिंधु लवन।
अब हरि ह्वाँ परिवार सहित गए, मग मैं मारचौ कालजवन।

निकट बसत मतिहीन भईं हम, मिलिहुँ न आईं सुत्यागि भवन ।
सूरदास तरसत मन निसि दिन, जदुपति लौं लै जाइ कवन ।।२९।।

सुनियत कहुँ द्वारिका बसाई ।
दच्छिन दिशा तीर सागर कैं, कंचन कोट गोमती खाई ।
पंथ न चलै सँदेस न आवै, इती दूर नर कोऊ न जाई ।
सत जोजन मथुरा तैं कहियत, यह सुधि एक पथिक पै पाई ।
सब ब्रज दुखी नंद जसुदा हू, इक टक स्याम राम लव लाई ।
सूरदास प्रभु के दरसन बिनु, भई बिदित ब्रज काम दुहाई ।।३०।।

बीर बटाऊ पाती लीजौ ।
जब तुम जाहु द्वारिका नगरी, हमरे रसाल गुपालहिं दीजौ ।
रंगभूमि रमनीक मधुपुरी, रजधानी ब्रज को सुधि कीजौ ।
छार समुद्र छाँड़ि किन आवत, निर्मल जल जमुना कौ पीजौ ।
या गोकुल की सकल ग्वालिनी, देतिं असीस बहुत जुग जीजौ ।
सूरदास प्रभु हमरे कोतैं, नंद नँदन के पाइँ परीजौ ।।३१।।

रुक्मिणी कृष्ण संवाद

रुकमिनि बूझति हैं गोपालहिं ।
कहौ बात अपने गोकुल की, कितिक प्रीति ब्रजबालहिं ।
तब तुम गाइ चरावन जाते, उर धरते बनमालहिं ।
कहा देखि रीझे राधा सौं, सुंदर नैन बिसालहिं ।
इतनी सुनत नैन भरि आए, प्रेम बिबस नँदलालहिं ।
सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै, घोष बात जनि चालहिं ।।३२।।

रुकमिनि मोहिं निमेष न बिसरत, वे ब्रजवासी लोग ।
हम उनसौं कछु भली न कीन्हीं, निसि-दिन मरत वियोग ।
जदपि कनक मनि रची द्वारिका, विषय सकल संभोग ।
तद्यपि मन जु हरत बंसी-बट, ललिता कै संजोग ।
मैं ऊधो पठ्यौ गोपिनि पै, दैन सँदेसो जोग ।
सूरदास देखत उनकी गति, किहिं उपदेसै सोग ।।३३।।

रुकमिनि मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं ।
वह क्रीड़ा वह केलि जमुन तट, सघन कदम की छाहीं ।
गोप बधुनि की भुजा कंध धरि, बिहरत कुंजनि माहीं ।
और बिनोद कहाँ लगि बरनौं, बरनत बरनि न जाहीं ।

जद्यपि सुख निधान द्वारावति, गोकुल के सम नाहीं।
सूरदास घनस्याम मनोहर, सुमिरि-सुमिरि पछिताहीं ॥३४॥

रुकमिनि चलौ जन्म भूमि जाहिं।
जद्यपि तुम्हरौ विभव द्वारिका, मथुरा कैं सम नाहिं।
जमुना कैं तट गाइ चरावत, अमृत जल अँचवाहिं।
कुंज केलि अरु भुजा कंध धरि, सीतल द्रुम की छाँहिं।
सरस सुगंध मंद मलयानिल, बिहरत कुंजन माहिं।
जो क्रीड़ा श्री बृन्दावन मैं, तिहूँ लोक मैं नाहिं।
सुरभी ग्वाल नंद अरु जसुमति, मम चित तैं न टराहिं।
सूरदास प्रभु चतुर सिरोमनि, तिनकी सेव कराहिं ॥३५॥

कुरुक्षेत्र में कृष्ण-ब्रजवासी भेंट

ब्रज बासिनि कौ हेतु, हृदय मैं राखि मुरारी।
सब जादव सौं कह्यौ, बैठि कै सभा मझारी।
बड़ौ परब रवि-ग्रहन, कहा कहौं तासु बड़ाई।
चलौ सकल कुरुखेत, तहाँ मिलि न्हैये जाई।
तात, मात, निज नारि लिए, हरि जू सब संगा।
चले नगर के लोग, साजि रथ तरल तुरंगा।
कुरुच्छेत्र मैं आइ, दियौ इक दूत पठाई।
नंद जसोमति गोपि ग्वाल, सब सूर बुलाई ॥३६॥

हौं इहाँ तेरेहि कारन आयौ।
तेरी सौं सुनि जननि जसोदा, मोहिं गोपाल पठायौ।
कहा भयौ जो लोग कहत हैं, देवकि माता जायौ।
खान-पान परिधान सबै सुख, तैंही लाड़ लड़ायौ।
इतौ हमारौ राज द्वारिका, मोंं जी कछू न भायौ।
जब-जब सुरति होति उहिं हितकी, बिछुरि बच्छ ज्यौं धायौ।
अब हरि कुरुच्छेत्र मैं आए, सो मैं तुम्हैं सुनायौ।
सब कुल सहित नंद सूरज प्रभु, हित करि उहाँ बुलायौ ॥३७॥

वायस गहगहात सुनि सुंदरि, बानी विमल पूर्व दिस बोली।
आजु मिलावा होइ स्याम कौ, तू सुनि सखी राधिका भोली।
कुच भुज नैन अधर फरकत हैं, बिनहिं बात अंचल ध्वज डोली।
सोच निवारि करौ मन आनंद, मानौ भाग दसा बिधि खोली।

सुनत बात सजनी के मुख की, पुलकित प्रेम तरकि गई चोली ।
सूरदास अभिलाष नंदसुत, हरषी सुभग नारि अनमोली ।।३८।।

राधा नैन नीर भरि आए ।
कब धौं मिलैं स्याम सुंदर सखि, जदपि निकट हैं आए ।
कहा करौं किहिं भाँति जाहुँ अब, पंख नहीं तन पाए ।
सूर स्याम सुन्दर घन दरसैं, तन के ताप नसाए ।।३९।।

अब हरि आइहैं जनि सोचै ।
सुनु बिधुमुखी बारि नैननि तैं, अब तू काहैं मोचै ।
लै लेखनि मसि लिखि अपने, संदेसहिं छाँड़ि सँकोचै ।
सूर सु बिरह जनाउ करत कत, प्रबल मदन रिपु पोचै ।।४०।।

पथिक, कहियो हरि सौं यह बात ।
भक्त बछल है बिरद तुम्हारौ, हम सब किए सनाथ ।
प्रान हमारे संग तिहारैं, हमहूँ हैं अब आवत ।
सूर स्याम सौं कहत सँदेसौ, नैनन नीर बहावत ।।४१।।

नंद जसोदा सब ब्रजवासी ।
अपने-अपने सकट साजिकै, मिलन चले अबिनासी ।
कोउ गावत कोउ बेनु बजावत, कोउ उतावल धावत ।
हरि दरसन की आसा कारन, बिबिध मुदित सब आवत ।
दरसन कियौ आइ हरि जू कौं, कहत स्वप्न कै साँचौ ।
प्रेम मगन कछु सुधि न रही अँग, रहे स्याम रँग राँचौ ।
जासौं जैसी भाँति चाहियै, ताहि मिले त्यौं धाइ ।
देस-देस के नृपति देखि यह, प्रीति रहे अरगाइ ।
उमँग्यौ प्रेम समुद्र दुहूँ दिसि, परिमिति कही न जाइ ।
सूरदास यह सुख सो जानै, जाकै हृदय समाइ ।।४२।।

तेरी जीवन मूरि मिलहि किन माई ।
महाराज जदुनाथ कहावत, तबहिं हुते सिसु कुँवर कन्हाई ।
पानि परे भुज धरे कमल मुख, पेखत पूरब कथा चलाई ।
परम उदार पानि अवलोकत, हीन जानि कछु कहत न जाई ।
फिर-फिर अब सनमुखही चितवति, प्रीतिसकुच जानी जदुराई ।
अब हँसि भेंटहु कहि मोहिं निज-जन, बाल तिहारौ नंद दुहाई ।

रोम पुलक गदगद तन तीछन, जलधारा नैननि बरषाई।
मिले सु तात, मात, बाँधव सब, कुसल-कुसल करि प्रस्न चलाई।
आसन देइ बहुत करी बिनती, सुत धोखै तब बुद्धि हिराई।
सूरदास प्रभु कृपा करी अब, चितहिँ धरे पुनि करी बड़ाई।।४३।।

माधव या लगि है जग जीजत।
जातैं हरि सौं प्रेम पुरातन, बहुरि नयौ करि लीजत।
कहँ ह्वाँ तुम जदुनाथ सिंधु तट, कहँ हम गोकुल बासी।
वह बियोग, यह मिलन कहाँ अब, काल चाल औरासी।
कहँ रबि राहु कहाँ यह अवसर, बिधि संयोग बनायौ।
उहिँ उपकार आजु इन नैननि, हरि दरसन सचुपायौ।
तब अरु अब यह कठिन परम अति, निमिषहुँ पीर न जानी।
सूरदास प्रभु जानि आपने, सबहिनि सौं रुचि मानी।।४४।।

राधा कृष्ण मिलन

हरि सौं बूझति रुक्मिनि इनमैं, को बृषभानु किसोरी।
बारक हमैं दिखावहु अपने, बालापन की जोरी।
जाकौ हेत निरंतर लीन्हे, डोलत ब्रज की खोरी।
अति आतुर ह्वै गाइ दुहावन, जाते पर-घर चोरी।
रचते सेज स्वकर सुमननि की, नव-पल्लव पुट तोरी।
बिन देखैं ताके मन तरसैं, छिन बीतै जुग कोरी।
सूर सोच सुख करि भरि लोचन, अंतर प्रीति न थोरी।
सिथिल गात मुख बचन फुरत नहिँ; ह्वै जु गई मति भोरी।।४५।।

बूझति है रुक्मिनि पिय इनमैं, को बृषभानु किसोरी।
नैंकु हमैं दिखरावहु अपनी, बालापन की जोरी।
परम चतुर जिन कीन्हे मोहन, अल्प बैस ही थोरी।
बारे तैं जिहिँ यहै पढ़ायौ, बुधि बल कल बिधि चोरी।
जाके गुन गनि ग्रंथित माला, कबहुँ न उत तैं छोरी।
मनसा सुमिरन, रूप ध्यान उर, दृष्टि न इत उत मोरी।
वह लखि जुवति बृन्द मैं ठाढ़ी, नील बसन तन गोरी।
सूरदास मेरौ मन वाकौ, चितवनि बंक हरयौ री।।४६।।

हरि जू इते दिन कहाँ लगाए ।
तबहिं अवधि में कहत न समुझी, गनत अचानक आए ।
भली करी जु बहुरि इन नैननि, सुंदर दरस दिखाए ।
जानी कृपा राज काजहु हम, निमिष नहीं बिसराए ।
बिरहिनि बिकल बिलोकि सूर प्रभु, धाइ हृदै करि लाए ।
कछु इक सारथि सौं कहि पठयौ, रथ के तुरँग छुड़ाए ।।४७।।

हरि जू वै सुख बहुरि कहाँ ।
जदपि नैन निरखत वह मूरति, फिरि मन जात तहाँ ।
मुख मुरली सिर मोर पखौवा, गर घुँघचिनि कौ हार ।
आगैं धेनु रेनु तन मंडित, तिरछी चितवनि चार ।
राति दिवस सब सखा लिए सँग, हँसि मिलि खेलत खात ।
सूरदास प्रभु इत उत चितवत, कहि न सकत कछु बात ।।४८।।

रुकमिनि राधा ऐसैं भेंटी ।
जैसैं बहुत दिननि की बिछुरी, एक बाप की बेटी ।
एक सुभाव एक वय दोऊ, दोऊ हरि कौं प्यारी ।
एक प्रान मन एक दुहुनि कौ, तन करि दीसति न्यारी ।
निज मंदिर लै गई रुकमिनी, पहुनाई बिधि ठानी ।
सूरदास प्रभु तहँ पग धारे, जहँ दोऊ ठकुरानी ।।४९।।

राधा माधव, भेंट भई ।
राधा माधव, माधव राधा, कीट भृङ्ग गति ह्वै जु गई ।
माधव राधा के रँग राँचे, राधा माधव रंग रई ।
माधव राधा प्रीति निरन्तर, रसना करि सो कहि न गई ।
बिहँसि कह्यौ हम तुम नहिँ अन्तर, यह कहिकै उन ब्रज पठई ।
सूरदास प्रभु राधा माधव, ब्रज-बिहार नित नई नई ।।५०।।

ब्रजबासिनि सौं कह्यो, सबनि तैं ब्रज-हित मेरैं ।
तुमसौं नाहीं दूरि रहत हौं, निपटहिँ नेरैं ।
भजै मोहिँ जो कोइ, भजौं मैं तेहि ता भाई ।
मुकुर माहिँ, ज्यौं रूप, आपनैं सम दरसाई ।
यह कहि कै समदे सकल, नैन रहे जल छाइ ।
सूर स्याम कौ प्रेम कछु, मो पै कह्यौ न जाइ ।।५१।।

सबहिनि तैं हित है जन मेरौ।
जनम जनम सुनि सुबल सुदामा, निबहौं यह प्रन बेरौ।
ब्रह्मादिक इन्द्रादिक तेऊ, जानत बल सब केरौ।
एकहि साँस उपास त्रास उड़ि, चलते तजि निज खेरौ।
कहा भयौ जो देस द्वारिका, कीन्हौ दूर बसेरौ।
आपुन ही या ब्रज के कारन, करिहौं फिरि-फिरि फेरौ।
इह-उहाँ हम फिरत साधु हित, करत असाधु अहेरौ।
सूर हृदय तैं टरत न गोकुल, अंग छुअत हौं तेरौ ॥५२॥

हम तौ इतनै ही सचु पायौ।
सुंदर स्याम कमल दल-लोचन, बहुरौ दरस दिखायौ।
कहा भयौ जो लोग कहत हैं, कान्ह द्वारिका छायौ।
सुनिकै बिरह दसा गोकुल की, अति आतुर ह्वै धायौ।
रजक धेनु गज कंस मारि कै, कीन्हौ जन कौ भायौ।
महाराज ह्वै मातु पिता मिलि, तऊ न ब्रज बिसरायौ।
गोपि गोपऽरु नंद चले मिलि, प्रेम समुद्र बढ़ायौ।
अपने बाल गुपाल निरखि मुख, नैननि नीर बहायौ।
जद्यपि हम सकुचे जिय अपनैं, हरि हित अधिक जनायौ।
वैसेइ सूर बहुरि नँद-नंदन, घर-घर माखन खायौ ॥५३॥

———

परिशिष्ट (क)

रामचरित

रघुकुल प्रगटे हैं रघुबीर।
देस-देस तै टीकौ आयौ, रतन कनक-मनि-हीर।
घर-घर मंगल होत बधाई, अतिँ पुरबासिनि भीर।
आनँद-मगन भए सब डोलत, कछू न सोध सरीर।
मांगध-बंदी-सूत लुटाए, गो-गयन्द-हय-चीर।
देत असीस सूर, चिरजीवौ, रामचन्द्र रनधीर ।।१।।

करतल-सोभित बान धनुहियाँ।
खेलत फिरत कनकमय आँगन, पहिरे लाल पनहियाँ।
दसरथ-कौसिल्या के आगैं, लसत सुमन की छहियाँ।
मानौ चारि हंस सरवर तैं, बैठे आइ सदेहियाँ।
रघुकुल-कुमुद-चंद चिंतामनि, प्रगटे भूतल महियाँ।
आए ओप देन रघुकुल कौं, आनँद-निधि सब कहियाँ।
यह सुख तीनि लोक मैं नाही, जो पाए प्रभु पहियाँ।
सूरदास हरि बोल भक्त कौ, निरबाहत गहि बहियाँ ।।२।।

कर कंपै, कंकन नहिं छूटैं।
राम सिया-कर परस मगन भए, कौतुक निरखि सखी सुख लूटैं।
गावत नारि गारि सब दै दै, तात-भ्रात का कौन चलावै।
तव कर-डोरि छुटै रघुपति जू, जब कौसिल्या माता आवै।
पूँगीफल-जुत जल निरमल धरि, आनी भरि कुँडि जो कनक की।
खेलत जूप सकल जुवतिनि मैं, हारे रघुपति, जिती जनक की।
धरे निसान अजिर गृह मंगल, बिप्र-वेद-अभिषेक करायौ।
सूर अमित आनंद जनकपुर, सोइ सुकदेव पुराननि गायौ ।।३।।

परसुराम तेहिं औसर आए।
कठिन पिनाक कहौ किन तोर्‌यौ, क्रोधित बचन सुनाए।
बिप्र जानि रघुबीर धीर, दोउ हाथ जोरि, सिर नायौ।
बहुत दिननि कौ हुतौ पुरातन, हाथ छुअत उठि आयौ।

तुम तौ द्विज, कुल-पूज्य हमारे, हम-तुम कौन लराई ?
क्रोधवंत कछु सुन्यौ नहीं, लियौ सायक धनुष चढ़ाई।
तबहूँ रघुपति क्रोध न कीन्हौ, धनुष न बान सँभार्‌यौ।
सूरदास प्रभु रूप समुझि, बन परसुराम पग धार्‌यौ ॥४॥

कहि धौं सखी बटाऊ को हैं ?
अद्‌भुत बधू लिये सँग डोलत, देखत त्रिभुवन मोहैं।
परम सुसील सुलच्छन जोरी, विधि की रची न होइ।
काकी तिनकौं उपमा दीजै, देह धरे धौं कोइ।
इनमैं को पति आहिं तिहारे, पुरजनि पूछैं धाइ।
राजिव नैन मैन की मूरति, सैननि दियौ बताइ।
गईं सकल मिलि संग दूरि लौं, मन न फिरत पुर-बास।
सूरदास स्वामी के बिछुरत, भरि-भरि लेति उसास ॥५॥

राम धनुष अरु सायक साँधे।
सिय हित मृग पाछैं उठि धाए, वलकल बसन, फेंट दृढ़ बाँधे।
नव-घन, नील-सरोज बरन बपु, बिपुल, बाहु, केहरि-फल काँधे।
इंदु बदन, राजीव नैन वर, सीस जटा सिव सम सिर बाँधे।
पालत, सृजत, सँहारत, सैंतत, अंड अनेक अवधि पल आधे।
सूर भजन-महिमा दिखरावत, इमि अति सुगम चरन आराधे ॥६॥

सुनहु अनुज, इहिं बन इतननि मिलि जानकी प्रिया हरी।
कछु इक अंगनि की सहिदानी, मेरी दृष्टि परी।
कटि केहरि, कोकिल कल बानी, ससि मुख प्रभा-धरी।
मृग मूसी नैननि की सोभा, जाति न गुप्त करी।
चंपक-बरन, चरन-कर कमलनि, दाड़िम दसन लरी।
गति मराल अइ बिंब अधर-छबि, अहि अनूप कवरी।
अति करुना रघुनाथ गुसाईं, जुग ज्यौं जाति घरी।
सूरदास प्रभु प्रिया प्रेम-बस, निज महिमा बिसरी ॥७॥

बिछुरी मनौ सँग तैं हिरनी।
चितवति रहत चकित चारों दिसि, उपजी बिरह तन जरनी।
तरुवर-मूल अकेली ठाढ़ी, दुखित राम की घरनी।
बसन कुचील, चिहुर लपिटाने, बिपति जाति नहिं बरनी।

लेति उसास नयन जल भरि- भरि, धुकि सो परै धरि धरनी।
सूर सोच जिय पोच निसाचर, राम नाम की सरनी ॥८॥

सो दिन त्रिजटी, कहु कब ऐहै।
जा दिन चरनकमल रघुपति के, हरषि जानकी हृदय लगैहै।
कबहुँक लछिमन पाइ सुमित्रा, माइ माइ कहि मोहिँ सुनैहै।
कबहुँक कृपावंत कौशिल्या, बधू-बधू कहि मोहिँ बुलैहै।
जा दिन कंचनपुर प्रभु ऐहैं, बिमल ध्वजा रज पर फरैहै।
ता दिन जनम सफल करि मानौं, मेरी हृदय-कालिमा जैहै।
जा दिन राम रावनहिं मारैं, ईसहिं लै दससीस चढ़ैहै।
ता दिन सूर राम पै सीता, सरबस बारि बधाई दैहै ॥९॥

जननी, हौं अनुचर रघुपति कौ।
मति माता करि कोप सरापै, नहिँ दानव ठग मति कौ।
आज्ञा होइ देउँ कर मुँदरी, कहौं सँदेसौ पति कौ।
मति हिय बिलख करौ सिय, रघुबर हतिहैं कुल दैयत कौ।
कहौ तो लंक उखारि डारि देउँ, जहाँ पिता संपति कौ।
कहौ तो मारि-सँहारि निसाचर, रावन करौं अगति कौ।
सागर-तीर भीर बनचर की, देखि कटक रघुपति कौ।
अबहिँ मिलाऊँ तुम्हैं सूर प्रभु, राम-रोष डर अति कौ ॥१०॥

सुनु कपि, वै रघुनाथ नहीं?
जिन रघुनाथ पिनाक पिता-गृह तोर्‌यौ निमिष मही।
जिन रघुनाथ फेरि भृगुपति-गति डारी काटि तहीं।
जिन रघुनाथ-हाथ खर-दूषन-प्रान हरे सरहीं।
कै रघुनाथ तज्यौ प्रन अपनौ, जोगिन दसा गही?
कै रघुनाथ दुखित कानन, कै नृप भए रघुकुलहीं।
कै रघुनाथ अतुल बल राच्छस दसकंधर डरहीं?
छाँड़ी नारि बिचारि पवन-सुत लंक बाग बसहीं।
कै हौं कुटिल, कुचील, कुलच्छनि, तजी कंत तबहीं।
सूरदास स्वामी सौं कहियौ अब बिरमाहिँ नहीं ॥११॥

मैं परदेसिन नारि अकेली।
बिनु रघुनाथ और नहिं कोऊ, मातु-पिता न सहेली।

रावन भेष धरचौ तपसी कौ, कत मैं भिच्छा मेली।
अति अज्ञान मूढ़ि-मति मेरी, राम-रेख पग पेली।
बिरह-ताप तन अधिक जरावत, जैसें दव द्रुम बेली।
सूरदास प्रभु बेगि मिलावौ प्रान जात हैं खेली ॥१२॥

तब हौं नगर अयोध्या जैहौं।
एक बात सुनि निश्चय मेरी, राज्य बिभीषन दैहौं।
कपि-दल जोरि और सब सेना, सागर सेतु बँधैहौं।
काटि दसौ सिर, बीस भुजा तब दसरथ सुत जु कहैहौं।
छिन इक माहिं लंक गढ़ तोरौं, कंचन-कोट ढहैहौं।
सूरदास प्रभु कहत बिभीषन, रिपु हति सीता लैहौं ॥१३॥

दूसरैं कर बान न लैहौं।
सुनु सुग्रीव, प्रतिज्ञा मेरी, एकहिं बान असुर सब हैहौं।
सिव-पूजा जिहिं भाँति करी है, सोइ पद्धति परतच्छ दिखैहौं।
दैत्य प्रहार पाप-फल-प्रेरित, सिर माला सिव सीस चढ़ैहौं।
मनौ तूल-गन परत अगिनि-मुख, जारि जड़न जम-पंथ पठैहौं।
करिहौं नाहिं बिलंब कछू अब, उठि रावन सम्मुख ह्वै धैहौं।
इमि दमि दुष्ट देव द्विज मोचन, लंक विभीषन, तुमकौं दैहौं।
लछिमन, सिया समेत सूर कपि, सब सुख सहित अयोध्या जैहौं ॥१४॥

आजु अति कोपे हैं रन राम।
ब्रह्मादिक आरूढ़ विमाननि, देखत हैं संग्राम।
घन तन दिव्य कवच सजि करि, अरु कर धारचौ सारंग।
सुचि करि सकल बान सूधे करि, कटि-तट कस्यौ निषंग।
सुरपुर तैं आयौ रथ सजि कैं रघुपति भए सवार।
काँपी भूमि कहा अब ह्वै है, सुमिरत नाम मुरारि।
छोभित सिंधु, सेष-सिर कंपित, पवन भयौ गति पंग।
इंद्र हँस्यौ, हर हिय बिलखान्यौ, जानि बचन कौ भंग।
धर-अंबर, दिसि-बिदिस, बढ़े अति सायक किरन-समान।
मानौ महा-प्रलय के कारन, उदित उभय षट भान।
टूटत धुजा-पताक-छत्र-रथ, चाप-चक्र-सिरत्रान।
जूझत सुभट जरत ज्यौं नवद्रुम, बिनु साखा बिनु पान।

स्रोनित छिछ उछरि आकासहिं, गज-बाजिनि-सिर लागि।
मानौ निकरि तरनि रंध्रनि तैं, उपजी है अति आगि।
परि कबंध भहराइ रथनि तैं, उठत मनौ झर जागि।
फिरत सृगाल सज्यौ सब काटत, चलत सो सिर लै भागि।
रघुपति रिस पावक प्रचंड अति, सीता स्वास समीर।
रावन-कुल अरु कुंभकरन बन, सकल सुभट रनधीर।
भए भस्म कछु बार न लागी, ज्यौं ज्वाला पट चीर।
सूरदास प्रभु आपु बाहुबल, कियौ निमिष मैं कीर ।।१५।।

बैठी जननि करति सगुनौती।
लछिमन-राम मिलैं अब मोकौं, दोऊ अमोलक मोती।
इतनी कहत सुकाग उहाँ तैं हरी डार उड़ि बैठ्यौ।
अंचल गाँठि दई, दुख भाज्यौं, सुख जु आनि उर पैठ्यौ।
जब लौं हौं जीवौं जीवन भर, सदा नाम तव जपिहौं।
दधि-ओदन दोना भरि दैहौं, अरु भाइनि मैं थपिहौं।
अब कैं जौ परचौ करि पावौं, अरु देखौं भरि आँखि।
सूरदास सोने कैं पानी, मढ़ौं चोंच अरु पाँखि ।।१६।।

हमारी जन्मभूमि यह गाउँ।
सुनहु सखा सुग्रीव-बिभीषन, अवनि अयोध्या नाउँ।
देखत बन-उपवन-सरिता-सर, परम मनोहर ठाउँ।
अपनी प्रकति लिए बोलत हौं, सुरपुर मैं न रहाउँ।
ह्याँ के बासी अवलोकत हौं, आनँद उर न समाउँ।
सूरदास जौ बिधि न सँकोचै, तौ बैकुंठ न जाउँ ।।१७।।

बिनती किहिं बिधि प्रभुहिं सुनाऊँ ?
महाराज रघुबीर धीर कौं, समय न कबहूँ पाऊँ।
जाम रहत जामिनि के बीतै, तिहिं अवसर उठि धाऊँ।
सकुच होत सुकुमार नींद मैं, कैसें प्रभुहिं जगाऊँ।
दिनकर-किरनि-उदति, ब्रह्मादिक-रुद्रादिक इक ठाऊँ।
अगनित भीर अमर-मुनि गन की, तिहिं तैं ह ठौर न पाऊँ।
उठत सभा दिन मधि, सैनापति भीर देखि फिरि आऊँ।
न्हात खात सुख करत साहिबी, कैसें करि अनखाऊँ।

रजनी-मुख आवत गुन-गावत, नारद तुंबुर नाऊँ।
तुमहीं कहौ कृपानिधि रघुपति किहिं गिनती मैं आऊँ।
एक उपाय करौ कमलापति, कहौ तौ कहि समुझाऊँ।
पतित उधारन नाम सूर प्रभु, यह रुक्का पहुँचाऊँ ॥१८॥

———

परिशिष्ट (ख)

अंतर्कथाएँ

संकेत सूचना—द्र० = द्रष्टव्य । भा० = भागवत । स्कं० = स्कंध । पू० = पूर्वार्द्ध । उ० = उत्तरार्द्ध । अ० = अध्याय । सू० = सूरसागार (सभा) । प० = पद ।

अंबरीष—अयोध्या के एक प्रसिद्ध वैष्णव राजा । एकादशी व्रत के पारण का समय निकलते देख व्रत खंडित होने के डर से इन्होंने दुर्वासा ऋषि को भोजन कराने के पहले ही भोजन कर लिया, जिससे क्रुद्ध होकर दुर्वासा ने इन्हें मारने के लिए कृत्या राक्षसी उत्पन्न की । परन्तु विष्णु के सुदर्शन चक्र ने उसे मारकर दुर्वासा का पीछा किया । दुर्वासा रक्षा के लिए विष्णु के पास गए, परन्तु विष्णु ने उन्हें अंबरीष के ही पास क्षमा माँगने के लिए भेज दिया । नारद ने भी उन्हें एक बार भ्रमवश क्रुद्ध होकर अंधकारावृत होने का शाप दिया था । परन्तु सुदर्शन चक्र ने अंधकार का नाश करके नारद का पीछा किया । नारद को विष्णु की शरण में पहुँचकर ही रक्षा प्राप्त हुई । देखो दुरबासा । द्र० भा०, स्कं० ९, अ० ४-५, सू०, प० ४४९ ।

अक्रूर—कंस की राज-सभा में अनिच्छा से रहने वाले एक कृष्ण-भक्त यादव जो वसुदेव के भाई भी कहे जाते हैं । जब कंस ने इन्हें धनुष-यज्ञ के अवसर पर कृष्ण-बलराम को मथुरा लाने के लिए भेजा तो इन्हें कृष्ण-दर्शन की लालसा पूर्ण होने का अवसर जान बहुत प्रसन्नता हुई । उसके बाद ये निरंतर कृष्ण के ही निकट रहे । द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० ३८-३९, ४८-४९; सू०, प० ३५५७-३५७१, ३६३०-३६३३, ४७७८ ।

अघासुर—बकासुर और पूतना का छोटा भाई एक असुर जिसे कंस ने कृष्ण को मारने के लिए व्रज भेजा था । इसने इतने विशालकाय अजगर का रूप धारण किया कि उसका मुख पर्वत की गुफा के समान लगता था । कृष्ण के गोपसखाओं ने

उसे गोचारण के समय देखा और उसके मुख की अजगर के मुख से तुलना करते हुए भी वे उसमें बछड़ों के साथ प्रविष्ट हो गए। पीछे से स्वयं श्रीकृष्ण ने जाकर अपना शरीर विस्तृत करके अघासुर का ब्राह्मांड विदीर्ण कर दिया और मृत गोपों और बछड़ों को अमृत से जिला लिया। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० १२; सू०, प० १०४६।

अजामिल (अजामील)—कन्नौज निवासी एक कुकर्मी, दासीपति ब्राह्मण जिसने दासी से उत्पन्न अपने सबसे छोटे और सबसे प्रिय पुत्र 'नारायण' का नाम लेने मात्र से यम-दूतों से छुटकारा पाया। नाम की महिमा से उसका जीवन पवित्र हो गया और उसका उद्धार हो गया। द्र० भा०, स्कं० ६, अ० १; सू०, प० ४१५।

अर्जुन—पांडवों में तृतीय, श्रीकृष्ण के सबसे अधिक कृपा-पात्र जिन्हें श्रीकृष्ण ने अपना प्रिय सखा करके माना! अर्जुन ने महाभारत युद्ध में श्रीकृष्ण की विशाल सेना न लेकर केवल श्रीकृष्ण की व्यक्तिगत सहायता माँगी थी। श्रीकृष्ण ने स्वयं अर्जुन के सारथी बनकर उनकी सहायता की थी तथा अर्जुन के मोह को दूर करने के लिए उन्हें गीता का उपदेश दिया था।

अहि—सर्प, परन्तु यहाँ कालियानाग के लिए प्रयुक्त। देखो 'कालियनाग'।

इन्द्र—प्रधान वैदिक देवता जिन्हें अपदस्थ करके पुराणों ने विष्णु की महत्ता स्थापित की। कृष्ण-लीला में इस विषय का मुख्य प्रसंग गोवर्द्धन लीला है। ब्रज में इन्द्र की पूजा मिटाकर गोवर्द्धन पूजा कराने पर कुपित होकर जब इन्द्र ने घोर जल-वृष्टि की, तब श्रीकृष्ण ने गोवर्द्धन पर्वत को हाथ पर धारण करके ब्रजवासियों की रक्षा की तथा इन्द्र का गर्व-प्रहार किया। इन्द्र कृष्ण की शरण में आया और उसने उनसे क्षमायाचना की। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० २४-२५; सू०, प० १४२६-१५०१, १५६१-१६००।

उग्रसेन—मथुरा के यदुवंशी राजा जिन्हें उनके ज्येष्ठ पुत्र कंस ने अपने श्वसुर जरासंध की सहायता से कारागार में डाल दिया था और स्वयं राजा बन बैठा था। श्रीकृष्ण ने कंस को मारकर उन्हें फिर राज्याधिकार दिलाया।

उपंग सुत (उपंग सुत)—उद्धव, उपंग नामक एक यादव के पुत्र, जो श्रीकृष्ण के सखा थे और मथुरा से उनका संदेश गोपियों के पास ले गए थे। देखो उद्धव।

ऋषि पत्नी—गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या, भूल से अपराध हो जाने के कारण जिसे गौतम ने पत्थर हो जाने का शाप दिया था। श्रीराम की चरण-रज के

स्पर्श से उसे पुन: मनुष्य शरीर मिला तथा उसका उद्धार हो गया। द्र० सू०, प० ४१६।

ऐरावत—इन्द्र का श्वेत रंग का हाथी जो चौदह रत्नों में एक था।

कंस—मथुरा के राजा उग्रसेन का क्षेत्रज ज्येष्ठ पुत्र जिसने अपने श्वसुर जरासंध की सहायता से पिता को कारागार में डालकर राज्य हस्तगत कर लिया था। कृष्ण को मारने के उसने अनेक असफल उपाय किए और अन्त में जब उसने धनुष-यज्ञ के बहाने कृष्ण-बलराम को मारने के लिए मथुरा बुलाया तब वह स्वयं कृष्ण के द्वारा मारा गया। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० १-४, ४२-४४; सू०, प० ६२२, ३६५२-३७०६।

काल जवन (कालयवन)—एक नि:संतान यवन द्वारा पाला हुआ, महर्षि गार्ग्य और गोपाली अप्सरा का पुत्र, जो इतना पराक्रमी राजा हुआ कि उसने जरासंध के साथ मथुरा पर आक्रमण करके यादवों को वहाँ से भगा दिया। श्रीकृष्ण उसके डर से हिमालय की एक गुफा में भाग गए, जहाँ मांधाता-पुत्र मुचकुन्द सो रहा था। कालयवन कृष्ण का पीछा करते हुए वहाँ पहुँचा तो उसने सोते हुए मुचकुन्द को ही कृष्ण समझकर उसे लात मारकर जगाया। मुचकुन्द ने ज्यों ही उसे नेत्र खोलकर देखा त्यों ही कालयवन भस्म हो गया। देखो मुचकुन्द द्र० भा०, स्कं० १० उ०, अ० ५२; सू०, प० ४७८१।

काली (कालिय नाग)—कद्रू-पुत्र, नागों का राजा, जो गरुड के भय से अपना निवास स्थान रमणक द्वीप छोड़कर ब्रज के निकट यमुना के एक दह में रहता था जहाँ सौभरि ऋषि के शाप के कारण गरुड की गति नहीं थी। इससे काली दह (कालिय दह) का जल अत्यन्त विषैला हो गया था। श्रीकृष्ण ने उस दह में, 'सूरसागर' के अनुसार गेंद खेलने के प्रसंग में, प्रविष्ट करके कालिय को नाथ लिया। श्रीकृष्ण का प्रभुत्व जान कालिय ने उनकी स्तुति की। अन्त में उसे रमणक द्वीप में निर्भय रहने का वरदान मिल गया। देखो खगराइ तथा रिषि-साप। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० १६; सू०, प० ११३८-१२०७।

कालीदह—ब्रज के निकट यमुना का एक दह जिसमें कालिय नाग रहता था। देखो काली तथा रिषिसाप।

कालीनाग (कालिया नाग)—नागों का राजा। देखो काली।

कुबलया पीर (कुवलया पीड)—हाथी के रूप में कंस का सहायक असुर, जिसे श्रीकृष्ण

ने मथुरा में मल्लयुद्ध देखने जाते समय रास्ते में ही मार दिया था। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० ४३; सू०, प० ३६७०-३६७८।

कुबिजा—देखो कुब्जा।

कुब्जा—कंस की एक (त्रिवक्रा) तीन जगह से टेढ़ी, किन्तु रूपवती दासी जो श्रीकृष्ण को मथुरा-प्रवेश के समय मिली और जिसने वह अंगराज जो वह कंस के लिए ले जा रही थी श्रीकृष्ण के माँगने पर उन्हें प्रेमपूर्वक भेंट किया। श्रीकृष्ण ने उसका कूबर नष्ट करके उसे परम सुन्दरी बनाया। श्रीकृष्ण से वह प्रेम करने लगी तथा श्रीकृष्ण ने उसके आग्रह पर मथुरा में अपना कार्य-सिद्ध कर लेने के बाद उसके घर आने का वचन देकर उसे विदा किया। 'सूरसागर' में वर्णन है कि श्रीकृष्ण उसके प्रेम को स्वीकार करके उसके यहाँ गए। उसने भी उद्धव के हाथ राधा और गोपियों के लिए पाती दी थी। भ्रमर-गीत में गोपियों ने उसके प्रेम पर व्यंग्य किए हैं। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० ४२; सू०, प० ३६६८-३६६९, ४२५६-४२६८।

केसी (केशी)—श्रीकृष्ण को मारने के लिये कंस द्वारा भेजा हुआ एक अश्वरूपधारी असुर जो कृष्ण द्वारा मारा गया। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० ३७; सू०, प० २०१४।

खगराज—गरुड पक्षी, जो विष्णु का वाहन माना जाता है और जो कश्यप की पत्नी विनता से उत्पन्न है। उनकी दूसरी पत्नी कद्रू से उत्पन्न सर्पों से इसकी जन्मजात शत्रुता है। एक बार सर्पों ने अपना भारी संहार देखकर प्रति मास बारी से एक सर्प देने का निश्चय किया, परन्तु कालीय नाग ने गर्ववश अपना हिस्सा नहीं दिया तथा गरुड से युद्ध किया। परन्तु अन्त में घायल होकर रमणक द्वीप छोड़ ब्रज में यमुना के एक गम्भीर दह में जाकर रहने लगा, जहाँ ऋषि शाप के कारण गरुड नहीं जा सकता था। देखो रिषिसाप तथा काली।

गज—हाथी (१) त्रिकूट पर्वत का एक प्रसिद्ध हाथी जो पूर्व जन्म में राजा इन्द्रद्युम्न था और अगस्त मुनि के शाप से पशु योनि को प्राप्त हुआ था। जलाशय में स्नान करते समय एक बार एक ग्राह द्वारा पकड़े जाने पर इसने भगवान् को सहायतार्थ पुकारा। भगवान् ने उसे ग्राहपाश से ही नहीं, पशु योनि से भी मुक्त कर दिया। द्र० भा०, स्कं० ८, अ० २-४; सू०, प० ४२९-४३३।
(२) कुवलया पीड। देखो कुवलया पीर।

गजराज—देखो गज।

गणिका—जीवन्ती नाम की एक वेश्या जो बिना समझे हुए भी तोते को राम नाम पढ़ाने के कारण मोक्ष पा गई।

गर्ग—यादवों के पुरोहित; जिन्हें वसुदेव ने कृष्ण का नामकरण करने के लिए गोकुल भेजा था। कृष्ण-बलराम के अन्य संस्कारों में भी गर्ग मुनि के पौरोहित्य का उल्लेख हुआ है। गर्ग ने नामकरण के ही अवसर पर कृष्ण-बलराम के अलौकिक व्यक्तित्व की सूचना दी थी।

गुरु-सुत—कृष्ण-बलराम के गुरु सांदीपिनि का पुत्र, जो प्रभास क्षेत्र के सागर में डूब गया था और जिसे श्रीकृष्ण ने यमपुरी से लाकर गुरु-दक्षिणा में गुरु को भेंट किया था।

ग्राह—मगर, घड़ियाल, यहाँ पर इस ग्राह के लिए प्रयुक्त जिसने त्रिकूट पर्वत पर रहने वाले गजेन्द्र को सरोवर में स्नान करते समय पकड़ा था। भगवान् विष्णु ने गज की पुकार पर उसे तो संकट-मुक्त किया ही, ग्राह का सर काट कर उसे भी पशुयोनि से मुक्त कर दिया। ग्राह पूर्व जन्म में हू हू नामक गंधर्व था जो देवल ऋषि के शाप से ग्राह हो गया था। देखो गज।

चानूर—(चाणूर)—कंस का एक असुर मल्ल, जिसे श्रीकृष्ण ने धनुष यज्ञ के अवसर पर आयोजित मल्ल-युद्ध में मारा था। पूर्व जन्म में यह मय दानव था। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० ४४; सू०, प० ३६८३-३६८५।

चौरासी—चौरासी लाख योनियाँ, जन्म-जन्मान्तर में आवागमन का चक्र।

जमलार्जुन—(यमलार्जुन)—यमल और अर्जुन नामक दो वृक्ष, जो पूर्व जन्म में नलकूबर और मणिग्रीव नामक कुवेर के दो पुत्र थे और नारद के शाप से वृक्ष हो गये थे। श्रीकृष्ण ने उलूखन-बंधन लीला में उन्हें गिराकर शाप-मुक्त किया था। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० ६; सू०, प० १०००-१००६।

तृनावर्त—(तृणावर्त)—एक असुर जो भयंकर वात-चक्र के साथ-तिनके के शिशु रूप में कृष्ण को मारने आया और उन्हें ऊपर आकाश में उड़ा ले गया। कृष्ण ने उसका संहार कर महाकाय राक्षस के रूप में एक शिला पर पटक दिया। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० ७; सू०, प० ६८४-६८८।

दावाग्नि—(दावाग्नि)—वह अग्नि जो वन में अपने आप प्रकट हो जाती है। यहाँ कृष्ण-लीला में वर्णित वह दवानल जिसे ब्रजवासियों के रक्षार्थ श्रीकृष्ण पी गए थे। 'भागवत' में दावानल-पान की लीला दो बार वर्णित है—एक, जब

कालिय-दमन के बाद सब व्रजवासी रात में यमुना के तट पर ही सो रहे थे, तब आधी रात को दावानल के प्रकट होने पर कृष्ण ने उसका पान करके भयातुर व्रजवासियों को आश्वस्त किया था तथा दूसरी बार गोचारण के समय उसी प्रकार उन्होंने गोपसखाओं की रक्षा की थी। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० १७, १६; सू०, प० १२०८-१२१६, १२१२-१२३३।

दावानल—देखो दावाग्नि।

दुरबासा—(दुर्वासा) एक क्रोधी स्वभाव के ऋषि, जिन्हें राजा अम्बरीष ने एकादशी-पारण पर भोजन करने के लिए निमंत्रित किया था, परन्तु पारण का समय निकल जाने के डर से ऋषि को भोजन कराने के पहले ही भोजन करके उन्हें कुपित कर दिया था। देखो अंबरीष।

दुस्सासन=(दुःशासन)–दुर्योधन का छोटा भाई, जिसने पांडवों के जुए में हार जाने पर सभा में द्रौपदी के वस्त्र खींचे थे। देखो द्रुपद-सुता।

द्रुपदसुता—(द्रौपदी)—पंजाब के राजा द्रुपद की पुत्री कृष्णा जो पाँचों पांडवों की पत्नी थी और जिसे पांडव कौरवों के साथ जुए में हार गए थे। दुःशासन ने सबके सामने उसको बलात् नग्न करने का प्रयत्न किया। परन्तु संकट में द्रौपदी ने श्रीकृष्ण को स्मरण किया। श्रीकृष्ण योगमाया से उसका वस्त्र इतना बढ़ाते गये कि दुःशासन उसे खींचते-खींचते हार गया।

द्रौपदी—देखो द्रुपद-सुता।

धेनुक—तालाब में रहने वाला एक गर्दभ रूपी असुर, जिसे बलभद्र ने पिछली टाँगें पकड़, पटककर मार डाला था। उसके साथी अन्य गर्दभ रूपी राक्षसों ने जब आक्रमण किया तो उन्हें भी कृष्ण-बलराम ने पटक-पटककर मार डाला। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० १५; सू०, प० १११७।

ध्रुव—राजा उत्तानपाद और सुनीति के विष्णु-भक्त पुत्र, जो अत्यन्त बाल्यावस्था में विमाता-पुत्र उत्तम के कारण पिता द्वारा अपमानित होने पर विरक्त होकर निर्जन वन में घोर तपस्या करने चले गए। इन्द्रादि देवों के प्रयत्न करने पर भी जब इनकी तपस्या खण्डित नहीं हुई, तब भगवान् ने इन्हें ध्रुवलोक का वरदान दिया जो अटल है और समस्त लोकों, ग्रहों और नक्षत्रों का आधार है।

नामदेव—तेरहवीं-चौदहवीं शती में हुए दक्षिण भारत के एक प्रसिद्ध सन्त जिन्होंने घर में आग लग जाने पर उसे बुझाया नहीं, बल्कि बची-खुची वस्तुएँ भी

उस अग्निदेव को अर्पित कर दीं। कहते हैं, भगवान् ने प्रसन्न होकर रातों-रात उनका छप्पर अपने हाथों छा दिया था।

नारद—ब्रह्मा के मानस-पुत्र, वीणा लेकर हरि कीर्तन करते हुए निरन्तर भ्रमण करने वाले श्रेष्ठ वैष्णव भक्त, जो पूर्व जन्म में किसी दासी के पुत्र थे और वेदान्ती मुनियों की सेवा करने तथा उनका जूठा भोजन करने से जिनके हृदय में पाँच वर्ष की अवस्था से ही वैराग्य पैदा हो गया था। सौभाग्य से इनकी माता भी मर गईं जिससे ये निर्जन वन में जाकर भगवान् का ध्यान करने में सफल हुए। भगवान् ने इन्हें हृदय में तो दर्शन दिए, परन्तु इस जन्म में प्रत्यक्ष दर्शन होना असम्भव बताया। फिर भी भक्ति का परम वरदान पाकर ये कालांतर में परम धाम के अधिकारी हुए। नारद भक्तों में ही नहीं, विमुखों के बीच भी विचरते हैं। कंस को उसके अन्तिम परिणाम तक पहुँचाने के लिए नारद ही बराबर उसको सलाह देते रहे।

नृग—इक्ष्वाकु वंश का एक दानी राजा, जो ब्राह्मण को दान में दी हुई गाय भूल से पुनः दूसरे ब्राह्मण को दे देने के कारण गिरगिट हो गया था और जिसे श्री कृष्ण के स्पर्श मात्र से पुनः मनुष्य रूप मिला और जो भगवत्कृपा से श्रेष्ठ विमान पर चढ़कर दिव्य लोक चला गया।

पूतना—कंस की भेजी हुई एक राक्षसी, जो शिशु कृष्ण के प्रति वात्सल्य दिखाकर विष लगे स्तन का दूध पिलाकर उन्हें मार डालना चाहती थी, परन्तु जिसे उलटे कृष्ण ने दूध पीते-पीते मार डाला और इस तरह उसका उद्धार कर दिया। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० ६; सू०, प० ६६७-६७३।

प्रलंब—एक असुर, जो कृष्ण-बलराम को हर ले जाने के लिए गोप रूप धारण करके वृन्दावन में गोचारण के समय गोपों के साथ मिल गया और उनके साथ खेलने लगा। खेल में हारने पर जब वह बलराम को पीठ पर लादकर ले चला तो उसका असली उद्देश्य और रूप प्रकट हुआ। बलराम ने भयंकर असुर को एक ही मुष्टि-प्रहार से मार डाला। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० १८; सू०, प० १२२२।

प्रह्लाद—एक आदर्श वैष्णव भक्त जो अपने पिता दैत्यराज हिरण्यकशिपु द्वारा सर्प से कटवाए जाने, हाथी से कुचलवाए जाने, पहाड़ से गिराए जाने तथा अग्नि में जलाए जाने, पर भी विष्णु की भक्ति से विचलित नहीं हुआ। सर्वव्यापक

भगवान् ने उसकी निरन्तर रक्षा की और इसी हेतु खम्भे से नृसिंह रूप में प्रकट होकर पापी हिरण्यकशिपु का वध कर दिया।

बक, बका (बकासुर)—बगले के रूप में कृष्ण को निगलकर मारने के लिए आया एक असुर, जिसने गोचारण के समय (अपनी तीक्ष्ण चोंच से पकड़कर) कृष्ण को निगल लिया, परन्तु तालू जलने के कारण उन्हें उगलना पड़ा। कृष्ण ने उसकी चोंच को विदीर्ण कर उसे मार डाला। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० ११; सू०, प० १२४५।

बकासुर—देखो बक, बका !

बकी—बकासुर और अघासुर की बहन, पूतना। देखो पूतना।

बरुन-फाँस—(वरुण-पाश)—एकादशी व्रत के बाद एक बार नन्द आसुरी बेला में ही यमुना-स्नान करने चले गए। इस पर जल-देवता वरुण का किंकर उन्हें वरुण के पास ले गया। श्रीकृष्ण को जब यह मालूम हुआ तो वे स्वयं वरुणालय जाकर पिता को पाश से छुड़ा लाए। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० २८; सू०, प० १६०२।

बलि—एक दानशील, तपस्वी और पुण्यात्मा दैत्यराज जो प्रह्लाद के पौत्र और विरोचन के पुत्र थे। अपने पुण्यबल से ये इन्द्र का पद लेने ही वाले थे कि इन्द्र की प्रार्थना पर भगवान् विष्णु ने वटुक वामन का रूप धारणकर दैत्यराज से तीन पद पृथ्वी माँग ली और फिर वृहदाकार धारण करके समस्त भूमण्डल और स्वर्ग को दो पदों से तथा स्वयं बलि के शरीर को तीसरे पद से नाप लिया। अन्त में भगवान् ने प्रह्लाद की अनुनय-विनय तथा बलि के पुण्यकृत्यों से प्रसन्न होकर उन्हें रोग-जरा-मृत्युहीन सुतल में रहने का तथा इन्द्र पद प्राप्ति का वरदान दिया।

बसुद्यो—(वसुदेव)—श्रीकृष्ण-बलराम के पिता।

बासुदेव—(वासुदेव) भागवत (पांचरात्र या वैष्णव) धर्म के आदि देव जो प्रारम्भ में वृष्णिवंशीय सत्वतों के पूज्य थे। 'हरिवंश' तथा पुराणों के अनुसार श्रीकृष्ण ही असली और द्वितीय वासुदेव हुए। स्वयं श्रीकृष्ण ने अन्य राजाओं (शृगाल, पौंड्रक) के मिथ्या वासुदेवत्व को सिद्ध करके इसे प्रमाणित किया था। वसुदेव के पुत्र होने के कारण भी श्रीकृष्ण वासुदेव कहलाते हैं।

बिदुर—(विदुर)—दासी के गर्भ से उत्पन्न व्यास के औरस पुत्र तथा धृतराष्ट्र और पांडु के भाई, जो अत्यन्त न्यायशील, विवेकशील और भक्त-हृदय थे। महा-

भारत युद्ध के पहले समझौता कराने के लिए जब कृष्ण दुर्योधन के यहाँ गये थे तब विदुर के घर ही ठहरे थे। दुर्योधन के अभिमान भरे राजसी आतिथ्य के स्थान पर उन्हें विदुर का प्रेमभरा साग-पात का भोजन अधिक रुचा था।

बिभीषण—(विभीषण)—रावण का भाई, जो राक्षस कुल का होते हुए भी अत्यन्त न्यायशील, धर्मात्मा और राम-भक्त था। राम ने उसके योग-क्षेम के लिए तथा उसे लंकापति बनाने के लिए सीता को लौटाने या शक्ति बाण से आहत मरणासन्न लक्ष्मण को जिलाने से भी अधिक चिंता प्रकट की थी।

ब्याध—(व्याध)—आदिकवि वाल्मीकि जो प्रारम्भ में अनाथ ब्राह्मण बालक होने के कारण भीलों द्वारा पाले गए थे। जीव हत्या और डकैती ही इनका व्यवसाय था। इनकी स्त्री भी एक भीलनी थी। एक बार सप्तर्षियों पर डाका डालने के बाद ये 'मरा' 'मरा' जपने लगे, जो 'राम' 'राम' का मन्त्र हो गया। इसी से इन्हें सद्बुद्धि मिली और इन्होंने घोर तपस्या करके उद्धार पाया।

ब्योम—(व्योमासुर)—मयासुर का पुत्र एक असुर, जो एक बार पर्वत शिखरों पर 'निलायन' नामक खेल खेलते हुए गोपों में गोप बनकर मिल गया और खेल में पशु बने हुए बालकों को एक-एक करके ले जाने लगा। श्रीकृष्ण उसकी माया ताड़ गए और उन्होंने उसे दबोचकर तथा पटककर मार डाला। द्र० भा०, स्कं० १०, अ० ३७; सू०, प० २०१५।

ब्रह्मा—त्रिदेव में से एक, परन्तु पुराणों में विष्णु की अपेक्षा उन्हें सदैव नीचा चित्रित किया गया है। विष्णु ने इन्हें नाभि-कमल से उत्पन्न करके सृष्टि रचना का भार इन्हीं को सौंपा तथा सर्वप्रथम इन्हीं को वेद का ज्ञान दिया। 'भागवत' के अनुसार सर्वप्रथम ब्रह्मा ने ही चतुश्लोकी 'भागवत' विष्णु भगवान् के मुख से सुनी थी, वही उन्होंने अपने मानस पुत्र नारद को सुनाई तथा नारद ने उसे व्यास को सुनाया। 'भागवत' में ब्रह्मा की अपेक्षा कृष्ण की महिमा अधिक सिद्ध करने लिए ब्रह्मा द्वारा अज्ञानवश गोचारण के अवसर पर गो-वत्स हरण का प्रसंग वर्णित है। श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा का मोह और गर्व मिटाने के लिए हरण किए गो-वत्स की ही तरह नवीन गो-वत्स की सृष्टि कर ली। तब ब्रह्मा ने शरण में जाकर कृष्ण की स्तुति की। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० १३-१४; सू०, प० १०५४-१०५६, ११०१-११०८, १११०।

भृगु—एक ऋषि, जो शिव के पुत्र कहे गये हैं। एक बार यह जानने के लिए कि त्रिदेव में सबसे बड़ा कौन है, इन्होंने तीनों का अपमान किया। ब्रह्मा और महेश तो क्रुद्ध हो गए; परन्तु जब उन्होंने विष्णु को लात मारकर सोते से जगाया, तब उन्होंने क्रोध करने के बजाय इनसे पूछा कि आपके पैर में चोट

तो नहीं लगी तथा उनके पद-चिन्ह को सदैव अपने वक्ष पर धारण किया। द्र० भा०, स्कं० १० उ०, अ० ८६; सू०, प० ४१२६।

भृगु-पद—विष्णु भगवान् के वक्ष-स्थल पर स्थायी रूप से स्थापित भृगु-ऋषि का पद-चिन्ह। देखो भृगु।

मुचकुन्द—अयोध्या का एक प्राचीन राजा, मांधाता का पुत्र, जो देवासुर संग्राम में देवों की ओर से लड़ते-लड़ते थककर हिमालय की एक गुफा में सो गया था। कालयवन द्वारा खदेड़े जाकर श्रीकृष्ण जब उस गुफा में पहुँचे तो उन्होंने अपना पीतांबर उसे ओढ़ा दिया। पीछे से कालयवन ने आकर उसी को कृष्ण समझा और उस पर आक्रमण किया। मुचकुन्द के नेत्र खोलते ही कालयवन भस्म हो गया। देखो कालयवन।

मुष्टिक—कंस का एक असुर मल्ल जिसे धनुष-यज्ञ पर आयोजित मल्लक्रीड़ा में बलराम ने मारा था। दूसरे मल्ल, चाणूर को कृष्ण ने मारा था। देखो चाणूर।

रंभा—एक अति रूपवती अप्सरा, चौदह रत्नों में से एक, जो इन्द्र-सभा की शोभा बढ़ाती है।

रजक—धोबी, यहाँ कंस का विशिष्ट धोबी, जिसे मथुरा में प्रवेश करते समय, कृष्ण ने धुले कपड़े ले जाते देखा और माँगने पर कपड़े देना अस्वीकार करने के कारण एक तमाचे के प्रहार से मार डाला। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० ४१; सू०, प० ३६५५-३६६०।

राजसूय—चक्रवर्ती सम्राट् द्वारा किया जाने वाला यज्ञ, जिसमें अन्य राजागण सेवक बनते हैं। यहाँ युधिष्ठिर द्वारा किया गया राजसूय यज्ञ जिसमें श्रीकृष्ण ने अभ्यागत जनों के पैर धोने का सेवक-कार्य स्वेच्छा से ग्रहण किया था। इसी यज्ञ में सबसे पहले श्रीकृष्ण के पूजे जाने पर कुपित होकर शिशुपाल ने श्रीकृष्ण को गालियाँ दी तथा श्रीकृष्ण ने सुदर्शनचक्र से उसका वध किया। इसी यज्ञ के अवसर पर अभिमानी और ईर्ष्यालु दुर्योधन ने जब भाइयों सहित प्रवेश किया तो सूखे में जल का तथा जल में सूखे का भ्रम होने से वह हास्यास्पद आचरण करने लगा। जिससे पांडव, उनकी स्त्रियाँ आदि सभी हँसने लगे तथा दुर्योधन अत्यन्त लज्जित हुआ। द्र० भा०, स्कं० १० उ०, अ० ७५-७६; सू०, प० ४८३७-४८३८।

राहु—सिंहि का पुत्र, एक असुर। समुद्र-मंथन के बाद देवताओं में सम्मिलित होकर अमृत-पान करने के अपराध में विष्णु ने इसका सर काट डाला था। परन्तु अमृत के प्रभाव से वह राहु (सर) तथा केतु (धड़) के रूप में अमर रहा।

सूर्य और चन्द्रमा ने ही पहचानकर उसकी शिकायत कर दी थी, अतः वह उनसे शत्रुता मानकर उन्हें 'ग्रहण' के रूप में ग्रसता रहता है।

रिषि-साप (ऋषि-शाप)—सौभरि ऋषि का गरुड को शाप। एक बार व्रज में यमुना के एक गम्भीर दह में—जो बाद में कालियदह नाम से प्रसिद्ध हुआ—सौभरि ऋषि के रोकने पर भी गरुड ने एक भारी मच्छ खा डाला। उसके वियोग में तड़पती मछलियों के दुःख से द्रवित होकर ऋषि ने शाप दिया कि यदि गरुड यहाँ किसी मछली को खाएगा तो तुरन्त उसकी मृत्यु हो जायगी। कालियनाग इस रहस्य को जानता था। अतः वह गरुड से बचने के लिए वहीं जाकर रहता था। देखो काली तथा खगराइ। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० १७।

लाखा-गृह (लाक्षा-गृह)—पांडवों के जलाने के लिए दुर्योधन ने लाख का एक घर बनवाया था परन्तु भगवत्कृपा से पांडव उससे जीवित निकल आए थे।

श्रीदामा—श्रीकृष्ण के सबसे प्रिय और प्रधान गोप-सखा जो बाल-केलि और गोचारण की लीला में सदैव उनके साथ रहे। 'सूरसागर' के अनुसार कालियदमन लीला का तत्काल कारण उस कंदुक-क्रीड़ा में आ उपस्थित होता है जिसमें श्रीकृष्ण ने श्रीदामा की गेंद कालियदह में फेंक दी थी और श्रीदामा ने वापस देने का आग्रह किया था। तभी श्रीकृष्ण गें. लेने के लिए कालियदह में कूद पड़े थे। ब्रह्मवैवर्त पुराण (श्रीकृष्ण जन्म खण्ड) के अनुसार श्रीदामा के शाप के कारण ही राधा और कृष्ण को अवतार लेना पड़ा था।

संकर्षन (संकर्षण)—बलराम, वसुदेव के ज्येष्ठ पुत्र, जो पहले देवकी के गर्भ में आए थे, परन्तु विष्णु की माया से देवकी का गर्भ संकर्षित होकर रोहिणी में स्थापित हो गया था! इसलिए जब ये नन्द के यहाँ रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए, तब गर्ग ने इनका नाम संकर्षण रखा। ये चार व्यूहों—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—में से एक हैं जो दुष्टों का संहार करते हैं। बलराम उद्धत-स्वभाव और मद्यप्रिय कहे गये हैं। हल और मूसल इनके अस्त्र हैं। इसी कारण ये हलधर भी कहे जाते हैं।

सकट (शकट)—छकड़ा या गाड़ी, परन्तु यहाँ वह छकड़ा जिसे पालने में लेटे शिशु कृष्ण ने पैर से उछालकर गिरा दिया था जिससे वह चूर-चूर हो गया था और उसमें रखे दूध-दही आदि के अनेक बर्तन टूट-फूट गए थे। इस विस्मय-जनक कार्य पर किसी को विश्वास हुआ, किसी को नहीं। यशोदा ने उसे ग्रहों का उत्पात समझा और स्वस्तिवाचन कराया। 'सूरसागर' में इसे भी

कंस का भेजा एक असुर (शकटासुर) कहा गया है। द्र० भा०, स्कं० १० पू०, अ० ७; सू०, प० ६७६-६८०।

सनक—सनक, सनंदन, सनातन, सनत्कुमार में से एक। ये ब्रह्मा के मानस पुत्र तथा विष्णु के परम भक्त विख्यात हैं। इन लोगों के भक्ति में निरत हो जाने के कारण ब्रह्मा को अन्य पुत्रों की उत्पत्ति करनी पड़ी थी। ये विष्णु के सभासद भी कहे जाते हैं! विष्णु के द्वारपाल जय-विजय द्वारा रोके जाने पर इन्होंने ही उन्हें असुर होने तथा तीसरे जन्म में उद्धार पाने का शाप और वरदान दिया था। इन चारों में सनत्कुमार सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। चारों को प्रायः सनकादि कहकर अभिहित किया जाता है।

सनकादि—देखो सनक।

सिंधु-सुता—लक्ष्मी जो समुद्रमंथन के समय निकले हुए १४ रत्नों में से एक थीं।

सुक (शुक, शुकदेव)—व्यास के पुत्र, महान् पौराणिक कथाकार, जिन्होंने परीक्षित को 'भागवत' की कथा सुनाई थी। जिस समय शिव जी एकांत में उमा को विष्णुसहस्रनाम सुना रहे थे, एक शुक भी उसे सुन रहा था। शिव जी ने जब यह जाना तो वे शुक को मारने दौड़े। शुक आत्म-रक्षार्थ व्यास पत्नी के मुँह में चला गया और १२ वर्ष तक उनके गर्भ में रहा। इस बीच वेदव्यास ने भागवतादि की समस्त कथाएँ अपनी पत्नी को सुनाईं। शुक भी सुनता रहा। भगवान् ने इसे गर्भ में ही तत्वज्ञानी और मायारहित होने का वरदान दिया था जो कथा व्यास ने शुकदेव को सुनाई, वही शुकदेव से परीक्षित ने सुनी।

सुदामा—गुरु सांदीपिनि के यहाँ श्रीकृष्ण के सहपाठी, उनके एक प्रसिद्ध बालसखा, जो एक अत्यन्त दरिद्र ब्राह्मण थे। पत्नी के बार-बार कहने पर वे अपनी दारुण दरिद्रता दूर करने की आशा में श्रीकृष्ण के यहाँ द्वारकापुरी में गए। मित्र को भेंट देने के लिए वे केवल थोड़े से चावल ले जा सके थे, परन्तु वे उसे छिपा रहे थे। श्रीकृष्ण ने चावलों की पोटली उनसे आग्रहपूर्वक छीन ली और उसमें से दो मुट्ठी चावल फांक लिए। तीसरी मुट्ठी भरते समय रुक्मिणी जी ने उन्हें रोक दिया। सुदामा जब लौटे तो सोचने लगे कि किसी भलाई के लिए ही श्रीकृष्ण ने मुझे यथेष्ट धन नहीं दिया। परन्तु जब घर पहुँचे तो वे चकित हो गए। उनके यहाँ अपार वैभव हो गया था। दो मुट्ठी चावल फाँककर ही भगवान् ने उन्हें लोक-परलोक की सम्पत्ति दे डाली। द्र० भा०, स्कं० १० उ०, अ० ८०, ८१; सू०, प० ४८४२-४८६३।

सुफलकसुत—अक्रूर। देखो अक्रूर।

हरिश्चन्द्र—सूर्यवंश के एक प्रसिद्ध सत्यप्रतिज्ञ राजा, जिनसे राजसूय-यज्ञ की दक्षिणा के बहाने विश्वामित्र ने सर्वस्व हर लिया था। उनकी दृढ़ प्रतिज्ञा की सबसे कठोर परीक्षा तब हुई जब वे एक चांडाल के क्रीतदास के रूप में श्मशान पर पहरा दे रहे थे। उसी समय उनकी पत्नी शैव्या, जो एक ब्राह्मण को बेच दी गई थी, अपने मृत पुत्र रोहिताश्व का अन्तिम संस्कार करने आई। हरिश्चन्द्र के श्मशान-कर मांगने पर जब शैव्या ने अपनी असमर्थता प्रकट की, तो इन्होंने उस कर के बदले में अपनी आधी साड़ी फाड़कर देने के लिए विवश किया। इसी समय भगवान् प्रकट हो गए।

———

परिशिष्ट (ग)

शब्दार्थ

टिप्पणी—अंक पद-संख्या के द्योतक हैं।

विनय तथा भक्ति

(२) अविगत—अव्यक्त, निराकार। (४) जान-सिरोमनि—ज्ञानियों में शिरोमणि। (५) हमता—अहन्ता, अहंभाव। अरगानौ—अलग किया, (उनमें) भेद किया। (८) लाहक—लाभ करने वाले, पाने वाले। (११) लागि—के लिए। (२६) बिये—दो, पाप-पुण्य के द्विविध कर्म। मुद्रा-चक्र—चक्रमुद्रा, चक्र आदि विष्णु के आयुध चिह्न जो वैष्णव जन अपने अंगों पर छपवाते हैं। (२८) ठटै—रचे, रचता है। छटै—छँटे, छँटता है, निकलता है, जाना जाता है। (३३) भीनौ—भीग गया, पैवस्त हो गया। (३६) बिहाइ गई—व्यतीत हो गई। खई—क्षय। (३७) बिगूचनि—असमंजस, हैरानी। (४२) सेव—सेवा की। ताँवरौ—चक्कर, घुमनी। चौहटैं—चौहट्टा, चौक, चौमुहानी, वह बाजार जहाँ चारों ओर दूकानें हों। (४३) वित—वित्त, धन। डहकानौ—धोखा खाया। (४६) सागर—सागर। छीलर—तलैया, छिछला, छोटा सा ताल। (४९) जैसें घर बिलाव के मूसा—घर में बिलाव रूपी काल के लिए चूहा रूपी जीव की तरह। (५२) तुस—तुष, भूसा। खूटै—समाप्त होता है, पूरा होता है। झर—झड़ी, लपट, ज्वाला। (५३) नलिनी को सुवटा—कमलिनी का तोता (पक्षी), कमलिनी में बन्द भ्रमर।

गोकुल लीला

(१) दिवि—दिव्य, स्वर्गीय। (२) उपरैना—उपरना, उत्तरीय, दुपट्टा, चादर। निगड़—बेड़ी। ठए—स्थिति हुए। (४) ढोटा—पुत्र, लड़का। (७) हलरावै—इधर-उधर हिलाती-डोलाती है। मल्हावै—चुमकारती है। (८) छीर—दूध, स्तन। भुवंगम—भुजंग, सर्प। (९) जाम—याम, पहर। आइ सर्‌यौ—आयु पूरी हो गई। (१०) बिडरि चले—तितर-बितर होने लगे। दिगपति दिगदंतीनि सकेलत—दिग्पाल दिशाओं के हाथियों को इकट्ठा करते हैं। पेलत—हटाता है। (१२) तोतरैं—तुतलाते हुए। ररै—रटे, बार-बार कहे। अँधवाह—अंधवात, आँधी। (१३) बिज्जु—विद्युत, बिजली।

(१४) हाथ दिखावति—हाथ दिखाती, झाड़-फूंक कराती है। बघनियाँ—बघनख का स्त्रीलिंग अल्पार्थक। (१६) नव-तन-चंद्र-रेख-मधि—नूतन (द्वितीया के) चंद्रमा की रेखा के बीच। रद-छद—होठ। (२५) बपन—वपन, मुंडन। झारि—कुल, सब। मदनारि—शिव जी। त्रिदस-पति-पति—देवताओं के स्वामी, इन्द्र के स्वामी; कृष्ण। (२७) नावत—डालते हैं। लौनी—नौनी, नवनीत, मक्खन। दुरि—छिपकर। (२८) विरुझाने—विरुद्ध हो गए, रूठ गए। (२९) अजिर—आँगन। (३२) खारिक—क्षारक, छुहारा। सफरी—अमरूद। कलेवा—प्रातःकाल का अल्पाहार। (३३) चबाई—चुगली करने वाला, बदनामी करने वाला। सौं—सौंह, सौगंध, शपथ। (३४) हाऊ—हौआ, बच्चों को डराने का कल्पित भयंकर जीव। सवारै—सवेरे ही, शीघ्र ही। (३५) रुठहि—रूठने की क्रिया। ग्वैयाँ—खेल के साथी, सखा। दाउँ दियौ—दाँव या पारी दी। (३६) अबार—अबेर, देर। (३७) बरा—बड़ा, दही बड़ा। टकटौरे—टटोल लिया। अँकोरे—गोद में। (४२) अरगाइ—अलग होकर। कमोरी—मटकी। (४५) कानि—संकोच, लिहाज। भानि—भंजन करके, फोड़कर। छानि—छिपाकर। काढ़त—निकालते हैं। पानि—हाथ (से)। (४६) हरुऐं—हलके से, धीरे-धीरे। अंतर भई—छिप गई। (४७) भावते—भला लगने वाले, प्रिय। गंडूष—चुल्लू। कीकै—कीक, कूकी, चीत्कार। (५०) अचगरी—नटखटपन, उत्पात, शरारत। मुखतन—मुख की ओर। (५१) कानी—कानि; मर्यादा, संकोच, लिहाज। बाट घाट को दानी—रास्ते और घाट पर दान (दधिदान) लेने वाला। (५२) सहियौ—सही-सही, ठीक-ठीक। लहियौ—लखती रहना, देखती रहना। दै धहियौ—चिल्लाकर, चीखकर। (५३) चूनै—चूर्ण। (५४) दगरी—घर, मकान। धगरी—कुलटा। लँगरी—दुष्ट, पाजी। (५५) हरैं-हरैं—धीरे-धीरे, चुपके-चुपके। सेंत की—मुफ्त की, बिना कुछ दिए। टहल—सेवा, गुलामी। गोई—छिपाकर। (५७) अनलहते—व्यर्थ, अनुपयुक्त, अनुचित। (५८) पेला—धावा, चढ़ाई। दधिकाँदौ—जन्माष्टमी के बाद मनाया जाने वाला एक उत्सव जिसमें लोग हल्दी मिला दही एक दूसरे पर छिड़कते हैं, जिससे मानो दही का ही कीचड़ (काँदौ) बन जाता है। (५९) ब्रज-परगन-सिगदार—ब्रज के परगने के सिकदार (अकबर के समय का एक राजस्व विभाग का अधिकारी)। नन्हाई—छोटाई, हेठी। बकस्यौ—बख्शा, छोड़ा। (६०) ख्याल परैं—खेल में पड़े हुए या पड़कर। (६१) अगरौ—अग्र, अधिक। तेरौ—तेरा पुत्र। (६३) लँगरई—दुष्टता, पाजीपन। ढोरै—बहावे, बहाता है। भोरैं—सवेरे ही। (६४) लुढायौ—लुढ़काया। रचे हैं—लाल हो गए हैं। (६८) बरै—जल जाए। जेंवरी—रस्सी। (७१) कह्यौ कबहुँ जिनि पेलौ—कभी अवज्ञा न करो। फेरौ—बदल दो।

वृन्दावन लीला

(२) नोई—दूध दुहते समय गो के पिछले पैरों में बाँधी जाने वाली रस्सी। (५) छाक—दोपहर का भोजन। पत्रावलि—पत्तल, पत्तों का बना हुआ भोजन का आधार-पात्र। फेनि—फेनी या सूतफेनी, सूत के लच्छे की तरह का एक पकवान। पिराक—बड़ी गुझिया। (६) जैया—पैदा किया। (७) गिले—निगल लिए। (८) सच्यौ—इकट्ठा किया, स्थित किया। दच्यौ—दचका खाया, दब गया। स्रमकरि पूरब पुण्य पच्यौ—पूर्व पुण्य (अर्जित करने) में बहुत अधिक श्रम किया। (१०) फर—फल। (११) बरह—बरही, बर्हि, मोर। बिधि-बाहन-भच्छन—ब्रह्मा के वाहन हंस का भोजन, मोती। (१२) थरसि गयौं—(डर से) स्तब्ध हो गया। साऊ—साहु, साधु, सज्जन, सेठ, ऋण देने का व्यापार करने वाला। (१४) पुरी तन—नगरी को, नगर की ओर। (१५) गाढ़े—उच्च स्वर से। (१६) पौढ़ी—लेटी। (१८) कोरा करि—क्रोड या गोद में करके। (२१) नातरु—नहीं तो, अन्यथा। गए बिलाइ—नष्ट (विलयन) हो गए। (२२) झार—झाल, ईर्ष्या, जलन। करबर—विपत्ति, संकट। (२३) उपाउ—उपाय, उद्देश्य। (२४) फेंट—धोती का कमरबन्द। (२५) रारि—विवाद, झगड़ा। (२६) भहराइ—अचानक टूट पड़कर। (२८) जाइ पराई—पलायन कर जा, भाग जा। (३०) चाँपि—दबाकर। साँपि-अवसान—साँप या साँपों के औसान, होश, सुध-बुध। जान—ज्ञान। (३३) घींच—गरदन। (३७) समसरि—समता, सदृशता (के)। काँवरि—बहँगी, कंधे पर बोझ ढोने का एक साधन जो एक लकड़ी के दोनों सिरों पर बड़े-बड़े छींके लटकाकर बनाया जाता है। (४१) तारी—लगातार ध्यान, समाधि। करारी—तीक्ष्ण, तेज। (४२) कनौड़े—उपकृत, कृपा से दबे हुए। नार—नाल, गरदन। सज्जा—शय्या। धर—धड़। (४३) बजाई—बजाकर, डंके की चोट। (४६) भीरें—सहज हीं। (५०) ओर—अन्त, समाप्ति। घामें—घाम में, धूप में। अगिनि सुलाक—आग में गर्म की हुई शलाका। मुरकी—मुंड़ी, हिली-डुली। बेह—वेध, छेद। (५१) अवडेरी—छल, कपट, धोखा। गारौ—गलाओ। केरी—की। अवसेरी—चिंता, हैरानी। न्यारी—अलग, दूर। (५३) गुनि के—गुन कर, सोच-समझ कर। (५४) गहने—आभूषण। (५५) पटंबर—पाटंबर, रेशमी वस्त्र। अडंबर—आडंबर, आच्छादन। (५६) रवन—रमण, विचरण, रमण करने वाला, पति। (५७) तपनि—ताप दाह। (६०) नीप—कदम्ब। (६४) थापैं—दीवार पर लगाई जाने वाली पंजे की छापें। (६५) करि दोहिं—दुहाई करके, सौगंध खाकर। (६६) ठकुराइ—ठकुराई, स्वामित्व, महत्व। अन्नकूट—अन्न का पर्वत या ढेर, दिवाली के दूसरे दिन, प्रतिपदा को मनाया

जाने वाला त्यौहार जिसमें अनेक प्रकार के व्यंजन बनाकर उनका ढेर देवता को अर्पित किया जाता है। बुझाइ—समझाकर। (६७) पिछौरि—पीठ पर से ओढ़ने की चादर। कोर-लोचन—नेत्र की कोर, कटाक्ष। चाहि—देखकर। (६८) मेघवर्त्त—प्रलय के बादलों में से एक। जलवर्त्त—जलावर्त, भँवर, यहाँ एक प्रकार के बादल। खादर—कछार, नीची भूमि, बाँगर का उलटा। कादर—कातर, अधीर, व्याकुल। दादर—दाद, न्याय, इन्साफ, निर्णय। ठादर—झगड़ा, सामना। (७०) बिततानें—व्याकुल हुए। पराने—पलायन किए हुए, भागे हुए। बिहाने—सवेरे, टटके, ताजे। (७१) छोर—सिरा, अंतिम भाग, अंत अंश। (७३) रबकि रबकि—उमंग के साथ, हौंस के साथ। हरबर—हड़बड़ी, उतावली। (७४) निझर्‍यौ—अच्छी तरह झड़ गया। लगारि—क्रम, तार। गुहारि—पुकार, दुहाई। (७५) बोरन—डुबोने के लिए। सिरान्यौ—रुका, समाप्त हुआ। (७७) ओइ—वही। गोइ—छिपाकर। (७८) अमरा—देवतागण। हय गय बसह हंस मृग जावत—घोड़े, हाथी, बैल, हंस आदि यावत मृग। बनराज—सिंह। दिव—स्वर्ग, आकाश। सिव-सुत—गणेश। भावत—अच्छा लगने वाला। गुदरारौ—गुडरारौ—गुडुरी नामक एक चिड़िया। आखु—चूहा। मनवाहन—मन ही जिसका वाहन है, कामदेव। अतुरावत—आतुरता दिखाता हुआ। घेरौ—कुचर्चा, निंदा। नाहिं बचावत—(उनसे) कतराता नहीं, छिपकर नहीं जाता। (८०) दई की घाली—दैव की मारी हुई, एक गाली। सकै बहोरि—लौटा सके, उलटा सके, फेर सके। (८२) जोइ—जाया, पत्नी। (८८) बिसासी—विश्वासघाती। (८९) बकुल—मौलश्री। बदरी—बेर। करवीर—कनेर। (९०) पाहीं—पास, निकट। (९४) डोंगर—टीला, पहाड़ी। (९७) उपायौ—उत्पन्न किया, रचा। (९८) उपज—निश्चित तानों के अतिरिक्त अपनी ओर मिलाई हुई नई तान। (९९) अवगाधि—अगाध। (१००) पूजी—पूर्ण हुई। ख्याल—खेल। (१०२) पति हित साध पुराईं—(कृष्ण के लिए) पति-प्रेम की इच्छा पूरी कर ली। (१०४) लेखत—विचारते हैं। (१०५) लगत—उलझते हो। (१०७) नीकैं—अच्छी तरह। गिंडुरी—गेंडुरी, इंडुरी, रस्सी की बनी हुई घड़ा रखने की कुण्डली। फटकारी—फेंक दी। लँगरी—दुष्टता, पाजीपन। (१०८) धगरी—उपपत्नी, कुलटा। बसवास—बसना, रहना-सहना। (१११) औघट—दुर्गम पथ; जहाँ घाट न हो। (११२) ख्याला—खेल। (११३) कत—क्यों। नौसरि—नौ लड़ों (सूक) का हार। तरिकौ—ताटंक, तरकी तरौना, कर्णफूल। औढ़नहार कमरि कौ—कमरी (कम्बल) का ओढ़ने वाला। (११४) जोवन की जोरी—यौवन के जोर वाली। (११५) गहनाई—घहराकर, घनाघन बजा कर। (११६) परैयै—पलायन किया जाय, भागा जाय। (११७) उघटति हो—बुरा-

भला कहती हो। जगाती—कर (जकात) उगाहने वाला। (११८) हजूर बुलावहु—हुजूर में, राजा या हाकिम के सामने, दरबार या कचहरी बुलाओ। (११९) उपखान—उपाख्यान, कथा। मुँह न दीजियै—मुँह न लगाना चाहिए। मूँड़—मूँड, सर। छाँछहिं—छाछ को, मट्ठे को। (१२३) पूरत—बजाते हो। (१२४) हमहिं और—हमसे दूसरा, हमारे अतिरिक्त। टोना—जादू, तन्त्र-मन्त्र। (१२५) सद—सद्य, ताजा। लवनी—लोनी, नवनीत, मक्खन। (१२६) खिरनि—क्षीरणी, दूध गर्म करने की विशेष प्रकार की अंगीठी। तायौ—तपाया, गर्म किया। जावन—जामन, दूध जमाने के लिए डाला जाने वाला दही या मट्ठा आदि। नायौ—डाला। समुदायौ—मिलाया, रखा। (१२८) अनुहारि—समता करने वाला; उपमान। प्रजंत—पर्यन्त। मंड—रचना, शोभा। (१३४) खुमारि—खुमारी, नशे के उतार की अवस्था, शिथिलता। (१३५) तक्र—मट्ठा। (१३७) रिसहाई—क्रुद्ध, कुपित। (१३८) वाइ—वात रोग। (१३९) क्यौंऽव—अब कैसे। निरवारि—सुलझाना, पृथक् करना। (१४१) बिराने—बेगाने, पराए, दूसरे। निसान—नगाड़ा। (१४२) चिकनियाँ—छैला। भाऐं—समझ में, बुद्धि के अनुसार। (१४३) अटक—अटकाव, रोक। (१४४) बैहौं—बोऊँगी। (१४५) पचिहारि—अधिक परिश्रम से हार कर। (१४६) अधमुख—अधोमुख। (१४७) फुरति—स्फुरित होती, निकलती। (१४८) तड़ितनि सावन—सावन की बिजलियों को। (१४९) बिबि—दो। (१५१) बिवरनि—विवरों में, बिलों में। (१५२) बरन-कारी—काले वर्ण वाली। कल रासि—कला-राशि। जिहिं हेत—जिसमें प्रेम है। (१५३) फनिंद—फणीन्द्र, शेषनाग। दरसति—देखती हैं। (१५४) जलसुत—कमल। बलाक—बक, बगुला। कौस्तुभ मनि—समुद्र से निकला हुआ एक रत्न जिसे विष्णु वक्षस्थल पर धारण करते हैं। खोरि—त्रिपुंड, तिलक। (१५५) सकै निरवारि—निर्णय कर सके। (१५६) पर-वेदन—पर-वेदना, दूसरे का दुःख। (१५९) ओछैं कर—नीच के हाथ। (१६०) गोहन—साथ, पास। गुड़ी—पतंग। (१६१) अंत—अनत, अन्यत्र। मटकहीं—हिलते हैं, हटते हैं। (१६२) बाँटे—बाँट, हिस्सा। धरिहौं—धरा लूँगी। (१६८) पतियाति—विश्वास करती हैं, भरोसा करती हैं। (१६९) हटकी—निषेध किया, रोका। तरकि तरकि—तड़क कर, गरज गरज कर। लेनी—प्राप्त, उद्देश्य।

राधाकृष्ण

(१) खोरी—सँकरी गली। भौंरा—बालकों का एक प्रकार का लट्टू। चकडोरी—चकई या लट्टू की डोर। फरिया—लड़कियों के पहनने का छोटा सा लहँगा, घाघरी। ठगोरी—जादू, मोहनी। (२) पौरी—द्वार, ड्योढ़ी। भुरइ—

फुसलाकर। (४) दर—द्वार। बेर—बेला, समय, देर। खरिक—पशुओं का बाड़ा। (६) उपरफट—ऊपर से फटी-फटी, केवल दिखाने के लिये झगड़े की। (८) कोख—कुक्षि, गर्भ। अवतारो—जन्म दिया। छिनारि—छिनाल, कुलटा। ढीठो—धृष्ठता। जोटी—जोड़ी। (९) सीमंत—सर की माँग। निरुवारति—सुलझाती है। पारि—डालकर, निकालकर। (१०) सविता—सविता, सूर्य देव। (११) कारैं—काले साँप ने। गुनी—गुणी, जन्त्र-मन्त्र जानने वाला। गुनराई—गुणराज, गुणी। (१२) गारुड़ी—गारुड़-मन्त्र जानने वाला, साँप के विष को मन्त्र से उतारने वाला। (१३) ज्याई—जीवित कर दिया। (१५ भाइ—भाव। (१६) गाड़ू—गाडूर, मन्त्र, जादू। (१८) चैरु—चर्चा। (१९) सबनि—सब को। पछारि—पीछे करके। चवाव—बदनामी, कुचर्चा। पारिहौं—पालन करूँगी। (२०) चैरा—चवाव, कुचर्चा। जावै—पैदा कर। (२१) सुरत—स्मृति। हिरानी—खो गई, भूल गई। (२७) पुरई—पूर्ण की। समाधा—समाधि। दाधा—दग्ध—दग्धता, ताप। (२९) घातैं—चालाकी, कपटपूर्ण बातें। जोवन—युवा। भोरे—भोले, बालक। सति-भाउ—सच्चे भाव से। कही—कह दे, बता दे। (३०)लीको—लकीर। (३१) चैर—कुचर्चा। (३२) भरमाई—भ्रम में पड़ गई। (३३) बायु बहानी—हवा बह गई, चर्चा चलने लगी। चाहतिं—देखती हैं। (३६) बहि जाइ—मर जाय। अनखौहीं—अनख की, क्रोध की। (३७) बारी—बच्ची, छोटी। (३९) अन्तर के जामी—अन्तर्यामी। कानि—मर्यादा, लज्जा। (४०) गँडूषनि—चुल्लुओं से। (४१) छुद्रावलि—करधनी। (४२) मिति—सीमा, मर्यादा। करार—कगार, किनारा। फेरिहू—फिरना भी, लौटाना भी। (४५) नैसे—अनिष्ट, बुरे। रति-पति-सै—सैकड़ों कामदेव। (४६) निमिष—पलक। (४७) कोक कलानि—काम-कलाओं को। (४९) बीच—अन्तर। बरनारि—वर-वधू, पुरुष-नारी। (५१) अपबस—आत्मवश, अपने वश। ठाऊँ—स्थिर। (५२) माँचो—माँजी, निमज्जित। बाँचो—बची। (५५) बिनानी—विज्ञानी। (५६) खरे-तेज, जिद्दी। (५८) उपरैना—उत्तरीय, दुपट्टा, चादर। (५९) रतान्यो—रत हो गया, अनुरक्त हो गया। (६०) अँजोरी—अँजोर (अंजुलि में भर) कर, छीन-झपट कर। (६१) भैनी—भगिनी, बहन। नई—डाल दी गई, गिर गई, बहा दी गई। (६२) बाकी—बाकी, शेष। लीक खाँची—प्रतिज्ञापूर्वक। (६३) चोटी-पोटी—चुट-पुट, इधर-उधर की अथवा चिकनी-चुपड़ी। हठ ओटी हठपूर्वक छिपाव। (६४) जोहै—जोहता है, देखता है। (६५) खागी—अड़ गई, चुभ गई, पैठ गई। (६७) नाऊँ धरैहौ—नाम धराओ, बदनामी कराओ। (६९) सुन्दर घन—घने सुन्दर, प्रगाढ़ सुन्दर, अति सुन्दर। (७१) अंतर भाइ—अंतर का भाव, हृदय का प्रेम। (७२) जियौ—जी भी, प्राण भी।

(७३) घिरवै—धमकाता है, डराता है। (७४) दोचन—दुविधा, असमंजस। खोचन—कोंचने या चुभाने की क्रिया। रोचन - लाल, रोचक, प्रिय। (७५) पेला—आक्रमण। सरिहौं—पूराकर डालूंगी, काम बनाऊँगी। (७७) ककोरत—कुरेदता है। (७९) मोतिसरी—मोतियों की माला (सूक)। सवारी—सवेरे, जल्दी। (८०) चौकी—गले का एक चौकोर आकार का आभूषण। हमेल—हमेल, चाँदी-सोने के सिक्कों या मोहरों का गले में पहनने का हार। नैहौं—डालूंगी। लड़बौरी—प्यार (लाड़) में बेसुध (बावली)। नातरु—नहीं तो, अन्यथा। (८२) बतानी—उसने बातें कीं। अंबदल-मौर—आम के (कोमल) पत्ते और बौर (मुकुल)। परखति—प्रतीक्षा करती। आगरि—अग्र, कुशल, चतुर, बढ़कर। (८४) कंबर—कंबल। कुसुंभी—कुसुम (लाल या पीले फूल) के रंग का। मेघ-आडंबर—मेघाडंबर, बादलों का छा जाना। तुंबर—तुम्बूर, एक गंधर्व। संबर—संबल, पाथेय, मार्ग का भोजन। (८६) लवैया—(गाय का) लाने वाला। समोइ—(गर्म और ठंडा पानी) मिलाकर। (८७) काज—कारण। गाँठि-आँचर—अंचल की गाँठ। (८८) अवसेर—चिंता। रूसिकै—रुष्ट होकर। वहि जाइ—नष्ट हो जाय। (८९) पोच—नीच (कर्म)। (९१) करज—उँगली। दांवरि—रस्सी। (९२) उनयौ—उन्नत हुआ, उठा। (९३) सिखी—शिखी, मोर। सीखंड—शिखंड, चोटी, काकपक्ष। पछ—पक्ष, पंख। दवन—दमन, दमन करने वाले। (९६) बिलछ लक्ष्य करके, ताड़-कर। (९८) चरचि लियौ—भांप लिया, अनुमान कर लिया। बहु-नायक—बहुत सी नायिकाओं के नायक। तियौ—स्त्रियां। (९९) बटपार—बटमार, रास्ते में मारकर लूटने वाला ठग, लुटेरा। सहर—शहर, नगर। (१००) बहुरो - फिर, दुबारा। उनहिं—उन्होंने ही। (१०१) दरसाऊँ—दर्शन। (१०२) मदन-प्रजारी—काम द्वारा जलाई हुई। (१०३) परनि—स्वभाव, टेव। रही परी—पड़ी रही। (१०४) आरज पंथ—आर्य पंथ, श्रेष्ठ मार्ग, मर्यादा मार्ग। जउ—जब, यद्यपि। स्वारथी—स्वार्थी। (१०६) हरि—सिंह, कटि। सरवर—सरोवर, नाभि देश। गिरिवर—पर्वत, पयोधर। कपोत—कबूतर, ग्रीवा। अमृतफल—अमरूद (एक फल), चिबुक। पुहुप—पुष्प, चिबुक का तिल। पल्लव—पत्ते, अधरोष्ठ। पिक—कोकिल, वाणी। मृगमद—कस्तूरी, बेंदी। काग—कौआ, काकपक्ष, बालों के पट्टे। धनुष—भौंहें। चंद्रमा—भाल। मनिधर नाग—शीश फूल के साथ वेणी। (१०७) डहडह—लहलहे, हरेभरे। (१०९) संचि संचित करके। सरधा—मधुमक्खी। (११३) बतानी—बतलाई, दिखलाई। बिलोनी—बिगड़ी, अस्तव्यस्त। (११४) औरै—और में ही, अन्यत्र ही। (११५) गौ—घात, ढंग। (११८) उबारो—उबरने का भाव, निकास, सुलझाव। (११९) पराई—दूसरे को। (१२०) रवनि—

रमणी। (१२१) अरु - और, अन्य। मो तन—मेरी ओर। (१२२) भावती—भाने वाली, प्रिय। (१२४) सवाई—सवाया, और अधिक। (१२५) संभ्रम—मिलने की व्याकुलता, व्यग्रता, घबराहट, उतावली। क्वासि क्वासि—तू कहाँ है ? तू कहाँ है ? विसिष—विशिख, बाण। पंचानन—सिंह। साखामृग रिपु—(?)। बज्र के पिंजर—(?)। (१२७) पूरैं—पूरी होती हैं, बराबर होती हैं। झूरैं—झूरती हैं, सूखती हैं, दुखी होती हैं। (१२८) नवतन—नूतन। (१२९) सौंहैं—सौगंधें, कसमें। (१३०) चाँड़े—चंड, चंट, प्रबल लालसा वाले। (१३१) साँकर—शृंखला, जंजीर। सारी—लगाई। संधिहिं संधि—एक एक संधि, जोड़ या छेद। सियौ—सिया, बन्द किया। बियौ—दूसरा। फिरि—लौटकर। (१३४) अरस परस—मिलजुलकर। खंडित बचन—पूरी न की जाने वाली बात। उदोत—प्रकाश, उजाला, प्रातः काल। (१३६) गोवत—छिपाते हैं। (१३८) झहरानी—झल्लाई, झुँझलाई। (१३९) चिहुर—चिकुर, केश। सुहथ—सुन्दर हाथ (से)। (१४०) तारी—लगातार ध्यान, समाधि। (१४१) सैनि—संकेत, इशारा। (१४३) अँजुरी—अँजुलि। नवसै—इतर, दूसरी। (१४५) सारि—सजाकर, बनाकर। (१४७) औरासी—और ही जैसे, विलक्षण। सकि ताटंक फँदाते—ताटंकों को लाँघने में शंकित होकर। (१५१) समर-सर—स्मर-शर, काम-बाण। (१५३) हित-वित—प्रेम का धन। (१५५) कहियाँ—के यहाँ, के पास। (१५६) झूमक सारी—झब्बेदार (चाँदी सोने के मोतियों के गुच्छे वाली) साड़ी। जराई कौ—जड़ावदार, मोती आदि से जड़ा हुआ। तृन तोरैं—नजर लग जाने के डर से शुभ कामना के लिए टोटके के रूप के तिनका तोड़ते हैं। (१५९) खंडिताऽभिसार—खंडिता नायिका का (जिससे मिलने का बचन देकर भी नायक मिला नहीं) संकेत स्थान पर जाना। (१६०) रबाव—सारंगी जैसा एक बाजा। अरगज—अंगराज, सुगंधित द्रव्यों का लेप। बसीठि—दूती। (१६१) चोवा—एक प्रकार का इत्र। पैयाँ लाग—चरणों की बंदना कर ले। (१६२) डफ—चंग, खंजरी, खाल मँढ़ा एक बाजा। रुंज—एक बाजा। महुअरि—मुँह से बजाने वाला तूँबी का एक बाजा। कोद—ओर, तरफ। भाई—रुचि की। अचकाइ—अचानक। नाइ—डालकर। भुरकतिं—बुरकती हैं, छिड़कती हैं। (१६३) सचु पावैं—सुख पाएँ, प्रसन्न हों। कह्यौ—कहा हुआ, आज्ञा। फगुआ—फाग खेलने के बाद दिया गया उपहार। (१६४) डोल—हिंडोला, झूला। निचोल—स्त्रियों की ओढ़नी। झकझोल—झोंका या झटका (देकर)।

मथुरागमन

(१) दे राखे—लगा रखे। करषत रहत—करकते या चुभते रहते हैं अथवा खींचते या खिंचाव पैदा करते हैं। मोज—हर्ष, आनंद। (४) बिलखि—

दुखी, रुँआसे, संकुचित। काढ़ीं—निकाली, तैयार की, प्रस्तुत की। (५) भाँति—रीति, दशा। पै—पय, दूध। (६) पारे—पाले। जुहारे—बंदगी की, प्रणाम किया। (८) बचन अनागत—भावी या होनहार बात। पुरइनि—कमल। (९) प्रतिपारि—प्रतिपालन करके, पाल-पोस कर। (१०) लुटाइ—लोटती है। अवधि—समय की सीमा, नियत समय। ठगौरी—टोना, जादू। लाइ—लगाकर, डालकर। (११) दव दाढ़ी—दावाग्नि द्वारा जलाई हुई। साढ़ी—मलाई। (१२) कछुवै—कुछ भी। मोचत—निकालते हैं, बहाते हैं। दगा—दगा, धोखा। (१३) इते मान—इस परिमाण में, इतनी अधिक। (१५) कनिया—गोद। बहुरो—फिर भी। ज्वैहौं—देखूंगी। (१७) जालरंध्र—जालीदार झरोखे। चित्रे—चित्रित किए हुए। उर्ग—उरग, साँप। (१८) नीर—पानी, आब, आभा। फेफरी—फेना। (१९) ठान—समूह। (२०) हँकारे—ललकारे, बुलाए। (२२) आपु सँभारी—अपने को संभाल। कुम्भ—हाथी के सिर के दोनों ओर का उभरा हुआ भाग। (२३) करष्यौ—उत्तेजित हुआ, ताव में आया। उठे हँकारि—ललकार उठे हैं। खँभारि—कंपित करके। कँबुक—कंबुक, हाथी। वारि—निछावर करके, सिर के चारों ओर घुमाकर। मटक्यौ—हिला-डुला। उपारि—उखाड़कर। दुरद—द्विरद, हाथी। (२४) पसुपति—पशुपति, गोप। (२५) खोज हीं परे हैं—पीछे ही पड़े हैं। नैसी—अनिष्ट, बुरी। (२७) अवसान—औसान, होश-हवास। खसावत—खसोटते हुए, घसीटते हुए। (२८) देवै—देवकी। (३०) बसुद्यो—वसुदेव (ने)। ज्यौनारि—भोज। (३१) नाख्यौ—नष्ट किया। हम तैं—अहंभाव से। (३२) भेदभेदा—अंतर। चरचि—लगाकर, लेप करके। (३४) ओर पर्‌यौ है—अंत हो गया है। सिराइ—समाप्त होते हैं। (३५) घोष—अहीरों का गांव। (३६) ढीठौ—धृष्टता। कत—क्यों। भरआइ—भर आया। (३७) बिदरन चहत—विदीर्ण होना चाहता है। परमोधि—प्रबोध देकर, समझाकर। (३८) जिते मान—जिस परिमाण की, जितनी अधिक। (३९) बिवि—दोनों। (४१) खेरे—गांव में। घेरे—घेरने से। (४३) जरी जात—जली जाती हूँ। (४४) दरकि न गई—फट न गई। गलित—गिरा हुआ, मुर्झाया हुआ। (४५) दोहन—दोहनी, दूध दुहने का पात्र। गोहन—साथ। जोहन—देखना। छोहन—क्षोभों से, दुःखों से। (४६) मलै—मलय, मलयागिरि का चंदन। अरधंग—अर्धाङ्गिनी। (४७) बिसाही—मोल ले ली, खरीद ली। सिहात—मुग्ध होता है। (४९) टेकि—टेक लगाकर, सहारा लेकर। (५१) कराई—कालापन। (५२) कंद—गूदेददार जड़, मीठी दूब। (५३) बिहरि—विदीर्ण होकर, फटकर। धाई—धात्री, दूध पिलाने वाली स्त्री। (५६) न्हातहु—स्नान करने में भी। जनि बार खसे—बाल न टूटे, बाल बाँका न हो। (५७) रुंधि—रूँध कर,

अवरुद्ध करके, रोककर। नाट—नाटक, नाच, नकल। हते—हत किए, मारे। हेट—मेल, प्रेम। (५८) उबटनो—उद्वर्तन, शरीर पर मलने का तेल, सरसों, चिरौंजी आदि का लेप। अलक लड़ैतो—लाड़ला, दुलारा। (५९) नेति—नेती, रई की रस्सी। उरहन—उलाहना, उपालंभ, शिकायत। (६०) अर्ध पले—आधे पल भी। पहिल करी—(कोई काम) सबसे पहले किया। बलयनि—वलयों ने, चूड़ियों या कंगनों ने। बिमले—विमल वस्तुएँ, भली वस्तुएँ। असलेहु—असह्य, बिना छेद किए हुए हो। साल सले—छेद हो गए। (६१) भीति—दीवार। (६२) चेप—लासा, चिपकना पदार्थ। कांपा—बांस की तीली जिस पर लासा लगा दिया जाता है और जब उस पर पक्षी बैठता है तो उसी में चिपक कर रह जाता है। फँदवारि—जाल, पाश। सार—देख-भाल, पालन-पोषण। (६३) बारक—बारेक, एक बार। (६४) जारी—जली हुई। प्रजंक—पर्यंक, शय्या। चूर—चूर्ण। बिगलति—शिथिल, बिखरे हुए। काजल—काली। सारी—साड़ी, स्त्रियों की धोती। (६५) परेखौ—परीक्षा, प्रतीति, पश्चाताप, खेद। बोल—बात। सगाई—सगापन, संबंध। (६६) तरजनि—चमकना, चंचलतादि। देत दव लाई—दावाग्नि लगा देते हैं। (६९) असन—अशन, भोजन। (७०) घालि—डालकर। अहीरी—एक राग का नाम। बदि गए—बतला गए, प्रतिज्ञा कर गए। भराई—पूरी हो गई। (७१) सिंगीं—श्रृंगी, सींग का बाजा। मुद्रा—गोरखपंथी जोगियों का कर्णाभूषण। खप्पर—खोपड़ी का पात्र, उस प्रकार का कोई भिक्षा पात्र। कंथा—गुदड़ी, कथरी। (७२) देत लुटाइ—लुढ़का देते। दावरि—दाँवरी, दाम, रस्सी। उघारिक कै—खोलकर। जावक—महावर, स्त्रियों द्वारा पैरों में लगाया जाने वाला लाल रंग। बसन—वसन, वस्त्र। हठिहैं—हठपूर्वक निषेध करेंगी। करन—के लिए। (७३) कोसौं—कोसूं, शाप दूं, बुरा भला कहूँ, बुरा मानूं। उर आने—हृदय में धारण की, महसूस की। उनये—उठे। (७४) साधौ—साध, लालसा। पहुनै हु—पाहूने ही, महमान (के रूप में) ही। बाधौ—बाधा (पलकों के मूंदने के कारण)। लाधौ—लब्ध किया, लाभ किया, पाया। (७७) झखतिं—खीझतीं, दुखी होतीं। पँखियाँ—पंख। बिसूरतिं—मन में दुखी होती हैं, खेदपूर्वक स्मरण करती हैं। भखियाँ—भक्षण कर लीं, खा लीं। काट किनारे—(अन्तर की धार काटकर किनारे, पहुँच कर)। नखियाँ—लाघने से, लांघकर। (७८) जई—बतिया, फल की प्रारम्भिक अवस्था जिसमें फूल भी लगा रहता है। (७९) बोल—बातें, बदनामी, कुचर्चा। (८०) कौंकिर—कंकर, हीरे की कनी, कांच की रेत। खै—खाकर। (८२) बोल—बातें, शब्द। पेले—परले, दूसरे। (८३) किलकी—किलकारी मारी, हर्षित हुई। तिलकी—तिल भर, लेश मात्र। हिलकी—रोने में सिसकी या हिचकी बंध जाना।

बाति—बाती, बत्ती। मिलकी—जल गई। तचकि—तप्त होकर। पिलकी—पीला हो गया, पिलक गया, लटकने या झूलने लगा। सिल—शिला, पत्थर, जड़। (८४) उबति—उदय होती है। जुन्हैया—चन्द्रमा। मुरि मुरि—मुड़-मुड़ कर, शरीर को ऐंठ-ऐंठ कर। (८५) जम—यम। (८६) घरनाउँ—घटनाव, घन्नई-घड़ों और बांस की खपच्चियों से बनाई हुई छोटी सी नाव। राम दुहाई—एक प्रकार की सौगंध। (८७) अलि सुत—भ्रमर। जल सुत—कमल। गह्यो—पकड़ा गया, बंदी हो गया। सारंग—मृग, हिरन। (८८) परेवा—कबूतर। (८९) लट्टू भई—लट्टू हो गईं, मोहित हो गई तथा लट्टू नाम का एक खिलौना बन गई जिसे डोरा लपेटकर और फेंककर नचाते हैं। सियराई—शीतल होकर। (९०) लाए—जगाए। बीर—भाई। बटाऊ—बटोही, पथिक। आपुन—अपने, आत्मीय। (९२) छायौ—छाया गया, छप्पर डाला गया। (९३) सोध—खोज, खबर। प्रमोधे—प्रबोध दे दिया, समझा-बुझा दिया। खूटी—समाप्त हो गई (सूख कर)। (९४) कोपठए—पर, कोप किया अथवा को पठए, को भेजे। ग्रीवारंध्र—पपीहा, चातक (?) (९६) सेषनि—शेषों ने, सांपों ने। बगनि—बकों ने। सुदेसनि—उपयुक्त स्थानों पर (यहाँ 'सुवेसनि' पाठ भी है)। (९७) आरि—आग्रह। (९८) बदत—आदर देता है, गिनता है। (१००) दाप—प्रेम-विरह में। तारू जीभ न लावत—जीभ तालू में नहीं लगाता, लगातार रटता है, बोलि—बोलकर तथा बुलाकर। (१०१) उपटारि—उत्पाटन करके, उठाकर, हटा कर। बिसाहतु—खरीदता है। सयानौ—चतुरतापूर्ण, बुद्धिमानी की। (१०२) तमिता—रात्रिपन, अंधकार। हई—हरण की, समाप्त की या समाप्त हुई। कई—काई, मलिनता। (१०३) सचि—संचित करके। अहिमयंक मकरंद कंज अलि, दाहक गरल जिवाए—हे अलि (सखी) अहि रूपी मयंक ने कंज (कमुदिनी) के मकरंद रूपी दाहक विष को जीवित कर दिया है। (१०५) तमचुर—मुर्गा। बलाहक—बादल। पन्नग—शेषनाग। (१०७) बांटि—बटकर, पीसकर। (१०८) छार—शीतलता देने वाली सुगंधित छाल (?)। हार—हाड़। (११०) जुड़ाई—सर्दी, कँपकँपी। (१११) गुसा—गुस्सा, क्रोध। (११२) खूंटति—समाप्त होती है। (११३) तरफत—तड़पते हुए। (११४) ठगोरी मेली—जादू डाल दिया। बैसी—बैठी। (११५) रह्यो न परि है—रहा न जायगा, जीवित नहीं रहेगा।

उद्धव-संदेश

(२) और—अन्य। डौर—डौल, उपाय। बिरस—रसहीन, नीरस, उदासीन, विरक्त। (३) लिखी—प्रारब्ध, होनहार। बदत—स्वीकार करते हैं। बल-भ्रात—

बलराम के भाई, कृष्ण। (५) थापत—स्थापित करते हैं। (७) मिथ्या जात—मिथ्या से उत्पन्न। (९) भासत—लीन। आसत—अस्तित्व। (१०) अप—अपनी। आन—अन्य। (११) कैहौं—कहूँगा। लैहौं—लूँगा, करूँगा। गैहौं—गहूँगा, पकड़ूँगा। (१२) पौन—पवन, प्राणायाम। (१३) पेलि—पेलकर, धक्का देकर। छोह—दया। (१५) दिढ़ाइ—दृढ़ कर (लेते हैं)। (१७) साझे भाग—भाग्य में साझा। निनारी—भिन्न, न्यारी। करुइ—कड़वी। तोमरी—तोमड़ी, तूवी, लौकी। जंत्री—यंत्री, बाजा बजाने वाला। (१८) मूँड़ करि लीन्हे—सर चढ़ा लिया, ढीठ कर दिया। (१९) जावत—यावत, जितने, सब। (२०) मेरी कोती—मेरी ओर से। भेंट्यौ—भेंटियो, भेंटना। मेट्यौ—मेटियो, मेटना। निनारी—न्यारी, दूर। (२१) बिलग—अलगाव, अलग समझने का भाव, बुरा रंज। गुन—भलाई, उपकार। (२२) नोई—वह रस्सी जो गाय दुहते समय उसकी टाँगों में बाँधी जाती है। बिषान—विषाण, सींग, यहाँ सींग का बाजा। चापी—चक्खी। धैया—फेनेदार धारोष्ण दूध, दूध में फेना निकालने की क्रिया। सोधौ—शोध भी, खोज-खबर भी। (२३) गहरु—देर, विलम्ब। पलनाइ—घोड़े पर जीन कसवाकर। बचाइ—छोड़कर। (२४) औचकहीं—अचानक ही। (२५) लगि-लगि—पास-पास। सगुनावै—(शुभ) शकुन बताता है। (२६) ओदन—चावल, दाल। दोनौ—दोना, पत्तों का बना कटोरा जैसा पात्र। पाग—पगड़ी। तैं—तेरी। सुहाग—सौभाग्य। (२७) बीच—भेद, दूरी, अलगाव। (२८) चौंकरत—चौंकते हैं। मात—अमाता है, समाता है। (३१) ढरी—ढली, बही या खिंची। आइ तुलाने—आ पहुँचे। सुनी परी—सुन पड़ा, सुनाई दिया। (३२) सुलज—लज्जाशील, मर्यादाशील। चहूँधा—चारों ओर। (३३) अब कें—अब की बार। (३४) मति—न। धैया—फेनेदार धारोष्ण दूध। (३५) कीबै—करने के लिए। दीबै—दे देंगे। (३६) मह्यौ—मही, मट्ठा। हियं की—हृदय की व्यथा। (३७) सकसकात—बार-बार शंकित होता है। धकधकात—निरंतर धड़कता है। अकबकात—चकित होते हैं, भौचक्के रह जाते हैं। गाढ़े—गम्भीर। (३८) जोग—संदेश (उदाहरणार्थ सिद्धि श्री जोग लिखी मथुरा से)। हटकि दीन्हौ—रोक दिया। लोग—लोगों को, पुरुषों को। (३९) चौंर—चँवर। (४१) तातौ—तप्त, गर्म। रातौ—अनुरक्त। संघाती—साथी, संगी। (४३) अविगत—अव्यक्त। दाप—दर्प, घमंड। (४४) काँती—काँता, कटारी। थाती—धरोहर। (४५) सुजाती—ऊंची जाति के। (४७) पहिराए हौ—तैयारी करके भेजे गए हो। सयान—चतुराई। (४८) सरक—मदिरा, मदिरा पीना (देखिए 'अमरकोश'), नशा, खुमारी। अपरस—अस्पृश्य, न छूने योग्य, न छुआ जा सकने योग्य, निर्गुण, बुरा रस, मदिरा। उघारे—नंगा, निर्लज्ज, उघारता है। कारे—काले,

लम्पट। (४९) बारि—वाड़ी में, उपवन में। (५०) चलावै —बात चलावे। (५१) पवन—प्राणायाम। धाम—स्थल। (५४) त्रिदोष—वात, पित्त, कफ, तीनों का समन्वय, सन्निपात जिसमें रोगी बकने लगता है। जक—झक, धुन, रट। सवारैं—सवेरे, शीघ्र ही। मधुरिपु—मधु दैत्य को मारने वाले, कृष्ण। ज्वारि—ज्वार, एक निकृष्ट अन्न। (५५) हम लागीं—हमें लगीं, हमें देखा। सुख-रागी—सुख से रँग गया, सुख में लीन हो गया। (५६) छपद पसुहिं—छः पैरों वाले पशु को, षट्पद को। (५७) देह पय—अपने शरीर का दूध। ही—थी। चायौ—चाह, इच्छा। प्रगट ही लाग्यौ—प्रत्यक्ष ही आगे आ गया। (५८) चालै—चलावे, कह। (५९) पानी की चुपरी—घी की चुपड़ी नहीं, मिथ्या, धोखा। दोहु—द्विविधा, द्वैतभाव। सुवस्ती—नगर। खोह—कंदरा। (६०) गुन—रस्सी, गुण या सगुणता। चकडोर—डोर में घूमने वाला लट्टू। ओर—इति, अंत। पैंड़—रास्ता। ऊबट—उत = वर्त्म, कुराह, ऊबड़-खाबड़ रास्ता। फिरि—घूमने या नाचने के बाद। (६१) खुभी—कान में पहनने का एक भूषण, लौंग। वेसरि—नाक का एक भूषण। पटिया पारी—बालों को माँग निकालकर सँवारना। लावै—लगावे। (६२) लैहौं करवट कासी—काशी में जाकर शिवाराधन में सर पर आरा चलवाऊँगी। (६५) मीनता—मछली का भाव, बिना जल के जीवित न रहने का भाव। (६७) अपजोग—बुरा योग, वह योगाराधन जिसका उद्धव संदेश लाए हैं तथा कुब्जा के साथ कृष्ण का योग (संयोग)। (६९) पांड़े—पंडित। टांड़े—व्यापारिक सामान से लदे हुए बैल। रांड़े—राड़ें, वेश्याएँ, कुलटाएँ। खांड़ें—खड्ग, तलवारें। गांड़े—गन्ने। मांड़े—साने, तैयार किए। झाला—कटुता, बकवास। चोर—चार आदमी, पंच, 'चोर' पाठ भी है। डांड़े—दंडित किया या दंडित किए। (७०) दारु अगिनि—लकड़ी में अप्रकट रूप में व्याप्त अग्नि। किहिं पाहीं—किसके पास है? किसने पाया? ऐसैं करि—इस प्रकार। पाहीं—पाई, एक काला कीड़ा जो फसल को नष्ट कर देता है। (७१) अनबोले—मौन, चुप। भाऐं—भाव के अनुसार, समझ में। करवट लैहैं कासी—कासी में आरे (करपत्र) से सर चिरवाकर प्राण दे देंगे। मसान जगायौ—श्मशान में बैठ कर मृत व्यक्ति या प्रेत की सिद्धि की। (७२) बाढ़े—बढ़ बढ़कर बोलने वाले, शेखी मारने वाले। रावरे—आप। अनब्यौंगे—अनुभवहीन (ब्योंग - चमड़ा छीलने का एक हथियार होता है, अतः ब्योंगना—छीलना, इस प्रकार अनब्योंगे—जीवन का संघर्ष और पीड़ा सहकर अनुभवी नहीं हुए)। थाही—जिसकी थाह ली जा चुकी है, उथली,

जिसे पैदल पार किया जा सकता है। (७३) बनाउ—बनावट, आडम्बर। सति—सत्य। (७४) अरैगौ—अड़ेगा, सामना करेगा। सिंगी—सींग का बाजा। सेल्ही—योगियों के गले की माला। ररैगो—ररेगा, बार बार वही बात करेगा। बादिहिं—व्यर्थ ही। (७५) बीच—अन्तर। (७६) चोप—इच्छा, रुचि, उमंग। परेखौ—पश्चात्ताप, प्रतीति। पीवत मामी—इन्कार करते हैं, निषेध करते हैं। (७७) गाँसी—छल-छन्द। (७८) तातो—गर्म। (७९) खवासी—चाकरी। पासी—पाश, बन्धन। (८०) बिरमावत—बिलमते हैं, विश्राम करते हैं। (८१) परेखौ—पश्चात्ताप, सोच। (८२) दाख—द्राक्षा, अंगूर। (८३) मधुपाती—मधु में गिरने वाले। न होहिं स्याम के मुख की—श्याम की कही हुई बातें न होंगी। (८४) मुँड़िया—मुड़िया, सर मुँड़ाए हुए संन्यासी। (८६) बिदूषी—सताई हुई। (८७) त्रिगुन मिथ्या भेष—त्रिगुणात्मक सृष्टि का रूप असत्य है। डारहु नाखि—उल्लंघन कर डालो, अतिक्रमण कर डालो। पंच—पंच भूत। बरन अबरन—वर्ण अथवा अवर्ण, रंग और रंग-हीन। (८८) आवत बचन न सूधौ—(अन्यथा) मुँह में सीधी बात नहीं आती, गाली आती है। काँची—कच्ची। गढ़ि छोलि—झूठी-सच्ची बना-सँवार कर। (९०) पजरे—जले हुए। अवराधन पौन—पवन आराधन, प्राणायाम। पोत—अत्यन्त छोटे मोती। सूतरी—सुतली में। पोहत—पिरोते हुए। (९२) जित कित—जहाँ-कहीं, इधर उधर। खीस—नष्ट करके। (९४) नातरु—नहीं तो, अन्यथा। (९७) अछत—रहते हुए। (९८) अँकोर—घूस, रिश्वत। (९९) साखा स्रुति—श्रुति की शाखाएँ, वेद संहिताओं के पाठ। (१००) अन्तर—हृदय। चटसार—पाठशाला, समूह। (१०१) बिलग—अलगाव, बुरा, रंज। ओबरि—कोठरी। (१०२) बिरह प्रजरनि संग—बिरह की ज्वालाओं से। कर लाए—हाथ लगाए हुए, छुए हुए। (१०३) गिरि अंचल न धरी—अंचल रूपी गिरि (गोवर्धन) को उन्होंने अब धारण नहीं किया। (१०४) टकटोइ—टटोल-टटोलकर। पोइ—प्रीति, पिराई हुई, धँसी हुई। (१०५) सगाई—सगोत्रता, सगापन (वैवाहिक सम्बन्ध की वचन-बद्धता)। पराई—पलायन करके, भाग कर। (१०७) बिप्र नारियर—विप्र का दिया हुआ नारियल। (१०८) अधारी—लकड़ी के डंडे में लगा हुआ साधुओं का पीढ़ा। (१०९) कहत-सुनत—कहते सुनते हुए भी। घट—शरीर में। अकास—आकास, शून्य। (१११) बसतैं—बसते हुए। (११२) एतैं—इतने। प्रतिपारे—प्रतिपाल कर पाए हैं, बचा पाए हैं। बिडारे—भगा दिए। (११४) ज्यान—जियान, हानि। (११५) मनलाड़ू—मन के लड्डू, कल्पना का सुख। हेति—हेतु। (११६) बरुन—वरुण, जल के देवता, जल। बैसन—बैठना।

आरोहन—आरोहण, चढ़ना, वश में करना। अजपा—जिसका उच्चारण न किया जाए, ऐसा तांत्रिक का गुह्य मन्त्र। जपाली—जपावली, निरन्तर जाप। (११७) बीच बसेरे खाहु—रास्ते के किसी पड़ाव पर खा लेना। (११८) नार—नाल, गर्दन। (११९) सौंज—सामान, सामग्री। ताक—एक समान अनोखे, अद्वितीय। (१२०) रूंधौ—अवरुद्ध करते हो। छाँछ—मट्ठा। मूर—मूलधन। निबेरत—उगाहते हैं, वसूलते हैं। (१२२) रवकि—उमंग, उत्साह से। जुड़ाई—शीतग्रस्त, सर्दी खाई हुई। ध्वाई—दुहाई। (१२३) बूतें—बूते से, बल या सामर्थ्य से। लूतें—लूत या लूती (चिनगारी) से। हूतें—ओर से भी। धूतें—ठगे जाने पर। (१२५) जोग जोग—योग के योग्य। सार-ज्ञान—तत्वज्ञान। चीरि—फाड़कर। अप माहीं—अपने में ही। (१२७) ईस पुर—शिव की नगरी, काशी। (१२८) ब्यौंत—व्यवस्था, युक्ति, उपाय। साख—शाखा। ताख—आले पर। (१२९) इकठारें—एक स्थान पर, इकट्ठे। (१३०) पखा-नन—पाषाणों पर, पहाड़ों पर। निरवानन—निर्वाण, मोक्ष। पूजति है—पूर्ण होती है, बरावरी कर सकती है। (१३१) भए तेरहौं मास—तेरहों महीने हो गए, अवधि बीत गई। (१३२) खेप—बोझ, गठरी। फाटक—फटकन, अनाज फटकने के बाद बचा कूड़ा-करकट मिला हुआ कदन्न। हाटक—सोना। धुर ही तें—आदि से ही। खोटौ खायौ है—बेईमानी से बुराई करके कमाया खाया है। गहरु—देर, विलम्ब। साहुहिं—साहु को, सेठ या महाजन को। (१३४) ओऊ—वे भी। निरवारौ—निवा-रण करो, छुटी लो। सुपत—पति (लाज, इज्जत) वाले, प्रतिष्ठा या सम्मान वाले। मान परेखौ—आशा, भरोसा। हृदै हुतौ—हृदय में था। जोऊ—जो भी। चिंतामनि—सब इच्छाएँ पूरी करने वाली मणि। (१३६) हारिल—अपने पंजों में निरन्तर लकड़ी लिए रहने वाला एक पक्षी। जक—झक, धुन। चकरी—चक्री, घूमने या भ्रमित होने वाले, चंचल। (१३७) दुरी दुरा—लुकाछिपी। (१३८) अपुन—अपने, आत्मीय। सयाने—चतुर, चालाक, पूर्ण। (१३९) बीता की—बालिश्त भर का। मीता—मित्र, प्रेमी। सातौं—सम्पूर्ण। पीता—पिए हुए। (क), पीला (?)। चीता—चित्त, बाघ (?)। (१४०) सयानप—सयानापन, चतुराई। एहु—यह भी। (१४१) अमृतफल—अंगूर, पटोल। अघात—तृप्त होता है। कोरि—करोद कर, काट कर। (१४२) अधरातक—आधी रात के लगभग। कैतव—छल, कपट। (१४३) कृतहि—कृत को, किए हुए (उपकार) को। (१४६) दानी—दधि दान लेने वाले। (१४७) गुंज—गुंजा, घुंघची। उज्यारी—उज्ज्वल, प्रसिद्ध। (१४९) मया—माया, प्रेम, कृपा। (१५०) गारें—गलाएँ। (१५१) जुन्हाई—चन्द्रमा। बाइ—बात, रोग। छरद—छर्दि, वामन,

के। परद—पर्दा। मूरि—मूल, जड़। मुरद—मुर्दा। (१५२) आगरि—आकर, सम्पन्न। छीजै—नष्ट होती है। खरी—खड़ी। (१५३) बोल निबहियौ—वचन निर्वाह करना, बात कह देना। (१५४) तिनका तोर—सम्बंध-विच्छेद। लहियौ—उपलब्ध होगा, मिलेगा। ओर—अन्त तक। (१५५) पान—पानी। घनसार—कपूर। दधि-सुत—उदधिसुत, चन्द्रमा। भानु भईं भुंजैं—सूर्य होकर भूनती हैं। घुंजैं—छूंछी (?), रिक्त, गुंजै, और धुंजै (गुंजा—लाल) तथा धूंजै भी पाठ है। (१५६) व्योम—व्योमा-सुर। करत जिअनि की घात—जीने की घात लगाये हैं। अन्हात—स्नान करते समय। परिहँस—परिहास, हंसी, अपमान। तात—पिता, (नन्द)। (१५८) हरि स्रम जल—श्रीकृष्ण के पसीने से। सारी—साड़ी, धोती। गथ—पूँजी। चिकुर—केश। (१५९) करवी भाँवरी—भ्रमण करना, फेरा करना। झाँवरी—मलिन, श्यामल, शिथिल। ताँवरी—घूमना, चक्कर। (१६०) चेरौ—चेला, सेवक। परस्यौ—स्पर्श किया। नेरौ—निकट भी। बेरौ—बेड़ा, नावों या जहाजों का समूह। (१६२) मेरैं—मेरे यहाँ। जाए—जात, उत्पन्न, संतान। भाए—इच्छायें। भुरए—भरमाए, बहकाए। (१६३) बिडरी जातिं—इधर उधर भागी जाती हैं। धौरी—धवल, सफेद। धूमरि—धूमिल, हलकी श्यामल। काजरि—कजली, काली। (१६४) सुबाहु—कृष्ण के एक गोप सखा। सुबल—कृष्ण के एक अन्य गोप सखा। पतूखी—पत्तों का छोटा सा दोना। (१६६) निमि—इक्ष्वाकु-पुत्र, एक राजा जो किंवदंती के अनुसार पलकों पर रहता है। (१६७) लयौ—लिया, स्वागत किया। कैं—के यहाँ। सोध लह्यौ—खोज-खबर ली। दे घाली—भेजी। (१६९) जोवति—जोहती है, देखती है। सकारे—सकाल, प्रातः काल। (१७१) बिकरार—बेकरार, व्याकुल। (१७२) जल जोग—जल के योग, वर्षा के, वर्षा के समान। दुरे—छिपे। वृष दिनकर—ग्रीष्म में वृष राशि का प्रचण्ड सूर्य। (१७३) अवसेरि—बेचैनी, व्याकुलता। (१७५) नाएँ—डालने से। गापुरी—बेचारी। ऊलौ—उछलन, उमंग। चौका—चौकड़ी (भरना)। (१७६) पचि—पचकर, करके। अटकाऊँ—अटक जाता था। खराऊँ—खड़ाऊँ, लकड़ी की पादुका। (१७७) सक—शक, संदेह। पहरक—लगभग पहर भर। बेकाजैं—व्यर्थ ही। बूझ—बुद्धि, ज्ञान। मठी—छोटा मठ, परन्तु यहाँ संपूर्ण मण्डली। उफानी—उमड़ पड़ी। (१७८) सैन—संकेत। (१७९) परमोधी—प्रबोधी, प्रबोध करने पर भी, समझाने पर भी। छति—क्षति, हानि। पति—प्रतिष्ठा, सम्मान। (१८१) चौक—चौकड़ी। गहबर—गह्वर, अंधेरी कन्दरा। ज्यायौ—जिलाना। भायौ—इच्छित। (१८२) उम्हायौ—उमड़ आया। बसायौ—(वह हमारे) बस की नहीं है। (१८३) संभ्रम—बुद्धि-भ्रम,

मति भूल। पचि जोग बह्यौ—परिश्रम पूर्वक योग का उपदेश देने में बह गया। (१८५) जउ—जब, यद्यपि। बिरह ज्वर सोग—विरह में दुख का ज्वर। (१८६) हित साथ—प्रेमपूर्वक। सिरात—बीतता था या बिताते थे। (१८७) हंस-सुता—सूर्य-पुत्री, यमुना। जाहीँ—जहाँ है। अनगन—अगणित। (१८८) परिमिति—सीमा, मर्यादा। पाइँ परी—(यह मर्यादा मेरे) पैरों में पड़ी है, (इससे मेरे) पैर बँधे हैं। भारत—महाभारत युद्ध। भरुही—भरदूल, लवा पक्षी, टिटहरी। गज के घण्ट तरी—हाथी के घण्टे के नीचे।

द्वारिका-चरित

(२) बर्यो—वरण किया। चाइ—चाव, उत्साह। (४) अपघात—आत्म-हत्या। (७) किसल—किशलय, कोंपल (८) पतियानी—प्रतीति की, विश्वास किया। पतिआरो—प्रतीति, विश्वास। निरधारि—निश्चय मानो। (१०) अटकायो—रोका। (११) पौढ़े हे—लेटे थे। अगमने—आगे (आकर)। (१२) अंकमाल दै—आलिंगन करके। अर्धासन—अपने आसन के आधे भाग पर, अपने साथ। पाउँ धारे—पधारे। (१४) बियो—दूसरा। (१६) राँक—रंक, निर्धन। बिभौ—विभव, ऐश्वर्य। (१७) बिनु ग्रीवा कल सुभग—बिना गर्दन का टूटा हुआ कलश (?)। काठी—काठ, लकड़ी। छीरोदक—एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। टाटी—टट्टी, झोपड़ी। (१८) दूबल—दुर्बल। पटतर—उदाहरण, नमूना। कलपतर—कल्पतरु जो सब कामनाएँ पूर्ण करता है। (१९) सँघाती—संगी, साथी, मित्र। गाती—गात, शरीर। ती—थी। (२०) बिचरै—विचारता, पूछता। फुरै—स्फुरित होती थी, निकलती थी। लछि—लक्ष्मी, धन-सम्पत्ति। (२१) गहरु—विलम्ब। (२२) दै घाली—भेजी। उछंग—उत्संग, ऊपर, उठाया हुआ। भाली—(भाले की) नोक, गांसी। साली—कसकी, पीड़ा पहुँचाई। (२३) खूटी—समाप्त हो गई। कूटी—कूटत्व, छल। (२५) जोइ—देख-देखकर, देखते-देखते। (२८) अपसोसनि—अफसोसों से, पश्चात्तापों से। कारे कोसनि—बहुत दूर। गोसनि—कमान के दोनों सिरे। ठोसनि—ठेंगों, ठिंगस्सों या अंगूठों से (किसी वस्तु पर अधिकार करके औरों को चिढ़ाते हुए उसे देने से इनकार करने के संकेत)। (२९) लवन—लवण, खारा। (३१) बीर—भाई। बटाऊ—बटोही, पथिक। कोतैं—ओर से। परीजौ—पड़िए। (३८) वायस—बायस, कौआ। गहगहात—उमंग के साथ, प्रफुल्लित होते हुए। भाग दसा—भाग्य की दशा, सौभाग्य। विधि—विधि (ब्रह्मा) ने। (४०) मोचै—मोचन करती है, निकालती है। पोचै—नीचे को। (४२) सकट—शकट, छकड़े, गाड़ियाँ। रहे अरगाइ—अलग हो गए। (४४) या लगि—

इसके लिए। है—थे। काल-चाल—काल की गति। औरासी—विलक्षण। (४५) बारक—एक बार तो। जुग कोरी—कोटि या करोड़ों युग। (४८) गर—(गले) में। चार—चारु। (४९) दीसति—दिखाई देती है। (५०) कीट भृंग गति—दो या अधिक वस्तुओं के मिलकर एकाकार हो जाने की दशा। रई—डूब गई, पग गई। रसना करि—वाणी के द्वारा। (५१) समदे—भेंटे। (५२) बेरौ—बेड़ा। खेरौ—खेड़ा, गाँव। अहेरौ—अहेर, शिकार।

———

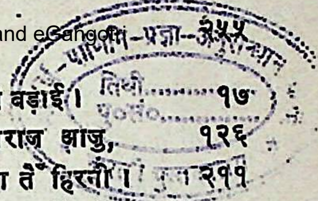
परिशिष्ट (क)

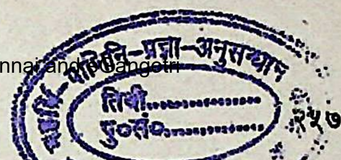
रामचरित

(१) मागध-बंदी-सूत—विरुदावली गाने वाले चारण-भाटों (को)। चीर—वस्त्र। (२) सदेहियाँ—सद्य, ताजे, अभी-अभी। ओप—शोभा, गौरव। कहियाँ—को, के लिए। पहियाँ—के पास, द्वारा। (३) पूँगीफल—सुपारी। जूप—द्यूत, जुआ। जनक की—जनक की कन्या, सीता। वेद-अभिषेक—वेद अर्थात् शास्त्र के अनुसार अभिषेक। (४) पिनाक—शिव जी का धनुष। (६) केहरि-फल—वृषभ (?)। अंड—ब्रह्मांड, विश्व। (७) सहिदानी—निशानी, चिह्न। मूसी—चुरा ली। लरी—लड़ी, पंक्ति। कवरी—स्त्रियों की वेणी, चोटी। (८) बिरह तन जरनी—तन में विरह की ज्वाला। कुचील—मैले। चिहुर चिकुर, केश। धुकि परै—झुक पड़ती हैं, गिर पड़ती हैं। धरि—पकड़ कर। सरनी—शरण। (९) ईसहिं—शिव जी को। (१०) बिलख—विकल, दुखी। हतिहैं—मारेंगे। देयत—दैत्य। पिता संपति—संपति का पिता कुबेर। (११) बिरमाहिं नहीं—विलम्ब न करें, रुकें नहीं। (१२) मेली—डाली। पग पेली—पैर बढ़ाया। (१४) है हौं—हति हौं, मारूँगा। तूल-गन—रूई के समूह। जड़न—जड़ों को, मूर्खों को। धैहौं—(चढ़) दौड़ूँगा। दमि—दमन करके। मोचन—मुक्ति के लिए, छुड़ाने के लिए। (१५) सारङ्ग—शार्ङ्ग, धनुष। पान—पर्ण, पत्ते। छिछ—छींटें। कवंध—धड़, बिना शरीर, रुंड। झर—ज्वाला, अग्नि। सब—शव, मुर्दा। बार—देर, विलम्ब। कीर—कीड़ा। (१६) भाइनि में थपिहौं—भाइयों में स्थापित करूँगी। (१८) जाम—याम, पहर। रजनी-मुख—संध्या समय। तुंबुर—एक संगीत-निपुण विष्णुभक्त गंधर्व। रुक्का—पुर्जा, पर्चा, अनौपचारिक चिट्ठी।

पदानुक्रमणी

अंक पृष्ठ-संख्या के द्योतक हैं।





१७

□ □


पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
8.S.S


पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथि
पु०सं०
भारती पुस्तकालय
855


साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड
इलाहाबाद